स्वयंभू एवं तुलसी के नारी-पात्र

योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'
एम्. ए, पी-एच डी, साहित्यरत्न

स्वयंभू एवं तुलसी के नारी-पात्र

मूल्य पचास रुपये

प्रथम संस्करण 1979

SVAYAMBHŪ EVAM TULASĪ KE NARĪ-PĀTRA
BY 'ARUN SHARMA Y N

'नाच्यौ बहुत गोपाल'
के रचयिता
श्रद्धेय अमृतलाल नागर को

अपनी ओर से

नारी सृष्टि के आदि से ही मानव की प्रेरक-शक्ति रही है। समाज, धर्म, संस्कृति—सभी के मूल में, कहीं न कहीं, नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कवि सदैव युग-द्रष्टा के रूप मे नारी की शक्तियो का समायोजन करके समाज-निर्माण के महत् दायित्व का निर्वाह करता रहा है। नारी ने समाज की रीढ तथा शक्ति बनकर समाज का नियमन किया है, कभी जननी बनकर, कभी प्रिया एव पत्नी बनकर, कभी बहन, तो कभी आत्मजा बनकर और कभी प्रेरणा-प्रदायिनी नेत्री बनकर। नारी के इस गरिमामय चरित्र का अकन विश्व-साहित्य मे हुआ और सर्वत्र उसे गौरव-मण्डित किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य प्रमुखत अपभ्रंश के आदिकवि स्वयभूदेव कृत 'पउमचरिउ' तथा हिन्दी साहित्य के गौरव-स्तम्भ महाकवि तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के 'नारी-चित्रण' विषयक दृष्टि-कोण का गहन तथा सम्यक् विश्लेषण, दोनो के नारी-पात्रो का पृथक्-पृथक् अनुशीलन तथा दोनो के पात्र-चित्रण की तुलना करना रहा है।

'नारी-पात्र के सघटक तत्त्व' (सैद्धान्तिक विवेचन) मे कवि द्वारा नारी-पात्र की सघटना मे प्रयोग किये जाने वाले तत्त्वो का निर्धारण, तात्त्विक विवेचन तथा सप्रमाण उनकी स्थिति का विश्लेषण हमने किया है। सिद्धान्त पक्ष को पुष्ट करने की ओर ही मुख्यत हमारी दृष्टि रही है।

'स्वयंभू एव तुलसी के काव्य की पृष्ठभूमि' का तुलनात्मक विवेचन किया गया है, क्योकि प्रत्येक कवि अपने साहित्य मे, न्यूनाधिक रूप में, युग का चित्रण अवश्य करता है। इस सन्दर्भ में हमने स्वयभू का समय ई० ७५०—७६० मानने का विनम्र सुझाव,

स्वयभू के आश्रयदाता, सम्राट् ध्रुव धारावर्ष के अमात्य 'रयडा धनजय' के समय (ई० ७८०–७६४) को इतिहास के प्रमाणो से पुष्ट करते हुए दिया है, जिसे विद्वान् स्वीकार करेंगे, हम यह आशा करते हैं। तुलसी का समय हमने निश्चित रूप से सम्वत् १५८६–१६८० माना है। दोनो कवियो के काव्य की पृष्ठभूमि का (१) सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक, (२) राजनीतिक-आर्थिक, (३) साहित्यिक तथा (४) नारी-विषयक युगीन पारिवेशिक मान्यता— शीर्षको के अन्तर्गत विवेचन किया गया है।

'सुकुमार कन्याएँ' मे स्वयभू एव तुलसी के उक्त महाकाव्यो मे चित्रित नारी-पात्रो के कन्या रूप का पृथक्-पृथक् अनुशीलन हमने परम्परित दृष्टि एव कवि द्वारा उद्भावित दृष्टि से किया है और दोनो कवियो के नारी-पात्रो के कन्या रूप की तुलना पूर्व निर्धारित सघटक तत्त्वो के आधार पर की है।

'प्रेमिकाएँ' मे दोनो कवियो द्वारा प्रेयसी रूप मे चित्रित नारी-पात्रो का पृथक्-पृथक् तथा तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है। स्वाभाविकत नारी के प्रेयसी रूप का विश्लेषण करते हुए प्रबन्ध की शैली काव्यात्मक हो गई है।

'पत्नियाँ' ग्रन्थ का सबसे बडा अध्याय है। दोनो ही कवियो द्वारा 'पत्नी रूप' मे चित्रित नारी-पात्रो की मख्या सर्वाधिक है। दोनो ही महाकाव्यो की नायिका सीता का पत्नी रूप इन काव्यो का प्राण-तत्त्व है। नारी के पत्नी रूप का अनुशीलन करते समय हमने उत्तम, मध्यम तथा अधम पत्नी शीर्षको मे नारी-पात्रो को रखा है। इस विभाजन का आधार हमने ऐसी सामाजिक, नैतिक तथा अन्य परम्पराओ, आदर्शों और मूल्यो को बनाया है, जो शाश्वत होते हैं। इस सन्दर्भ मे हमने नारी के पातिव्रत्य, त्याग, सेवा, समर्पण, निष्ठा, ममत्व, दृढता तथा स्नेह जैसे गुणो को शाश्वत मानकर, इनसे विभूषित नारी-पात्रो को 'उत्तम' तथा इनसे रहित पात्रो को 'अधम' माना है, मध्य स्थिति वाले नारी-पात्र 'मध्यम' माने गए हैं।

'माताएँ' मे दोनो महाकाव्यो में चित्रित नारी-पात्रो के माता रूप का परम्परित दृष्टि तथा कवि द्वारा उद्भावित दृष्टि से पृथक्-पृथक् एव तुलनात्मक अनुशीलन हुआ है।

नारी-पात्रो के 'बहन, सखी तथा दासी' रूपो का उपर्युक्त दृष्टि से पृथक्-पृथक् एव तुलनात्मक विवेचन हुआ है।

'भाभी, सास तथा अन्य नारी-पात्र' मे इन्ही रूपो का अनुशीलन हुआ है।

'दैवी एव आसुरी नारी-पात्र' मे उन नारी-पात्रो का विवेचन हुआ है, जिनमे अलौकिकता का समावेश हो गया है—चाहे दैवी रूप मे अथवा आसुरी रूप मे। इस सदर्भ मे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि स्वयभू जैन-धर्मानुयायी होने के कारण जैन-आगम साहित्य से प्रभावित हुए हैं तथा तुलसी वैदिक-पुराण साहित्य का आधार लेकर चले हैं। क्रमश मरुदेवी एव इन्द्राणी तथा सीता एव पार्वती का पौराणिक चित्रण स्वयभू तथा तुलसी की दृष्टि के अन्तर को स्पष्ट कर सकेगा।

उपसहार मे, दोनो कवियो द्वारा चित्रित नारी-पात्रो का तुलनात्मक अनुशीलन करके प्राप्त निष्कर्षों को सजोया गया है।

अपने निर्देशक श्रद्धेय डॉ० एल० बी० राम 'अनन्त', वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महानन्द मिशन पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलिज, गाजियाबाद के प्रति मै श्रद्धावनत हूँ। 'मानस' के जिज्ञासु अध्येता श्री रामानन्द शर्मा एव मेरे पूज्य पिता श्री महेन्द्रनाथ शर्मा का आशीष सम्पूर्ण सकल्प की प्रेरणा रहा है। श्रद्धेय आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, डॉ० गजानन साठे, डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश', डॉ० ब्रजवल्लभ मिश्र तथा डॉ० केहरसिंह चौहान आदि ने सत्परामर्श देकर मुझे उपकृत किया है, मै सभी का आभारी हूँ। अनुजवत् विश्वस्त मित्र प्रोफेसर जे० जे० पाल के प्रति स्नेह भाव रखकर उनकी प्रगति की कामना करता हूँ, चूँकि

वे आभार की औपचारिकता से परे हैं। जिन ग्रन्थो से मुझे यह ग्रन्थ लिखने मे सहायता मिली है, उन सभी के विद्वान् लेखको के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

विद्वान् लोग मेरे प्रयास को सराहे तो भी, न सराहे तो भी, मुझे लिखकर उपकृत अवश्य करें, यही मेरी प्रार्थना है।

रीडर एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
बी० एस्० एम्० स्नातकोत्तर कॉलिज,
रुड़की–२४७ ६६७

—योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

क्रम

१

प्रस्तावना

अध्येय सामग्री का परिचय

साहित्य की शाश्वत प्रवहमान धारा युगो के अन्तराल को पाटती हुई निरन्तर गतिमान होती आई है और इस प्रकार समाज, धर्म, सस्कृति, तथा दर्शन आदि को साहित्य मे अभिव्यक्ति मिलती रही है। सस्कृत-साहित्य भारतीय प्रज्ञा की उत्कृष्टता, निर्मलता, विशदता एव परमार्थवादिता का उद्घोष करता है। समाज मे उच्चतर आदर्शों तथा मूल्यो के प्रति जो अजेय आस्था थी, उसका प्रकाशन सस्कृत-साहित्य मे सुन्दर ढग से हुआ है।

हमारे देश के विभिन्न भागो और विभिन्न ऐतिहासिक युगो मे अनेक धर्मों तथा सस्कृतियो ने जन्म एव प्रसार पाया। यहाँ अनेक धर्म-प्रवर्त्तक उत्पन्न हुए और इस देश मे धर्म और सस्कृति का गहरा सम्बन्ध रहा। फलत धर्म-शिक्षको ने भारतीय सस्कृति अथवा उसके विभिन्न रूपो को विशेष प्रभावित किया।[1] डॉ० देवराज के उक्त कथन का सार यही है कि भारतीय प्रज्ञा ने धर्म एव सस्कृति को साहित्य के अमर कवच से मण्डित करके रक्षित करने का महान् उपक्रम किया। यही कारण है कि भिन्न धर्मों तथा भिन्न सस्कृतियो का यह विशाल भारत एकता के सूत्र मे बँधा रहा और इसकी सस्कृति विश्व की सर्वोच्च सस्कृति बनी रही।

साहित्य की धारा सस्कृत से होकर प्राकृतो तक आई और धर्म तथा सस्कृति को समाहित करती हुई गतिशील रही। भाषा-विकास के क्रम मे प्राकृतो के पश्चात् अपभ्रश-भाषा का स्थान आता है। साहित्य-सृजन की दृष्टि से प्राकृत तथा अपभ्रश अत्यन्त समृद्ध भाषाएँ रही हैं, किन्तु विद्वानो का ध्यान इस विपुल साहित्य की ओर अभी बहुत कम गया है। डॉ० रामसिंह तोमर का कथन सत्य है—प्राकृत और

---

[1] भारतीय सस्कृति, पृ० १७।

अपभ्रश साहित्य की ओर ध्यान आकर्षित कराने का श्रेय यूरोपीय विद्वानो को है।[1] अग्रेज विद्वान् कावेल, जर्मन विद्वान् पिशेल आदि का नाम इस क्रम मे उल्लेखनीय है।

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि प्राकृतो का भारतीय आर्य-भाषाओ के इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह भी सर्वमान्य तथ्य है कि सस्कृत के साथ-साथ प्राकृते भी देश की सस्कृति का माध्यम बनी रही। प्राकृतो मे विपुल साहित्य—काव्य, नाटक, कथा, चम्पू आदि—रचा गया। इस साहित्य को डॉ० तोमर ने विभाजित करने का सद्प्रयास किया है, जिसे यहाँ उद्घृत करना समीचीन रहेगा [2]

(१) धार्मिक प्राकृत साहित्य।
(२) साहित्यिक (ललित) प्राकृत—महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची तथा अपभ्रश साहित्य।
(३) नाटको मे प्रयुक्त प्राकृत।
(४) भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्तो मे प्राप्त प्राकृत साहित्य।
(५) शिलालेखादि मे प्रयुक्त प्राकृत।
(६) मिश्र सस्कृत—'गाथा डायलेक्ट'।

यहाँ उल्लेखनीय है कि डॉ० तोमर ने प्राकृत तथा अपभ्रश के मध्य किसी विभाजक रेखा को स्वीकार नही किया। उन्होने डा० एस्० एम्० कत्रे का उद्धरण दिया है—अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ६०० ई० पू० से १८०० ई० तक के इस सम्पूर्ण प्राकृत साहित्य का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है।[3]

हमारी दृष्टि से यह विभाजन उपयुक्त नही है। प्राकृत भाषा निश्चितत अपभ्रश भाषा से अनेक रूपो मे अन्तर रखती है। यह ठीक है कि प्रारम्भ म प्राकृतो को, भाषा की दृष्टि से अधिक भेद न हो पाने के कारण, एक ही सज्ञा देकर क्रमश प्रथम, द्वितीय, तृतीय प्राकृत कह दिया गया था, किन्तु कालान्तर मे व्याकरण तथा भाषा-विषयक अन्य विभेदो के आधार पर उन्हे निश्चित नाम दे दिए गए थे। यथा

प्रथम प्राकृत — पाली अर्धमागधी भाषा,
द्वितीय प्राकृत — प्राकृत भाषा,
तृतीय प्राकृत — अपभ्रश भाषा।

उपर्युक्त आधार पर स्पष्ट है कि अपभ्रश की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, जिसे पुष्ट व्याकरणिक तथा साहित्यिक आधार पर निस्सकोच स्वीकार किया जाना चाहिए। डॉ० तोमर ने अपनी पुस्तक मे लिखा है—पाली यद्यपि भाषा की दृष्टि से प्राकृत का ही एक रूप है, किन्तु सामान्यत उसे प्राकृत से अलग ही माना जाता है, वैयाकरणो की तथा साहित्य की इसी परम्परा के अनुसार उसका अध्ययन यहाँ आवश्यक

---

[1] प्राकृत और अपभ्रश साहित्य तथा उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ० ८।
[2] वही, पृ० ४।
[3] वही, पृ० ४।

नहीं समझा गया ····जैन प्राकृत साहित्य का अध्ययन आवश्यक समझा गया है, क्योंकि जैन अपभ्रंश साहित्य और जैन प्राकृत साहित्य मे विषय-विवेचन, शैली और भावधारा की दृष्टि से कोई अन्तर नही।[1]

डॉ० तोमर के उक्त कथन से असहमति रखते हुए, हमारा कथन यह है कि भाषा की विभिन्नता तो प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य को पृथक् करने मे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है ही, साथ ही अन्य भिन्नताएँ भी विद्यमान है, तो इन्हे पृथक्-पृथक् मानना ही होगा। यह माना जा सकता है कि जैन-धर्म का आधार समान रहा हो, परन्तु विमलसूरि तथा स्वयभू मे निश्चितत भाषा, विचार, दर्शन, मान्यताओ, तथा मूल्यो का अन्तर है। विमलसूरि की परम्परा ग्रहण करना पृथक् है और प्राकृत तथा अपभ्रंश में रचित 'पउमचरिय' तथा 'पउमचरिउ' की समानता दिखाना पृथक् है।

प्रस्तुत 'स्वयभू एव तुलसी के नारी-पात्र' अध्ययन मे हमारा सर्वप्रमुख लक्ष्य है—उक्त दोनो महाकवियो के 'नारी-चित्रण' विषयक दृष्टिकोण का सम्यक् एव गहन विश्लेषण करते हुए, दोनो के नारी-पात्रो का पृथक्-पृथक् अनुशीलन करना तथा दोनो की तुलना करना। साथ ही, नारी-निन्दा के आरोपो का परीक्षण तथा निराकरण करना भी।

महाकवि तुलसीदास के विषय मे हिन्दी जगत् के प्रबुद्ध आलोचको ने बहुत कहा है, लिखा है और पढा है। इस 'बहुत कहने और लिखने-पढने' के क्रम मे तुलसी के साथ न्याय भी हुआ और अन्याय भी। आलोचको ने तुलसी को 'कटघरे' मे खडा करके उस पर अनेक आरोप लगाए और तुलसी की अनुपस्थिति मे ही अपना निर्णय भी दे गए।

तुलसी को किसी ने 'हिन्दुओ का एजेण्ट'[2] कहा, तो किसी ने दकियानूस कह डाला। नारी-चित्रण मे इस महाचेता कवि को सर्वाधिक कठोर आलोचना सहन करनी पडी डॉ० माताप्रसाद गुप्त की लेखनी से। डॉ० गुप्त ने कहा—प्रत्येक युग के कलाकार नारी-चित्रण मे प्राय उदार पाए जाते हैं, किन्तु नारी-चित्रण मे तुलसी-दास बेहद अनुदार है। यद्यपि उनकी इस अनुदारता का कारण अभी रहस्य के गर्भ मे छिपा है, जिसको अस्वीकृत नही किया जा सकता।[3]

उक्त कथन मे डॉ० गुप्त स्वय भी क्या तुलसी के प्रति 'बेहद अनुदार' नही हो गए? तुलसी को 'नारी-निन्दक' तो अनेक विद्वानो ने कहा, किन्तु उन्हे इस क्षेत्र का 'नेतृत्व' सम्भवत किसी ने नही दिया। डॉ० शिवकुमार शुक्ल की सबल दृष्टि के अनुसार—नारी-निन्दा अभियान मे वे अकेले नही हैं क्योंकि अनेक पुराणो मे तो इससे भी अधिक 'बीभत्सता' का प्रदर्शन किया गया है, सम्भवत 'मानस' के 'नाना-

---

[1] प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ० ४–५।

[2] गरीब और साधारण तुलसी भी प्रचण्ड ब्राह्मणवादी हो गए।

—डॉ० रमेशकुन्तल मेघ तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ७६।

[3] तुलसीदास, पृ० ३०७।

पुराणनिगमागमसम्मत' होने के कारण ही वे ऐसे भाव-प्रदर्शन से स्वय को रोक नही सके हैं ।[1]

डॉ० माताप्रसाद गुप्त का कथन हमे पूर्वाग्रह से युक्त प्रतीत होता है । वे सम्भवत 'नारी-जागरण' का पक्ष लेकर प्रगतिशील बनना चाहते थे, जो उनके इन शब्दो से ध्वनित भी होता है—किसी भी नारी-पात्र से यदि कही कोई भूल हो जाती है तो हमारे कवि के अनुसार सारी नारी जाति उसके लिए भर्त्सना का पात्र बन जाती है, और पुरुष पात्र चाहे कितने अपराध करे, पुरुष जाति की भर्त्सना हमारा कवि कभी नही करता ।[2]

क्या 'मानस' का कोई अध्येता इस कथन से सहमत होगा ? महापण्डित, महा-प्रतापी, सस्कृतज्ञ रावण का पराभव, महामति, प्रतापी तथा महाबली बाली का पराभव, क्या डॉ० गुप्त के कथन को एकपक्षीय सिद्ध नही कर देता ?

हमारा मन्तव्य यहाँ केवल यह दिखाना ही है कि तुलसी को जिस दृष्टिकोण से देखा गया, विशेषत नारी-चित्रण के सन्दर्भ मे, वह प्राय पूर्वाग्रहयुक्त और एकागी रहा है और उसमे शुद्ध विवेचन, तार्किकता तथा विश्लेषण का प्राय अभाव रहा है।

महाकवि स्वयभूदेव के कृतित्व को स्वीकृत तो अवश्य किया गया और आज उन्हे गौरव भी दिया गया है

Alongwith Caturmukha, Puspadanta and several others, Svayambhu's name stands in the front rank of Apabhramsa-poets and scholars His poetical works, and especially his two voluminous epics dealing with the narrative of Rama and of the Pandavas and Krsna had earned him the cherished titles of Mahakavi and Kaviraj [3]

किन्तु उनके कृतित्व का पूर्ण मूल्याकन अभी होना शेष है । स्वयभूदेव कृत 'पउमचरिउ' का अध्ययन कतिपय विद्वानो ने तुलसी कृत 'रामचरितमानस' के तुलनात्मक सन्दर्भ मे किया है । इस ग्रन्थ मे हमारा उद्देश्य स्वयभूदेव कृत 'पउमचरिउ' तथा तुलसी कृत 'रामचरितमानस' के समस्त नारी-पात्रो—प्रधान एव गौण—का स्वतन्त्र तथा तुलनात्मक स्वरूप स्पष्ट करना प्रमुखत रहा है ।

स्वयभूदेव तथा तुलसीदास मे लगभग आठ सौ वर्षों का अन्तर स्पष्टत है, जिसने समाज, धर्म, सस्कृति, परम्परा तथा मूल्यो के विषय मे इन दोनो कवियो के दृष्टि-कोण को पर्याप्त भिन्नता प्रदान की है । यो तो दोनो ही राम के पावन चरित्र को लेकर काव्य-रचना मे प्रवृत्त हुए है तथापि भाव, भाषा, शैली तथा युगीन-परिवेश ने इन दोनो को स्वतन्त्र अस्तित्व एव महत्त्व प्रदान कर दिया है ।

---

[1] रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४०६ ।

[2] तुलसीदास, पृ० ३०७ ।

[3] डॉ० एच्० सी० भायाणी, पउमचरिउ (विद्याधरकाण्ड), पृ० १ ।

स्वयंभू एवं तुलसी का सामान्य परिचय

मर्यादा पुरुषोत्तम राम की कथा आदिकवि वाल्मीकि से आरम्भ होकर संस्कृत के विशाल काव्य-सिन्धु का आलोडन-विलोडन करती हुई, प्राकृत एव अपभ्रंश मे भी अत्यन्त लोकप्रिय हुई। वैदिक साहित्य मे रामकथा के सूत्रो का सकेत डॉ० कामिल बुल्के[1] ने किया है। प्रस्तुत अध्ययन उस दिशा में अधिक जाने की अपेक्षा नही रखता। बौद्धो के अनुरूप रामकथा प्राय कम ही रही और वहाँ अपेक्षाकृत कम विस्तार इसे मिला। डॉ० बुल्के के अनुसार 'प्राचीन बौद्ध साहित्य मे रामकथा विषयक तीन जातक सुरक्षित हैं जिनमे से "दशरथ जातक" सबसे अधिक प्रसिद्ध है।'[2]

जैन-धर्मानुयाइयो ने रामकथा को अत्यन्त श्रद्धा एव आदरपूर्वक ग्रहण करके उसे अपने धर्म, भाषा तथा दर्शन के अनुरूप ढालकर पूर्णता के साथ अपनाया है। डॉ० बुल्के ने बताया है—बौद्धो की भाँति जैनियो ने भी रामकथा अपनाई है। अन्तर यह है कि जैन कथा-ग्रन्थो मे हमे एक अत्यन्त विस्तृत रामकथा साहित्य मिलता है।' · जैनियो ने रामकथा के पात्रो को अपने धर्म मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। राम (या पद्म), लक्ष्मण और रावण न केवल जैन-धर्मावलम्बी माने जाते हैं, लेकिन तीनो को जैनियो के त्रिषष्टि महापुरुषो[3] मे भी रक्खा गया है।[4]

महाकवि स्वयभूदेव—स्वयभूदेव 'अपभ्रंश भाषा के वाल्मीकि' के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। उन्होने अपभ्रंश भाषा मे जैन परम्परानुसार राम-काव्य का सृजन करके 'पउमचरिउ' के रूप मे अमूल्य कृति दी है, जो न केवल अपने काव्योचित उत्कर्ष से प्रसिद्ध हुई है, अपितु रामकाव्य-परम्परा मे भी मील का पत्थर बन गई है।

जैन साहित्य मे रामकथा के दो रूप हो गए थे। प्रथम विमलसूरि के 'पउमचरिय'[5] को आधार मानकर चली और दूसरी गुणभद्र के 'उत्तरपुराण'[6] को आधार बना कर चली। स्वयभू ने विमलसूरि की कथा-परम्परा को ग्रहण किया है। इस धारा मे कालक्रमानुसार विकास की परम्परा निम्न रही है[7]

(१) विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' (तीसरी-चौथी शती) प्राकृत
(२) रविषेणाचार्य कृत 'पद्मचरितम्' (६६० ई०) सस्कृत

---

[1] रामकथा (उत्पत्ति और विकास), पृ० १।

[2] वही, पृ० ५८।

[3] त्रिषष्टि महापुरुष (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव=६३)।

[4] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ६५।

[5] इस प्रसिद्ध ग्रन्थ को भाषा के आधार पर तीसरी शती की रचना माना गया है। इसका संस्कृत रूपान्तर रविषेणाचार्य ने ६६० ई० में 'पद्मचरितम्' के नाम से किया।

[6] यह कथा वाल्मीकि तथा विमलसूरि के कथानक से बहुत भिन्न है।

[7] डॉ० गोकुलचन्द्र जैन · मुनिश्री मिश्रीमल अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित 'जैन साहित्य में रामकथा'—लेख, पृ० २४१।

(३) **स्वयभूदेव कृत 'पउमचरिउ' (७००–८०० ई०)** **अपभ्रंश**
(४) हेमचन्द्र कृत 'जैन-रामायण' (१२वी शती) सस्कृत
(५) जिनदास कृत 'रामपुराण' (१५वी शती) सस्कृत
(६) पद्मदेव विजयगणि कृत 'रामचरित' (१६वी शती) सस्कृत
(७) सोमसेन कृत 'रामचरित' (१६वी शती) सस्कृत

उल्लेखनीय है कि अपभ्रश मे रामकथा के एकमात्र कवि स्वयभूदेव का नाम सर्वप्रमुख रहा है। डॉ० हरीश के अनुसार मुख्यत अपभ्रश-साहित्य आठवी शताब्दी से ही उपलब्ध होने लगता है। इस प्राप्त साहित्य मे स्वयभू सबसे पहले हमारे सामने आते हैं। स्वयभू अपभ्रश भाषा के महाकवि और आचार्य थे।[1]

स्वयभूदेव ने अपने विषय मे स्वय कोई निश्चित सूचना नही दी है। जन्मतिथि, जन्म-स्थान, जीवन-परिचय आदि के विषय मे इतनी कम जानकारी उपलब्ध हो सकी है कि इस विश्रुत कवि का जीवन-चरित प्राय अज्ञात-सा ही रहा है। स्वयभू के विषय मे डॉ० एच्० सी० भायाणी ने बहुत परिश्रमपूर्वक उनकी जन्मतिथि निश्चित करनी चाही, किन्तु वे निष्कर्ष रूप मे निश्चित कुछ नही कह सके

Nowhere in his three available works Svayambhu has made a statement giving us the definite and exact date of composition of anyone of them Nor has he referred to any ruler or political event of his times, which can help us in fixing his date with some certainty[2]

इतनी उलझन के बाद भी डॉ० भायाणी ने कई तिथियो पर विचार किया और हारकर कह बैठे

But all these considerations cannot lead us any further so long as more definite data do not become available to narrow down the range between 677 A D and 960 A D[3]

डॉ० भायाणी के अनुसार ६७७ से ९६० ई० के मध्य स्वयभू रहे।

'पउमचरिउ' मे स्वयभूदेव ने अपने विषय मे आरम्भ के छन्दो मे जो कुछ लिखा है, उसके अनुसार वे मरुत (मारुतदेव) एव पउमिनी (पद्मिनी) के पुत्र थे। स्थूलकाय, चौडी नासिका और छितरे हुए दॉत वाले थे।

पउमिणी-जणणि-गब्भसभूएँ। मारुयएव-रूव-अणुराएँ ॥
अइतणुएण पईहर-गत्ते । छिव्वरणासे पविरल दन्ते ॥[4]

---

[1] आदिकालीन हिन्दी-साहित्य शोध, पृ० २१।
[2] पउमचरिउ (स्वयभूदेव), पृ० ७।
[3] वही, पृ० ६।
[4] पउमचरिउ (विद्याधरकाण्ड), १–२।१०–११।

उनका पुत्र त्रिभुवन भी उनकी ही भाँति कवि था और उसने अपने पिता के ग्रन्थो मे परिवर्द्धन किया। स्वयभूदेव जीवन के प्रति जिस आस्थापूर्ण दृष्टिकोण को लेकर चले, उसे लक्ष्य करके जैन-इतिहास के विद्वान् नाथूराम प्रेमी ने निष्कर्ष रूप मे कहा है—स्वयभू गृहस्थ थे, साधु या मुनि नहीं, जैसाकि उनके ग्रन्थो की कुछ प्रतियो में मिलता है। ऐसा जान पडता है कि उनकी कई पत्नियाँ थीं, जिनमे से दो का नाम 'पउमचरिउ' मे मिलता है—एक तो आइच्चम्बा (आदित्याबा) जिसने अयोध्या-काण्ड और दूसरी सामिअब्बा, जिसने विद्याधरकाण्ड लिखाया था। सम्भवत ये दोनो सुशिक्षिता थी।[1]

स्वयभूदेव सम्भवत प्रदर्शनप्रिय न रहे हो। यही कारण है कि अपने कुल, गोत्र, स्थान आदि के विषय मे उन्होने कुछ नही कहा। वास्तविकता यह है कि उनका कृतित्व ही उनका जीवन्त तथा शाश्वत परिचय है। अनुमान के आधार पर प्रेमीजी[2] ने उन्हे दाक्षिणात्य कहा और पुष्पदन्त के समान बरार की तरफ का माना, किन्तु डॉ० नामवरसिह ने इन्हे उत्तर का माना है—स्वयभू उत्तर के रहने वाले थे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ दिनो के बाद वे अपने सरक्षक रयडा धनजय के साथ दक्षिण के राष्ट्रकूट राज्य मे चले गए।[3] प्रतीत होता है कि स्वयभू दक्षिण के ही रहे होगे और सयोगवश कभी उत्तर की यात्रा उन्होने की होगी। इस मत का आधार कवि द्वारा चित्रित भौगोलिक स्थान तथा परम्परागत सास्कृतिक चित्रण है, जो उसे निश्चित रूप से दक्षिण का सिद्ध करता है। स्वयभू का कृतित्व इतना सशक्त है कि जन्मतिथि, जन्म-स्थान आदि के विवाद को छोडकर उन्हे भारत का गौरव कहा जा सकता है। डॉ० हरीश ने उन्हे अपभ्रश का वाल्मीकि[4] कहा और उनका प्रभाव परवर्ती काव्य पर स्वीकार किया।

डॉ० नामवरसिह ने स्वयभू का जो उदात्त पक्ष देखा, उसे उन्होने इन शब्दो मे रक्खा है—स्वयभू ने अपने काव्य का आरम्भ बडी ही उदात्त भूमिका के साथ किया है, जिसमे कवि के नम्र आत्मनिवेदन के बावजूद उसके अडिग आत्मविश्वास का आभास मिलता है। स्वयभू को अपनी रचना साधारण लोगो तक पहुँचानी है और इसके लिए आवश्यक है साधारण लोगो की भाषा का माध्यम। इस महान् उद्देश्य के लिए वे सारा व्याकरण, अलकारशास्त्र और पिगलशास्त्र निछावर करने को तैयार हैं। महान् उद्देश्य ही कवि को जबर्दस्त आत्मविश्वास देता है। लोकसुख

---

[1] जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९७

[2] वही, पृ० १९९।

[3] हिन्दी के विकास में अपभ्रश का योग, पृ० १७७।

[4] रविषेणाचार्य, वाल्मीकि आदि कवि स्वयंभू की काव्य-रचना के मूल प्रेरणास्रोत थे। यही नहीं, उनके इन काव्यो का प्रभाव परवर्ती तुलसीदास जैसे भक्तिकालीन महाकवि पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। स्वयंभू नि सन्देह अपभ्रश के वाल्मीकि थे।

—आदिकालीन हिन्दी-साहित्य शोध, पृ० २३।

मे ही स्वयभू को आत्मसुख है, और इसी आत्मसुख के लिए उन्होने अपनी रामायण रची ।[1]

'पउमचरिउ' मे कई उल्लेख ऐसे हैं जिनसे स्वयभू का किसी धनजय के आश्रय मे रहना सिद्ध होता है । यह व्यक्ति विशिष्ट न रह कर साधारण राजा या मन्त्री रहा होगा, क्योकि इतिहास मे इसका उल्लेख प्राय नहीं हुआ । स्वयभू की तीन कृतियाँ (१) पउमचरिउ,[2] (२) रिट्ठणेमिचरिउ,[3] तथा (३) स्वयभू छन्द[4] की निश्चित जानकारी उपलब्ध है ।

इसके अतिरिक्त दो अप्राप्त कृतियाँ भी उनके नाम पर बताई जाती हैं

(१) सिरी पचमी कहा या सिरी पचमी चरिउ[5],

(२) सुद्धयचरिउ[6] ।

स्वयभू अपनी कारयित्री प्रतिभा के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये थे । डॉ० भायाणी ने कहा है

Svayambhu should be counted among those fortunate writers who achieved during their life-time recognition and literary fame that was amplified by subsequent generations He was wellknown as kaviraja during his life-time and his son Tribhuvana never tires of speaking in glowing terms about his father [7]

स्वयभू का उल्लेख उनके परवर्ती कवियो प्रमुखत पुष्पदन्त, नयनन्दि, वीर, धनपाल, रइधू, नारायण भट्ट, राघव भट्ट आदि ने अत्यन्त आदर के साथ किया है । हेमचन्द्र ने उन्हे छन्दशास्त्र का सिद्ध तथा आधिकारिक विद्वान् माना है । स्वयभू का महत्त्व डॉ० नामवरसिंह के इस कथन से स्पष्ट है—स्वयभू और पुष्पदन्त जैसे कवियो को रूढियो का पोषक किसी भी मामले मे नही माना जा सकता । इन दोनो महाकवियो की रचनाएँ धर्म-विशेष के विचारो से प्रभावित हैं अवश्य, किन्तु उनके चरित-काव्यो मे अनेक प्रकार की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक रूढियो का विरोध किया गया है ।[8]

निस्सदेह स्वयभू का कृतित्व ही उनका सच्चा परिचय है, जिससे आज भी

---

[1] हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० १७८–७९ ।

[2] डॉ० एच्० सी० भायाणी ।

[3] डॉ० रामसिंह तोमर द्वारा सम्पादित (तीन हस्तलिखित प्रतियाँ हैं) ।

[4] प्रो० एच्० डी० वेलणकर द्वारा सम्पादित ।

[5] पउमचरिउ के प्रशस्ति-भाग मे त्रिभुवन स्वयभू का कथन ।

[6] डॉ० भायाणी निश्चितत स्वयंभू की कृति मानते हैं ।

—पउमचरिउ (भाग ३), पृ० ३८ ।

[7] पउमचरिउ, पृ० २९ ।

[8] हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० २४३ ।

काव्यत्व के साथ-साथ जीवन के उच्चतर मूल्यो की प्राण-प्रतिष्ठा हो रही है। स्वयंभू ने अपनी विलक्षण काव्यप्रतिभा से अनेक मौलिक उद्भावनाएँ[1] की हैं, जो उनके महत्त्व का स्पष्ट दिग्दर्शन कराती हैं और उन्हे प्रथम श्रेणी का गौरव प्रदान करती हैं।

स्वयंभू की साहित्यिक प्रतिभा को समाज, धर्म, दर्शन, संप्रदाय अथवा जातीयता की सकीर्ण भावना अधिक छू नही पाई, यद्यपि समय के प्रभाव से कही-कही उनमे यह प्रभाव दीख जाता है। इस सदर्भ मे डॉ० नामवरसिंह ने स्पष्ट किया है—पुष्पदन्त मे ब्राह्मणत्व विरोधी तत्त्व जितने अधिक हैं, स्वयभू में उतने नही।[2] स्वयभूदेव की अपनी गरिमा थी पूर्वाग्रह-मुक्त होकर काव्य-सृजन, जिसने उन्हे उच्चतम गौरव प्रदान किया है। डॉ० हरीश ने उनके काव्य को स्वर्ण की संज्ञा दी है।[3] डॉ० रामसिंह तोमर ने तो स्वयभू की प्रौढता तथा भाषा को लक्ष्य करके ही उन्हे अपभ्रंश का आदिकवि सिद्ध किया है—इस धारा (अपभ्रश महाकाव्य) मे सबसे प्राचीन कवि स्वयंभू हैं, जिनकी कृतियाँ उपलब्ध हैं। स्वयभू की भाषा तथा प्रौढता को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके बहुत पहले इस धारा का आरम्भ हुआ होगा।[4]

वस्तुत रामकाव्य परम्परा को अपभ्रश मे जीवन प्रदान करने का श्रेय स्वयभू को ही मिला है, क्योकि चतुर्मुख, जिन्हे स्वयभू का पूर्ववर्ती मानते हैं, की कोई कृति उपलब्ध नही और उनकी स्वयभू से तुलना नही की जा सकती। डॉ० सकटा प्रसाद उपाध्याय ने स्वयभू को अपभ्रंश का युग-प्रवर्तक कवि कहा है।[5] उन्होने अपभ्रश भाषा के स्वरूप को सुगठित और स्थिर करके उसे महाकाव्य के सर्वथा उपयुक्त बनाने का महान् कार्य किया। वास्तविकता तो यह है कि अपभ्रश-काव्य की उन सभी विधाओ के रूप-निर्माण मे स्वयभूदेव का प्रमुख योग रहा, जिनका आधुनिक भारतीय भाषाओ पर गहन प्रभाव पडा है। महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने तो अत्यन्त विश्वासपूर्वक लिखा है—तुलसी बाबा ने स्वयंभू-रामायण को जरूर देखा होगा . मेरी इस बात पर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मै समझता हूँ कि

---

[1] कवि ने राम, रावण, सीता, विभीषण, हनुमान्, लक्ष्मण आदि सभी पात्रो को जैनशिल्प में ढाला है तथा मौलिकता प्रस्तुत की है . .राम की सीता के प्रति कठोरता, सीता का पातिव्रत्य, अग्नि-परीक्षा, रावण-सीता सम्बन्ध तथा सीता की जिन धर्म मे दीक्षा आदि कई बातें मौलिक हैं।

—डॉ० हरीश आदिकालीन हिन्दी-साहित्य शोध, पृ० २४।

[2] हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग, पृ० १९३।

[3] स्वयभू की काव्यकला ऐसा खरा स्वर्ण है, जिसमे लोकमान तथा जनभाषा का सौरभ विद्यमान है।

—आदिकालीन हिन्दी-साहित्य शोध, पृ० ३०।

[4] प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, पृ० ९६।

[5] कवि स्वयंभू, पृ० २१५।

तुलसी बाबा ने 'क्वचिदन्यतोऽपि' से स्वयभू-रामायण की ओर ही सकेत किया है ।... ..
जिस सोरो क्षेत्र मे गोस्वामी जी ने रामकथा सुनी, उसी सोरो मे जैनघरो में रामायण पढी जाती थी ।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पप्ट हो जाता है कि स्वयभूदेव का प्रभाव परवर्ती चरित-काव्य—मुख्यत रामचरित-काव्य—पर पर्याप्त पडा है । इस विषय मे कवि स्वयभू के अध्येता डॉ० सकटाप्रसाद उपाध्याय का मत उल्लेखनीय है—प्राकृत-अपभ्रश काल से प्रवाहित होती हुई चरित-काव्य की जो विशेषताएँ हिन्दी मे आई और उसके चरित-काव्यो मे दृष्टिगत होती है, उन सब पर अन्य कवियो के साथ स्वयभू का भी प्रभाव मानना ही पडेगा । अपभ्रश-साहित्य मे स्वयभू का जो स्थान है और साथ ही अपभ्रश का हिन्दी से जो नैकट्य है, उसे देखते हुए यह कहना अधिक सगत प्रतीत होता है कि स्वयभू का हिन्दी के चरित-काव्यो पर सबसे अधिक प्रभाव है ।[2]

तुलसी पर भी स्वयभू के प्रभाव को प्रमाण देकर डॉ० उपाध्याय ने सिद्ध किया है ।[3] डॉ० हरिवश कोछड ने भी यह बात स्वीकार की है ।[4] प्राकृत और अपभ्रश साहित्य का हिन्दी पर प्रभाव खोजने के सद्प्रयास मे डॉ० रामसिह तोमर ने प्रयत्न-पूर्वक स्वयभू का प्रभाव तुलसी पर स्वीकार किया है—तुलसी की कृति मे प्राय छन्दो की रूपरेखा अपभ्रश चरित-काव्यो के समान ही है । उसका मूल स्रोत अपभ्रश के इन चरित-काव्यो को माना जा सकता है । पद्धडिया-घत्ता शैली का ही परिवर्धित रूप चौपाई-दोहा शैली को कहा जा सकता है ।[5]

निष्कर्ष रूप मे स्वयभू को युगप्रवर्त्तक, क्रान्तदर्शी कवि कहने मे दो मत नही हो सकते । भले ही उनके जन्म, स्थान, वश, गोत्र आदि का परिचय हम न पा सकते हो, किन्तु 'पउमचरिउ' के रूप मे उनका श्रेष्ठ कृतित्व उनको चिर अमरत्व प्रदान करने मे समर्थ है । उनके भीतर जो प्रतिभा सपन्न कवि था, उसका स्वरूप डॉ० नामवरसिह ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक देखा—पुरुष के अत्याचारो के विरुद्ध नारी के आत्म-गौरव को उस युग मे स्वयभू न जितने साहस के साथ प्रतिष्ठित किया, उतना साहस और किसी ने नही दिखाया । भौतिक सुख-विलास के आसक्तिपूर्ण जीवन की असारता बतलाकर एक उच्चतर आध्यात्मिक आचरण की प्रेरणा देने मे उनके काव्य अग्रणी रहे ।[6] वस्तुत स्वयभू के 'पउमचरिउ' मे उच्च काव्यत्व, सामा-

[1] हिन्दी काव्यधारा, पृ० ५२ ।

[2] कवि स्वयभू, पृ० २१६ ।

[3] लक्ष्य करने की बात यह है, दोनो मे रामकथा का रूप भिन्न होते हुए भी दोनो की वर्णन-शैली मे बहुत कुछ साम्य है । कथा का रूपक लगभग एकसा है । सवाद-शैली दोनों मे एक-सी है । यह समानता केवल आकस्मिक है, ऐसा नही कहा जा सकता ।

—वही, पृ० २१६ ।

[4] अपभ्रश साहित्य, पृ० ४६ ।

[5] प्राकृत और अपभ्रश साहित्य, पृ० २३५ ।

[6] हिन्दी के विकास में अपभ्रश का योग, पृ० २४४ ।

त्मिकता, दार्शनिकता, धार्मिकता एव सस्कृति सभी का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है ।

महाकवि तुलसीदास—सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रश से होती हुई राम की पावन चरित-गाथा हिन्दी मे पहुँची और उसे वहाँ एक ऐसा युगान्तरकारी सजग कवि मिल गया, जिसने काव्य की मनोरम, कल्पना-प्रधान भाव-भूमि से उठाकर रामकथा को 'आदर्श' का दृढ आधार देकर समाज मे—प्रत्येक मन मे—प्रतिष्ठित कर दिया। यह युगचेता कवि था तुलसीदास, जिसने सदियो की दासता से जर्जरित, मृतप्राय और निराश हिन्दू जाति को अपने उदार व्यक्तित्व तथा आदर्श कवित्व से नवीन जीवन-शक्ति प्रदान की। तुलसी का महत्त्व आज विश्व भर मे माना जा रहा है, क्योकि जिन शाश्वत मूल्यो, आदर्शों तथा निष्ठाओ की प्राण-प्रतिष्ठा तुलसी-काव्य मे हुई है, वह देशकाल के दायरो से निकल कर प्रत्येक युग के प्रत्येक मानव-मन का दर्पण बन गई है।

आधुनिकता के सदर्भ मे तुलसी का मूल्याकन करने वाले डॉ० रमेशकुन्तल मेघ ने तुलसी को 'लोक-भूमि' का कवि मानते हुए गौरव दिया है—सारे मुगलकाल मे दो ही व्यक्ति व्यापक इतिहास के प्रतीक है, अकबर और तुलसी। व्यापकता, दूर-दर्शिता, भारत के महत् भविष्य के प्रति झिलमिलाते स्वप्नो का साकारीकरण, विराट् जनता के स्पदनो और देश के यथार्थ को शनै-शनै लोक-भूमि से आँकना इन दोनो का ही सामर्थ्य था।[1] इतना ही नही, डॉ० मेघ तो लोक-जीवन के इस गायक को प्रकारान्तर से तत्कालीन शासक अकबर से भी ऊँचा मानते है।[2]

इतिहास साक्षी है कि तुलसी ने निराशा, घुटन तथा मानसिक-सास्कृतिक पतन के समय हिन्दू जाति को आदर्शों का अमृत पिलाया। इस्लामी सत्ता एव सभ्यता के प्रथम वेग मे जिन भावनाओ की अभिव्यक्ति हुई, उन पर इस्लाम का गहरा रग चढा हुआ था, किन्तु ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, इस्लाम की एकागिता, अपूर्णता और शुष्कता का बोध भारतीय जन-मन को होने लगा। परिणामत भारत मे जन्मी, पोषित अनुपम भावश्री की ओर समाज-चिन्तको ने देखा और उससे जीवनी-शक्ति ग्रहण कर समाज को गिरने से बचाया तथा नवगति प्रदान की।

स्वयभूदेव की ही भाँति तुलसीदास का जीवन-चरित भी अनेक विवादो का शिकार रहा है और साहित्य के महारथियो ने अपने-अपने दाँव-पेच दिखाकर कभी तुलसी को सोरो मे पैदा करा दिया है तो कभी राजापुर मे। उनकी जन्मतिथि पर सहमति नही, मृत्यु-तिथि को विवाद का विषय बना दिया गया है। हम डॉ० रमेशकुन्तल मेघ की धारणा से सहमत है—तुलसी की जीवनी (जन्म-मृत्यु तिथियाँ, जन्म-स्थान

---

[1] तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ७।

[2] अकबर का दरबार सामन्तीय सस्कृति तथा जीवन की धुरी था, और तुलसी का ससार लोक-जीवन की दारुण गाथा और रामकथा की आध्यात्मिक संस्कृति का हृदय था।

—वही, पृ० ७३।

आदि से सम्बन्धित असली या जाली सामग्री पर एकेडेमिक वाद-विवाद) से अधिक तत्त्वपूर्ण उनकी आत्मकथा है। ऐतिहासिक अभिप्राय के लिए बस यही जानना अपेक्षित है कि वे अकबर और जहाँगीर के शासन-काल मे गगा-सरयू के आसपास के कवि भक्त यायावर थे।[1]

तुलसीदास के जीवन-चरित पर डॉ० राजाराम रस्तोगी ने अपने शोधप्रबन्ध मे तुलसी के जन्म, स्थान आदि से सम्बद्ध सामग्री पर गहन विवेचन करके निष्कर्ष दिए है। वे जन्म सम्वत् १५८९ स्वीकार करते है—तुलसीदास की जन्म-तिथि सम्बन्धी इन धारणाओ पर यदि ध्यान केन्द्रित करेंगे, तो स० १५५४, स० १५६०, स० १६००—१०, स० १५८३ और स० १५८९ मे सम्वत् १५८९ की तिथि गणना से भी शुद्ध है और उसका साक्ष्य भी अत्यन्त पुराना है। फलत इस तिथि को ही गोस्वामी तुलसीदास की जन्मतिथि स्वीकार कर हम सदा के लिए इस विवाद को समाप्त कर लें।[2] पर्याप्त विवेचन के पश्चात् तुलसी की मृत्यु-तिथि डॉ० रस्तोगी ने स० १६८० स्वीकार की है—फलत गोस्वामी जी की निधन तिथि ५ जुलाई, सन् १६२३ तथा सवत् १६८०, श्रावण सुदी ३ दिन शनिवार ही माननी चाहिये।[3]

तुलसीदास के काव्य मे तथा उनके समकालीन, परवर्ती साहित्यकारो की रचनाओ आदि मे बिखरे सकेत-सूत्रो का समायोजन करके डॉ० रस्तोगी ने तुलसीदास की जीवनी प्रस्तुत की है। उनके द्वारा प्रस्तुत यह जीवनी अधिकाशत प्रामाणिक बन गई है, क्योंकि इसमे तुलसी कृत रचनाओ द्वारा सकेतित तथ्यो को समाहित किया गया है।[4] जीवनी इस प्रकार है

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म **सोरो** जिला एटा मे एक गरीब **ब्राह्मण परिवार** मे स० **१५८९ भादो सुदी ११ दिन मगलवार** को हुआ था। इनका नाम तुलसीदास था और 'राम-राम' कहकर भिक्षा माँगने के कारण इनका नाम **रामबोला** पड़ा। इनकी माता का नाम **हुलसी** और पिता का नाम **आत्माराम** था। सोरो के **नरहरिदास** इनके गुरु थे, जिनसे इन्होने बचपन मे रामकथा सुनी थी। दीनबन्धु पाठक की गुणवती कन्या **रत्नावली** से इनका विवाह सम्पन्न हुआ था और अपनी पत्नी के उपदेश से ही इन्होंने वैराग्य धारण किया था। वैराग्य धारण करने के उपरान्त इन्होने भारत के प्रसिद्ध **तीर्थ स्थानो की यात्रा** की। देश-दर्शन मे गोस्वामी जी ने अपनी आँखो से देश की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दुर्दशा का **भीषण दृश्य**

---

[1] तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ११७।

[2] तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० ६५—६६।

[3] वही, पृ० १३२।

[4] मैंने सभी सूत्रो से प्राप्त जीवन-वृत्त सकेतो को विश्लिष्ट कर निम्न जीवनी प्रस्तुत की है, जिसमें तुलसीदास के अध्ययन की आधारभूत सामग्रियो का ही मात्र प्रभाव नहीं है, बल्कि तुलसी कृत रचनाओ द्वारा सकेतित तथ्यो को भी उचित महत्त्व मिला है।

—वही, पृ० १३३।

देखा । देश-दर्शन के उपरान्त वे चित्रकूट में राम-भक्ति मे लीन हुए और अयोध्या मे तुलसी चौरा नामक स्थान पर रह कर इन्होंने रामकथा के गूढ तत्त्वो को कथा वार्ता के रूप मे जनता को समझाने का प्रयास किया । पुन. काशी आकर 'रामचरित-मानस' ग्रन्थ की रचना समाप्त की, जिसमे राम-भक्ति, देशभक्ति और समाज-भक्ति 'नानापुराणनिगमागम' से उद्धृत कर रक्खे गए । काशी मे आकर तुलसीदास हनुमान् फाटक और असी घाट पर रहे थे और गोपाल मन्दिर की एक कोठरी मे इन्होंने विनयपत्रिका की रचना की थी । तुलसीदास की काशी मे काफी ख्याति हुई । यद्यपि इस सम्मान को वे राम-नाम की महिमा मानते थे । इन्होंने काशी मे रामकथा से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थों की रचना की । स्वय वह एक विनम्र मृदुल स्वभाव के सत थे । दीर्घकाल तक सदाचार और सात्त्विक जीवन बिता कर तुलसीदास ने अपनी लौकिक लीला सम्वत् १६८० मे समाप्त की, और इस प्रकार भारत का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यकार रामनाम यश के माध्यम से मानव जीवन का, विशेषत हिन्दू समाज के जीवन का कायाकल्प कर सदा के लिए मौन हो गया ।[1]

वस्तुत तुलसी का वास्तविक परिचय भी उनका उत्कृष्ट कृतित्व ही है, जिसने काल के अजेय हाथो से उन्हे छीन कर अमर बना दिया है । तुलसी मात्र कवि नही, युगचेता समाजद्रष्टा भी थे और उनका यही रूप भारतीय प्रज्ञा का प्रतीक है । तुलसी के व्यापक दृष्टिकोण को इस कथन मे देखा जा सकता है—उनकी रचनाओ मे राजनीति से लेकर वेदान्त-दर्शन तक की अभिव्यक्ति है और सभी क्षेत्रो मे उनकी नई सूझ-बूझ अपनी एक मौलिक एव मगलमय छाप लगाती है। उनके सभी पात्र भारतीय मर्यादा से अनुप्राणित होकर चलते है ।[2]

स्वयभूदेव तथा तुलसीदास मे एक बहुत बडी समानता यही है कि लोक-मानस को अभिव्यक्ति देने का प्रयास इन दोनो ने सर्वोच्च उद्देश्य मानकर किया । तुलसी की इस महान् लोक-भावना को आधुनिक चिन्तक भी स्वीकार करता है कि आर्थिक दरिद्रता को इतना भोगने, समझने वाला मनुष्य और दरिद्रता से इतनी प्रगाढ नफरत करने वाला लोक-कवि और दरिद्रता के सामाजिक परिणामो को इतना सटीक विश्लेषित करने वाला समाज-पुरुष तुलसी के अलावा सारे मुसलिम मध्यकाल मे दूजा नही है ।[3]

समाज के जिस भ्रष्ट और पतित रूप को तुलसी ने देखा था, उससे आदर्श प्राप्त कर पाना निश्चय ही उनकी अन्तश्चेतना का परिचायक है । इस अन्त प्रेरणा[4]

---

[1] तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० १३३–३५ ।

[2] सुधाकर पाण्डेय मानस-अनुशीलन, पृ० १३ ।

[3] डॉ० रमेशकुन्तल मेघ तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ८२ ।

[4] तुलसी के काव्यो की इतनी अधिक सफलता का रहस्य अन्त प्रेरणा की उनकी अद्भुत पकड और इसका उचित उपयोग कर लेने की उनकी अद्भुत कला में ही निहित है ।

—डॉ० श्रीधरसिंह तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा, पृ० १०० ।

का परिणाम उनकी रचनाओ मे भावो की व्यापकता और तीव्रता के साथ-साथ लोक-भावना मे भी हुआ।

तुलसी का समाज इतिहास के पृष्ठो पर निश्चय ही पतनशील समाज के रूप में चित्रित है। एक चित्र देखिए—वासना-विलास, नारी-भोग, यौनाचार आदि की प्रबलता की वजह से दरबारी सस्कृति का चरित्र नारीमय (फेमिनिन) हो गया था, तथा युद्धो की विभीषिकाओ के कारण चालाकी, छल, फरेब, झूठ, लोभ, नैतिक पतन, शोषण, दरिद्रता और अकाल सारे समाज को जकडे हुए थे।[1]

पर्याप्त विश्लेषण-विवेचन के बाद तुलसी की रचनाओ मे, प्रामाणिक आधार पर, अब निम्न बारह कृतियाँ स्वीकार की गई है[2]

(१) रामचरितमानम,	(२) विनयपत्रिका,	(३) कवितावली,
(४) पार्वतीमगल,	(५) जानकीमगल,	(६) रामलला नहछू,
(७) बरवै रामायण,	(८) दोहावली,	(९) श्रीकृष्ण गीतावली,
(१०) रामाज्ञा-प्रश्न,	(११) गीतावली,	(१२) वैराग्य-सदीपनी।

इनमे से 'रामचरितमानस' को विश्वव्यापी सम्मान एव श्रद्धा मिली है। इस ग्रन्थ का महत्त्व सुधाकर पाण्डेय के इस कथन से व्यक्त हो जाता है—गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानम हिन्दी का ऐसा ग्रन्थ है जिसने धर्म और साहित्य दोनो क्षेत्रो मे विश्व मे अनन्य सम्मान अर्जित किया है। अपनी प्रभा से न केवल अभिव्यक्ति की सत्यता का चिरतन आलोक उसने लोक को दिया है, अपितु कल्याण की अनन्त रश्मियो से दिनोत्तर युग मानस को सौन्दर्य मे भी सुन्दर रूप मे गगा की अजस्र धारा की भाँति अमृत का पान कराते हुए भविष्य को मगल-मण्डित किया है।[3] मानस के तत्त्व को पा सकना सरल कार्य नही, अत्यन्त श्रमसाध्य है।[4]

तुलसी का साहित्य-सागर तो वस्तुत अथाह है, उसमे जितना ही जिज्ञासु डूबता है, उतना ही ज्ञान-मोती वह पा जाता है। जीवन की समग्र व्याख्या तुलसी के रामचरितमानस मे मिल जाती है। सुधाकर पाण्डेय ने सत्य ही कहा है—आप सारे विश्व का साहित्य उलट डालिए, उन पुस्तको के अध्ययन से आपको जो विवेक होगा, जिस सूक्ष्म मनोभाव का सुन्दर विश्लेषण आप देखेगे, वह कही-न-कही 'रामचरितमानस' मे अवश्य मिलेगा और जो जितनी पूँजी लेकर यहाँ आता है, उसे उतना ही आनन्द

---

[1] डॉ० रमेशकुन्तल मेघ तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ७७।

[2] रामनरेश त्रिपाठी तुलसी और उनका काव्य, पृ० १०५।

[3] मानस-अनुशीलन, पृ० १८।

[4] मानस की प्रभा के इस अन्तर रहस्य का उदघाटन करने मे गम्भीर चिन्तक, विचारक और समीक्षक उसके रचनाकाल से आज तक प्राणपन से लगे हुए हैं, किन्तु उसके मूल-तत्त्व तक पहुँचने का दावा करने वालो के अनुसन्धान उनकी आत्मतुष्टि के साधन भले ही बन गए हो, ज्ञानतृप्ति के सहज अन्तिम माध्यम नही।
—वही, पृ० १९।

मिलता है ।[1]

निश्चितत तुलसी ने युगान्तर उपस्थित करके शाश्वत् मूल्यो तथा आदर्शों की प्राण-प्रतिष्ठा का महान् कार्य किया । अपनी कृतियो द्वारा मानवता को जागृत किया और धर्म के उज्ज्वल-निर्मल प्रकाश से जीवन के अन्धकारमय प्रकोष्ठ को जगमगाया और सस्कृति के स्वर्णिम प्रकाश मे कलुष का नाश करके भविष्य-स्रष्टा के अपने महत्तर दायित्व को पूर्ण कर भारतीय कवि-धर्म की परम्परा के अग्रदूत बन गए ।

तुलसी को आलोचको तथा जिज्ञासु विद्वानो ने अनेक दृष्टियो से देखा-परखा है, किन्तु नारी-चित्रण की दृष्टि से उन्हे अभी परखा जाना शेष है, क्योकि सर्वाधिक विवाद यही रहा है । डॉ० राजपति दीक्षित का तो कथन है—तुलसीदास की नारी-कल्पना अनुसधान का स्वतन्त्र विषय होने की क्षमता रखती है ।[2] तुलसी ने नारी को अनेक दृष्टियो से देखा-परखा और चित्रित किया, अत अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण की अपेक्षा उनके नारी-चित्रण को परखने मे है ।

नारी-चित्रण की दृष्टि से इन महाकवियो का मूल्याकन इस निमित्त किया जा रहा है कि नारी सृष्टि के आदि से ही मानव की प्रेरक-शक्ति रही है । समाज, धर्म, सस्कृति—सभी के मूल मे कही-न-कही नारी महत्त्वपूर्ण भूमिका मे प्रतिष्ठित रही है । डॉ० सुधारानी शुक्ला का कथन उल्लेखनीय है—भारतीय नारी सदैव अपने जीवन के बाह्य तथा आभ्यन्तर क्षेत्रो मे व्याप्त रही है । नारी की समस्त शक्तियो का सदुपयोग समाज और देश के लिए होता रहा है ।[3] कवि सदैव स्रष्टा के रूप मे नारी की शक्तियो का समायोजन करके समाज के निर्माण मे अग्रसर होता रहा है ।[4] नारी समाज की रीढ, शक्ति बनी रही और उसने समाज का नियमन किया, कभी जननी बनकर, कभी प्रिया, पत्नी बनकर, कभी बहन, आत्मजा बनकर और कभी नेत्री बनकर । नारी के इस व्यापक चरित्र का अकन विश्व-साहित्य मे हुआ है और विश्व-साहित्य मे उसे गौरवमण्डित किया गया है ।

---

[1] सुधाकर पाण्डेय मानस-अनुशीलन, पृ० ३३ ।

[2] तुलसीदास और उनका युग, पृ० ७६ ।

[3] गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक आदर्श, पृ० २७ ।

[4] नारी क्या है, इसकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं, उसमें किन-किन गुणो का आधिक्य है, इनका प्रयोग वह हित-अनहित के लिए कैसे करती हैं, ये सब बातें उनके ध्यान में बराबर रही हैं ।

—वही, पृ० ४० ।

२

नारी-पात्र के संघटक तत्त्व

(सैद्धान्तिक विवेचन)

साहित्य की सर्जना करने वाला कलाकार अपने भावो, विचारो तथा मान्यताओ आदि को सजीव अभिव्यक्ति देने के निमित्त अनेक पात्रो की सर्जना करता है। ये पात्र, जो कलाकार की लेखनी से प्राणतत्त्व पाकर साहित्य मे अमर बन जाते हैं, साहित्यकार की आत्मा का अश होते है, जिन्हे वह अपना भाव-रक्त देकर जीवन प्रदान करता है। पात्र मुख्यत दो कोटियो मे आते है—'पुरुष-पात्र' एव 'नारी-पात्र'। अनन्तर इनके अनेक भेद-उपभेद हो सकते है।

कलाकार वस्तुत स्रष्टा होता है और उसके पात्र होते है उसकी सृष्टि। सामान्यत पात्रो के सघटन मे विभिन्न तत्त्व प्रभावी रहते है, रह सकते है, तथापि कतिपय निम्न तत्त्वो का विवेचन पर्याप्त तथा समीचीन रहेगा

(अ) मनोवैज्ञानिक तत्त्व,

(ब) सामाजिक एव सास्कृतिक तत्त्व,

(स) देशकालगत तत्त्व,

(द) 'मिथ' (पुराण-विषयक) तत्त्व,

(इ) कवि-दृष्टिकोण।

सामान्यत चरित्र का सघटन किन-किन रूपो मे हो सकता है, यह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बताया है—चरित्र का विधान चार रूपो मे हो सकता है (१) आदर्श रूप मे, (२) जाति-स्वभाव के रूप मे, (३) व्यक्ति-स्वभाव के रूप मे, (४) सामान्य स्वभाव के रूप मे।[1] अन्यत्र शुक्लजी ने सात्त्विक, राजस तथा तामस प्रवृत्तियो के अनुसार पात्रों को 'आदर्श' तथा 'सामान्य'—दो ही प्रकार का माना है।[2]

[1] जायसी ग्रन्थावली, पृ० १२१।

[2] गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १११।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का उक्त वर्गीकरण सूत्र रूप मे प्रत्येक पात्र को स्वयं मे समाहित कर लेता है और चरित्र-चित्रण की पद्धति की ओर महत्त्वपूर्ण सकेत करता है। शुक्ल जी का यह वर्गीकरण देशकाल की सीमाओ से परे जाकर प्रत्येक पात्र का विश्लेषण करने का आधार देता है। जहाँ आचार्य शुक्ल 'जाति स्वभाव' तथा 'व्यक्ति स्वभाव' की चर्चा करते हैं, वह 'सामाजिक तत्त्व' के अन्तर्गत विवेचित हो जाता है। 'आदर्श' तथा 'सामान्य' रूप मे चरित्र वर्णन उनकी मौलिक सूझ है, जो 'मनोवैज्ञानिक तत्त्व' मे लिया जा सकता है। उक्त वर्गीकरण को आधार मानकर हम अन्य तत्त्वो का, जो सूत्र-रूप मे कहने के कारण ही शुक्लजी के वर्गीकरण में नहीं आ सके, विवेचन करेंगे।

(अ) मनोवैज्ञानिक तत्त्व

मनोविज्ञान को विद्वानो ने जिस रूप मे परिभाषित किया, उसके अनुसार 'मनोविज्ञान व्यवहार का विधायी विज्ञान है।'[1] मनोविज्ञान ने आधुनिक युग मे तथा विगत मे भी मानव को स्वय के अन्त करण तथा अन्य व्यक्तियो के व्यवहार को समझने का आधार दिया है। मनुष्य के मन के ऊपरी स्तरो के अध्ययन से सन्तुष्ट न होकर मन के भीतरी स्तरो का अध्ययन जब आरम्भ हुआ, तो मनोविज्ञान को 'मनोविश्लेषण' का रूप मिला। मनोविज्ञान व्यक्तियो के समूहो तथा समाज मे उनके व्यवहारो से सम्बद्ध गुत्थियो को सुलझाने का निरन्तर प्रयास करता है।

मनोविज्ञान की विद्वत्-समाज द्वारा की गई विस्तृत चर्चा यहाँ समीचीन नही होगी। यो तो मनोविज्ञान एक नवीन विधा के रूप मे आज प्रतिष्ठित है और प्राचीन साहित्य मे उसका यही रूप मिलना कठिन है, तथापि 'मानव-व्यवहार का अध्ययन' करने वाले ज्ञान के रूप मे यह प्रत्येक युग के 'मानव-व्यवहार' का अध्ययन करने मे समर्थ होना चाहिये। डॉ० श्यामसुन्दर व्यास का कथन उल्लेखनीय है—मनोविज्ञान का किसी-न-किसी रूप मे नारी-चित्रण के साथ भी सम्बन्ध रहा है। हमारे मनीषियो एव कविगणो ने नारी-चित्रण मे व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया है। इन मनीषियो के पास आधुनिक मनोवैज्ञानिको की तरह साज-सज्जा, साधन-सुसज्जित प्रयोगशालाएँ नही थी। **उनकी प्रयोगशाला थी नित्य प्रति बदलता रहने वाला समाज।** अत उनके सामान्यीकरण मे अन्तिमता भले ही न आई हो, पर वे एक निश्चित धारणा अवश्य निर्धारित कर चुके थे।[2]

निश्चय ही मानव-व्यवहार का विस्तृत क्षेत्र मनोविज्ञान को अध्ययन की

---

[1] Psychology is the positive science of the behaviour of living things
—Wm Mcdougall

—डॉ० रामनाथ शर्मा मनोविज्ञान के मूलतत्त्व, पृ० ३३।

[2] हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, पृ० ३१।

सामग्री देता है। मानव के व्यक्तित्व की व्याख्या मनोविज्ञान ही करता है।

व्यक्तित्व के संगठन पर विचार करने वाले विद्वानों मे सिगमंड फ्रायड (१८५६–१९३९ ई०), एल्फ्रेड एडलर (१८७० ई०), तथा कार्ल गुस्टैव युग (१८७५–१९६१ ई०) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। फ्रॉयड ने समग्र व्यक्तित्व की धारणा तीन प्रमुख तन्त्रो के रूप मे दी, ये है—'इद' (Id), 'अहम्' (Ego), तथा 'पराहम्' (Super-Ego)। फ्रॉयड ने इन तत्त्वो के विषय मे बताया है—मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति मे ये तीनो तंत्र एकीकृत तथा सामंजस्यपूर्ण रीति से संगठित होते हैं। सह-योग से कार्य करने पर वे व्यक्ति को वातावरण के साथ कुशलतापूर्वक तथा सन्तोष-जनक रूप से निर्वाह करने योग्य बनाते है। इस प्रकार के निर्वाह का लक्ष्य है मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओ तथा इच्छाओ को पूरा करना। इसके विपरीत यदि इन तीनो तंत्रो मे परस्पर विषमता हो, तो व्यक्ति को कुसमंज्जित कहा जायेगा। वह अपने से तथा जगत् से असन्तुष्ट होता है और उसकी कार्य कुशलता कम हो जाती है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि किसी पात्र के संघटन मे 'इद', 'अहम्' तथा 'पराहम्' के संयोजन अथवा असंयोजन का गंभीर परिणाम होता है। पात्र के भीतर व्याप्त असन्तोष, रोष, निराशा, ईर्ष्या, उत्फुल्लता, दया, सहयोग आदि भावो का प्रकाशन इन्ही तीनो तंत्रो के संयोजन-असंयोजन का परिणाम होता है। संक्षेप मे, इन तीनो के स्वरूप को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

'इद' (Id)—'इद' का एक कार्य उत्तेजना की मात्रा को, जो अंगो मे आन्तरिक या बाह्य उद्दीपन से उत्पन्न होती है, तुरन्त विसर्जित करना है। फ्रॉयड के मतानु-सार मानव का अचेतन अन्तरंग मूल प्रवृत्तियो, अतृप्त इच्छाओ तथा दमित अनुभूतियो का भण्डार है। यह परिवेश के सम्पर्क मे नही है। यही 'इद' है। 'इद' का कार्य जीवन के मूलतत्त्व को, जिसे फ्रायड ने 'सुख तत्त्व' माना है, पूरा करना है। सुख तत्त्व का लक्ष्य व्यक्ति को तनाव से मुक्त करना या तनाव की मात्रा को कम करना होता है। 'इद' बुद्धि या तर्क से शासित नही होता और न ही मूल्य, नैतिकता या आचार से युक्त होता है।[2]

फ्रॉयड 'इद' को **सच्चा मनस्तत्त्व** कहता है। इसे वह मूल आत्मगत यथार्थ मानता है। केवल जाति के इतिहास की दृष्टि से ही 'इद' आदि तंत्र नहीं, अपितु व्यक्ति के जीवन मे भी यही आदि तंत्र है। यही वह आधार है, जिस पर व्यक्तित्व-निर्माण होता है। यह तनाव को सह नहीं सकता, तुरन्त सन्तुष्टि चाहता है। 'इद' आग्रहशील, आवेगशील, अबौद्धिक, स्वार्थी तथा सुखापेक्षी होता है। फ्रायड यह स्वीकार करता है कि **'इद' व्यक्तित्व का गूढ़ तथा अभेद्य स्तर है। जब कोई व्यक्ति**

---

[1] कैल्विन एम० हॉल फ्रॉयड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृ० १९।

[2] वही, पृ० २३।

आवेगपूर्ण कार्य करता है, तो हम 'इद' को क्रियाशील होते देख सकते हैं।[1] 'इद' की प्रधानता वाला व्यक्ति अपना अधिकांश समय दिवा-स्वप्न देखने मे तथा कल्पना की उड़ान भरने में व्यतीत करता है। 'इद' विचार नही करता, यह केवल इच्छा करता है या काम करता है।

भारतीय विद्वान् डॉ० राधाकमल मुखर्जी ने व्यक्तित्व को एक स्वतन्त्र इकाई मान कर भी कई आधारो पर विभाजित किया है।[2] उन्होने 'इद' के विषय मे लिखा है

The id is the seething, boiling, hidden cauldron of organic dispositions It is the raw—'biological Self' of the mind's underworld—the kernel of the true unconscious [3]

डॉ० मुखर्जी ने भी 'इद' को आवेगपूर्ण तथा दमित कामनाओ का भण्डार माना है। वे इसे 'जैव व्यक्तित्व' का रूप देते हैं—अन्तर यही है। निष्कर्षत बुद्धि, तर्क, विचार से रहित, आवेगपूर्ण इच्छाओ की तृप्ति करके, तनाव से मुक्ति दिलाने वाला तत्र 'इद' है।

'अहम्' (Ego)—फ्रॉयड ने आरम्भ मे 'इद' को अचेतन तथा 'अहम्' को चेतन मानकर अचेतन तथा चेतन के मध्य सघर्ष के रूप मे इनकी व्याख्या की, परन्तु बाद मे उसने पाया कि 'अहम्' अशत चेतन तथा अशत अचेतन है। चेतन पक्ष मे 'अहम्' परिवेश के सम्पर्क मे रहता है और प्राणी के अन्तर्मानस मे सबद्ध रहता है। यह अन्तर्मानस अचेतन है और 'अहम्' के इसमे सम्पर्क का प्रमाण चेतन दुख-सुख मे मिलता है। अशत चेतन और अशत अचेतन होने के कारण 'अहम्' इन दोनो जगत् मे मध्यस्थता करता है।

फ्रॉयड के अनुसार जो व्यक्ति उचित रूप से समजित होता है, 'अहम्' उसके व्यक्तित्व का कार्य सम्पादक होता है। यह 'इद' तथा 'पराहम्' को शासित एव नियन्त्रित रखता है और समग्र व्यक्तित्व के हित तथा उसकी दूरस्थ आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए बाह्य जगत् से सम्पर्क बनाए रखता है। **यदि 'अहम्' कार्य सपादन निपुणता से करता है, तो सामजस्य तथा समजन की स्थिति बनी रहती है।** यदि 'अहम्' अपनी अधिक शक्ति को त्याग देता है, या 'इद' या 'पराहम्' या बाह्य जगत् के समक्ष आत्म-समर्पण कर देता है, तो असामजस्य, समजनहीनता का बोलबाला हो

---

[1] कैल्विन एस्० हॉल फ्रॉयड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृ० २१।

[2] Man's self is an emergent unity although it is distributed between several dimensions or levels The self is biological, social and transcendent or cosmic in a system of hierarchy of needs, values and experiences

—*The Philosophy of Personality*, p 15

[3] वही, पृ० २१।

जाता है ।[1]

'अहम्' सुख-तत्त्व के स्थान पर यथार्थ-तत्त्व से परिचालित होता है । 'इद' सुख की खोज अधा होकर करता है, परन्तु 'अहम्' उसे नियन्त्रित करता है ।

'अहम्' मे विचार तथा चिन्तन का अश रहता है । यद्यपि यह बहुत अंश तक वातावरण के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम है, तो भी 'अहम्' के विकास की रेखाएँ आनुवशिकता द्वारा निश्चित होती है तथा विकास की स्वाभाविक प्रक्रियाओ द्वारा निर्दिष्ट होती है ।[2] सफलतापूर्वक विकसित होने पर 'अहम्' व्यवस्थित तथा सगठित हो जाता है तथा परिवेश से अनुकूलन कर लेता है, किन्तु 'इद' सदैव आदिम और असगठित ही रहता है ।[3] डॉ० राधाकमल मुखर्जी भी 'अहम्' को 'इद' से श्रेष्ठतर तथा उसे नियन्त्रित करने वाला मानते है और अहम् को 'सामाजिक व्यक्तित्व' कहते हैं ।[4] 'अहम्' व्यक्ति को कल्पना के धरातल से यथार्थ के धरातल पर लाने वाला तन्त्र है ।

'पराहम्' (Super-Ego)—मानव व्यक्तित्व का तीसरा प्रमुख तन्त्र, उसकी नैतिक अथवा विवेचक शाखा, 'पराहम्' है । यह यथार्थ-तत्त्व के स्थान पर 'आदर्श-तत्त्व' का प्रतिनिधित्व करता है तथा सुख अथवा यथार्थ के स्थान पर पूर्णता की ओर उन्मुख होता है । **'पराहम्' व्यक्ति की आचार-सहिता है** ।[5] माता-पिता की सद्-असद् एव पाप-पुण्य की मान्यताओ को आत्मसात् करने के फलस्वरूप व्यक्ति के 'अहम्' से ही 'पराहम्' का विकास होता है और माता-पिता की नैतिक सत्ता को आत्मसात् करने से व्यक्ति उसके स्थान पर स्वय अपने अन्दर की सत्ता की प्रतिष्ठा करता है । वस्तुत 'इद' तथा 'अहम्' का विकास ही 'पराहम्' है, जैसे 'अहम्' व्यक्ति के 'इद' को शासित करता है, वैसे ही 'पराहम्' इन दोनो —'इद' तथा 'अहम्' को शासित करता है । 'पराहम्' व्यक्ति को नैतिक आदर्शो के प्रति सचेष्ट करता है ।[6]

फ्रॉयड ने 'पराहम्' की कल्पना वस्तुत अन्तश्चेतना अथवा अन्तरात्मा के रूप मे की है । यह 'पराहम्' व्यक्ति के 'अहम्' पर अनेक नियम तथा निषेध लादने की चेष्टा करता है । यह निर्देश देता है, 'यह करना है', 'यह नही करना है' । 'अहम्' तथा 'पराहम्' मे मुख्य अन्तर यही है कि 'अहम्' सब प्राणियो मे होता है, किन्तु 'पराहम्' केवल मानव-प्राणी मे पाया जाता है । 'पराहम्' के दो उपतन्त्र हैं—

[1] कैल्विन एस्० हॉल फ्रॉयड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृ० २४ ।

[2] वही, पृ० २६ ।

[3] वही, पृ० २७ ।

[4] The ego is the higher mental organisation, and is in perpetual tension with the id that must run its own course and fulfil its own aims if neuroses and psychoses due to repression have to be avoided

—*The Philosophy of Personality*, p 21

[5] कैल्विन एस्० हॉल फ्रॉयड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृ० २७ ।

[6] वही, पृ० २७ ।

१ अहम्-आदर्श तथा २ अन्तर्विवेक, जो क्रमश नैतिक शुभ तथा नैतिक अशुभ से परिचालित होते हैं। मूल परिणाम आदर्श तथा नैतिकता का परिपालन ही है।[1] डॉ० राधाकमल मुखर्जी ने 'पराहम्' को 'श्रेष्ठ व्यक्तित्व' मानते हुए कहा है

The Super-Ego is the internalised replica of the pressure of society focussed by the authoritarian parents in the child's family environment It is hereditarily derived and handed on by man's 'social self' under the pressure of the cultural development[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पराहम्' व्यक्तित्व का श्रेष्ठतम तन्त्र है, जो नैतिक तथा सास्कृतिक आदर्शों से सचालित होता है।

'पराहम्' व्यक्ति मे पुरस्कार तथा दण्ड की भावना जागृत कराता है। जब 'अहम्' सदाचरण करता है, तो गर्व से प्रफुल्लित हो उठता है और लोभ से किसी के समक्ष झुक जाने पर लज्जा का अनुभव करता है। यह गर्व 'आत्म-प्रेम तुल्य' है तथा हीनता की भावना 'आत्म-ग्लानि तुल्य' है।[3] यह 'पराहम्' व्यक्तित्व मे समाज के उन परम्परागत मूल्यो तथा आदर्शों का प्रतिनिधित्व करता है, जो वशानुक्रम से प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त तीन तत्रो—'इद', 'अहम्', तथा 'पराहम्' —के बीच स्पष्ट सीमा-रेखा नही है। इनके पृथक्-पृथक् नाम का यह अर्थ कदापि नही कि ये स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं, ये तो समग्र व्यक्तित्व मे विभिन्न क्रियाओ, कार्यों तथा यांत्रिक गति-विधियो का बोध कराने वाले चिह्न मात्र है। डॉ० राधाकमल मुखर्जी ने इन तीनो को क्रमश 'बायोलॉजिकल सैल्फ', 'सोशल सैल्फ' तथा 'ट्रान्सैण्डैण्ट सैल्फ' कह कर इनकी समग्रता को पूर्ण व्यक्तित्व माना है।[4]

उपर्युक्त विवेचन, विश्लेषण से यह निष्कर्ष आता है कि किसी भी पात्र का सघटन करने मे अवसरानुकूल 'इद', 'अहम्', तथा 'पराहम्' कार्यशील होते हैं। यदि पात्र आदर्श तथा नैतिक व्यक्तित्त्व रखता है, तो स्वाभाविकत उसमे 'पराहम्' की प्रमुखता होगी , यदि वह विचारहीन होकर, सुख प्राप्त करने की चेष्टा करता है, तो 'इद' की प्रमुखता मानी जाएगी और यदि किसी पात्र मे अन्त -बाह्य जगत् के मध्य सघर्ष है, तो निश्चय ही 'इद'-'अहम्' का सघर्ष-रत होना पाया जाना चाहिए। जिन पात्रो को 'सद', 'आदर्श', 'उच्च' तथा 'उदात्त' आदि की सज्ञा दी जाती

---

[1] कैल्विन एस्० हॉल फ्रॉयड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृ० २९।

[2] *The Philosophy of Personality*, p 22

[3] कैल्विन एस्० हॉल फ्रॉयड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृ० २९।

[4] In the human world neither the biological self nor the social self, nor the reflective, ideal, open or transcendent self experiences a need and value and its satisfaction separately—a phase or fraction of man and his motivation in a particular dimension.

—*The Philosophy of Personality* p. 25

है—उनकी सघटना मे हमे 'पराहम्' क्रियाशील मिलेगा, जो उनमे अहम्-आदर्श तथा अन्तर्विवेक को जन्म देकर उन्हे आदर्शोन्मुख बनाएगा, और जो पात्र असद्, आवेशपूर्ण, जड तथा अनादर्श होगे, उनकी सघटना मे 'इद' तन्त्र पूर्णत प्रभावी प्रतीत होगा। सद्-असद् तथा आदर्श-अनादर्श के मध्य झूलते हुए पात्र 'अहम्' से सघटना प्राप्त करते है, जिनमे कभी 'अहम्' दुर्बल हो जाता है तो कभी सबल।

मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानव-व्यवहार का समग्र विश्लेषण इन तीन तन्त्रो के माध्यम से हो जाता हे। 'स्वप्न सिद्धान्त' भी अतृप्त तथा दमित हो जाने वाली वासनाओ की ओर ही इगित करता है और इसको भी इन तीनो के द्वारा स्थापित किया जा सकता है।

एक अन्य मनोवैज्ञानिक 'एडलर' ने व्यक्ति के व्यवहार मे 'हीनता-ग्रन्थि' को महत्त्व-पूर्ण माना है। वह ससार के प्रत्येक व्यक्ति मे हीनता की स्वाभाविक भावना को सामान्य तत्त्व कहता है। इसी प्रकार 'श्रेष्ठता ग्रन्थि' भी एडलर मानता है और दोनो को परस्पर पूरक मानता हे।[1] यदि देखा जाए तो ये दोनो ग्रन्थियाँ और कुछ नही, 'पराहम्' के दो उपतन्त्र—१ अहम्-आदर्श, २ अन्तर्विवेक ही है, जो क्रमश गव (आत्म-प्रेम) तथा ग्लानि (आत्महीनता) उत्पन्न कराते है।[2]

मनोविश्लेषक 'युग' ने व्यक्तित्व को १ बहिमुखी, तथा २ अन्त मुखी—इन दो रूपो मे देखा हे। इनको भी 'इद', 'अहम्' तथा 'पराहम्' से व्यजित किया जा सकता हे। 'इद' की प्रधानता रहने पर 'बहिर्मुखी' और 'पराहम्' की प्रधानता रहने पर 'अन्त मुखी' व्यक्तित्व बन जाएगा और मध्य की स्थिति मे 'अहम्' क्रियाशील होगा। इसको 'उभयमुखी' व्यक्तित्व कहा गया हे।[3]

कोई कलाकार जब आदर्श चरित्र की सर्जना करना चाहता है, तो उसे उस चरित्र (पात्र) के समस्त मनो-दैहिक गुणो अर्थात् अन्त तथा बाह्य की सुन्दरता का समा-योजन करना अभीष्ट होता है। मनोविज्ञान के अनुसार यह क्रिया 'व्यक्तित्व सकलन' (personality-integration) कहलाती हे, जिसमे बुद्धि तथा सवेग, इच्छा तथा सकल्प आदि विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओ मे कोई अव्यवस्था नही रहती, बल्कि मस्तिष्क की समस्त क्रियाएँ सगठित रूप मे काय करती है।

वस्तुत पात्र की सर्जना करते समय कलाकार को 'व्यक्तित्व के पूण सकलन' का आदर्श समक्ष रखना होना है, ताकि जिस पात्र की सृष्टि की जा रही है, वह यथेष्ट तथा वाछित प्रभाव डाल सकने म सक्षम हो सक। नारी-पात्र की सर्जना

[1] डॉ० रामनाथ शर्मा मनोविज्ञान के मूलतत्त्व, पृ० ६२।

[2] कॅल्विन एस्० हाल फ्रॉयड मनोविज्ञान पवेशिका, पृ० २६।

[3] 'युग' नारी म पुरुषत्व तथा पुरुष मे नारीत्व होना स्वीकार करता है

A man can live the feminine in himself, and a woman the masculine in herself

—डॉ० सरला दुआ आधुनिक हिन्दी साहित्य मे नारी, पृ० ४।

में भी उक्त 'व्यक्तित्व सकलन' का आदर्श अनिवार्यत रहता है, जिसके माध्यम से नारी-पात्र का सम्यक् विश्लेषण सहज ही हो सकता है। प्रमाण के लिए, उक्त विवेचन सूर्पनखा, ताडका आदि नारियो को 'इद' से शासित बताकर, कैकेयी, मथरा आदि मे 'इद' तथा 'अहम्' का संघर्ष दिखाकर तथा कौशल्या, सीता, सुमित्रा आदि मे 'पराहम्' की प्रधानता लक्ष्य करा कर, इन नारी-चरित्रो की सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत करने मे कवि को सहायता प्रदान करेगा।

नारी-चरित्रो के सृजन की पृष्ठ-भूमि पर विचार करते हुए डॉ० श्यामसुन्दर व्यास ने 'कामसूत्र' को आधार बनाया है।[1] डॉ० व्यास 'कामसूत्र' की लम्बी परम्परा को मानव-मन के गूढ रहस्यो को जानने का प्रयत्न मानते हैं। नारी के विषय मे इन कामशास्त्रियो की दृष्टि को उन्होने इन शब्दो मे व्यक्त किया है—नारी विषयक उनकी धारणा का सही स्वरूप क्या था, यह कह सकना असम्भव-सा हो सकता है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यौन-मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी उनके अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु अवश्य थी।[2]

वात्स्यायन ने 'काम' को मूलत आत्मिक माना है। काम का सम्बन्ध वे मानव की आत्मा से मानते है।[3] काम की परिभाषा उन्होने इस प्रकार दी है— श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-जिह्वा-घ्राणाना आत्मसयुक्तेन मनसा अधिष्ठिताना स्वेषु स्वेषु विषयेषु अनुकूल्यत प्रवृत्ति काम[4] अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयो से सयुक्त होती है, तब अधिष्ठाता मन को जो सुखानुभूति होती है, उसी को 'काम' कहते हैं। वात्स्यायन के अनुसार कामानन्द सयम, निग्रह तथा मर्यादा का परिपालन करने पर मिलना सम्भव है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि मे विवेचन किया जाए, तो वात्स्यायन और फ्रॉयड मे कथन का अन्तर हो सकता है, विचार अथवा भावना प्राय समान है। सयम, निग्रह तथा मर्यादा वस्तुत 'अहम्' और 'पराहम्' का ही विकास इगित करते है, जिससे व्यक्तित्व-मात्र उत्तेजनापूर्ण, आवेगपूर्ण, जड तथा विचारशून्य न रहकर, आदर्श तथा नैतिकता की ओर उन्मुख हो जाता है।

फ्रॉयड ने भी 'काम' को मानव-व्यक्तित्व की प्रेरक शक्ति माना और इसे 'लिबिडो' कहा है।[5] भारतीय और पाश्चात्य काम-विषयक दृष्टिकोण मे असमान

---

[1] नारी जीवन के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का दृष्टिगत रखते हुए सवप्रथम हमारा ध्यान वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' की ओर जाता है। कामसूत्र इस दिशा मे लिखा गया सवप्रथम ग्रन्थ है।
—हिन्दी महाकाव्यों मे नारी-चित्रण, पृ० ३१।

[2] वही, पृ० ३२।

[3] वाचस्पति गैरोला कामसूत्र परिशीलन, पृ० १९।

[4] वही, पृ० २९।

[5] डॉ० रामनाथ शर्मा मनोविज्ञान के मूलतत्त्व, पृ० ४६।

तथ्य प्राय नही मिलते। व्यक्तित्व के दार्शनिक सकलन मे डॉ० राधाकमल मुखर्जी ने 'सद-चिद्-आनन्द' का सकलन देखा, जो फ्रॉयड के 'इद-अहम्-पराहम्' से विरोध नही रखता।[1]

वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' मे विविध अधिकरणो के अन्तर्गत नारी-व्यवहार को देखा, और अपने निष्कर्ष दिए। उनके अनुसार 'स्त्री का मन चातुर्य, वाचालता तथा चाटुकारिता का भूखा होता है' आदि। वास्तव मे वात्स्यायन ने भी नारी का जो स्वरूप उपस्थित किया, वह मात्र कामशास्त्रीय न होकर मनोवैज्ञानिक भी रहा।[2] नारी-मनोविज्ञान की सामग्री रससिद्धान्त तथा नायिका-भेद के अन्तर्गत भी मिलती है।[3]

नारी-पात्र के सघटन मे मनोवैज्ञानिक तत्त्व के उक्त विवेचन से निष्कर्ष यही निकलता है कि प्राचीन तथा आधुनिक सभी आचार्यों ने 'यौन-प्रवृत्तियो' के सन्दर्भ मे नारी-व्यवहार को परखने का प्रयास किया है। डॉ० व्यास का कथन है—नारी की यौन-प्रवृत्ति को लेकर मत-मतान्तर चले आ रहे है। एक दल की विचारधारा जहाँ नारी मे यौन-प्रवृत्ति का प्राबल्य पुरुष से अधिक बताती है, वही दूसरे दल की विचारधारा के अनुसार पुरुष मे यौन-प्रवृत्ति का प्राबल्य नारी की अपेक्षा अधिक होता है।[4]

निश्चितत नारी-पात्र की सघटना मे 'काम-प्रवृत्ति' बहुत महत्त्वपूर्ण है। काम-तृप्ति, काम-अतृप्ति, प्रेम, घृणा, ईर्ष्या आदि ऐसे मनोभाव है, जो नारी मे 'काम' के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते है। किशोरावस्था से ही नारी मे निम्न सवेग उत्पन्न हो जाते है[5]

चिन्ता	प्राय काल्पनिक कारणो—सौन्दर्य, प्रेम, विवाह आदि से चिन्ता होती है।
भय	व्यक्तिगत, वस्तुगत, सामाजिक तथा मानसिक अपरिपक्वता के कारण स्त्री मे भय होता है।
द्वेष	बाधा, सामाजिक अवरोध, प्रतिद्वन्द्विता के कारण स्त्रियो मे द्वेष अधिक होता है।
क्रोध	इच्छावरोध, व्यग्य, अपमान आदि से होता है।
ईर्ष्या	प्रतिद्वन्द्विता तथा समानता के कारण ईर्ष्या होती है और निन्दा

[1] The self as the simple pure and transcendent Being (Sat), knowledge or Consciousness (Chit), Feeler (Ananda) and Fulfiller (Purna) is the basic and ultimate postulate of Indian thought —*The Philosophy of Personality*, p 50

[2] डॉ० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, पृ० ३५।

[3] वही, पृ० ३५।

[4] वही, पृ० ३६।

[5] वही, पृ० ३६।

का रूप ले लेती है। स्त्रियो मे निन्दा करने की आदत ईर्ष्या का ही परिणाम है।

चिढ़ 	मनोनुकूल वातावरण के अभाव से चिढ़ पैदा होती है।

जिज्ञासा : यह प्रवृत्ति तीव्र होती है, किन्तु सामाजिक अवरोध से दमित होकर कुण्ठा का रूप ले लेती है।

स्नेह 	किशोरावस्था मे यह प्रबल सवेग होता है। इसके नियन्त्रण से अनेक मनोविकार उत्पन्न हो जाते हैं।

आनन्द 	यह उत्तम स्वास्थ्य तथा वातावरण पर निर्भर है। उन्मुक्त वातावरण न मिलने से इसमे बाधा होती है। 'हीनता-ग्रन्थि' स्त्रियो के आनन्द मे बाधक होती है। *

नारी-मनोविज्ञान द्वारा प्रदत्त निष्कर्ष, वात्स्यायन से लेकर फ्रॉयड तक के मनोवैज्ञानिक अध्ययन, नारी-व्यवहार को स्पष्ट करते हैं। कलाकार भी नारी-पात्र की सघटना मे उपर्युक्त तथ्यो की उपेक्षा नही कर सकता। नारी का 'कामशास्त्रीय अध्ययन' नारी-पात्र के सघटक 'मनोवैज्ञानिक तत्त्व' का मूल आधार है, जो प्रत्येक नारी-पात्र का विश्लेषण कर पाने मे समर्थ है।

(ब) सामाजिक एव सास्कृतिक तत्त्व

नारी-पात्र के सघटक तत्त्व के रूप मे सामाजिक तथा सास्कृतिक परिवेश को, जो नारी को समाज मे भिन्न स्वरूप प्रदान करता रहा है, देखना आवश्यक होगा। कलाकार समाज मे रहता है और समाज से ही अपने सृजन का आधार ग्रहण करता है, अत जब भी किसी नारी-पात्र की सघटना वह करना चाहेगा, तब उसे नारी के प्रति समाज की दृष्टि तथा नारी का सास्कृतिक परिवेश अनिवार्यत आधार बनाना होगा। समाज मे नारी की स्थिति कब कैसी रही ? उसको उच्च अथवा हीन, किस दृष्टि से देखा गया ? उसका समाज के विकास मे क्या महत्त्व रहा ?—इन सभी प्रश्नो का हल 'नारी-पात्र' के सघटन मे कवि को खोजना होता है, और तब वह किसी नारी-पात्र की सम्यक् सर्जना कर सकता है।

भारतीय साहित्य मे नारी को आदि काल से ही प्रमुख स्थान मिला है, जो हमे समाज मे उसके महत्त्वपूर्ण स्थान की ओर सकेत देता लगता है। प्राचीन साहित्य मे स्त्रियो को समस्त विद्याओ तथा कलाओ के साथ देवी स्वरूपा कहा गया है

विद्या' समस्तास्तव देवि भेदा स्त्रिय समस्ता सकलाजगत्सु।[1]

देवी के जितने स्वरूप हैं, उन सभी का आविर्भाव नारी मे माना गया है। वह विद्या-सपन्ना, सामर्थ्यवती, दानशीला, अन्नपूर्णा तथा अक्षय सुख-शान्ति का आगार मानी गई है।[2]

---

[1] मार्कण्डेयपुराण (दुर्गासप्तशती—११ ६)।

[2] चन्द्रबली त्रिपाठी भारतीय समाज मे नारी आदर्शों का विकास, पृ० २२।

नारी के सामाजिक स्वरूप पर विचार करते हुए सर्वप्रथम हमारी दृष्टि 'परिवार' की ओर जाती है। नारी तथा पुरुष—दोनो ही परिवार-रथ के दो पहिए हैं, मूलाधार है। परिवार के सगठन मे नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने उसे पुरुष जीवन की प्रेरणा शक्ति माना है।[1]

इस सदर्भ मे डॉ० श्यामसुन्दर व्यास का मन्तव्य है—यदि परिवार समाज का केन्द्र बिन्दु है, तो नारी इस बिन्दु का विस्तार है। अत परिवार के अन्तर्गत उसकी स्थिति एव विकास को समझने के लिए हमें उसके माता, पत्नी और कन्या स्वरूप को समझना होगा तथा विवाह एव कानून के अन्तर्गत उसकी सामाजिक स्थिति पर विचार करना होगा, क्योकि परिवार प्रदत्त अधिकार ही प्रधानत उसकी सामाजिक स्थिति के परिचायक है।[2]

आदियुगीन परिवारो को हम मातृ-सत्तात्मक परिवार कह सकते है, जिनमे जननी होने के कारण नारी का स्थान सर्वोच्च था। प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य ऋग्वेद मे मातृ-सत्ता की सर्वोच्चता का सकेत 'विवाह सूत्र' मे आया है, जहाँ बताया गया है कि पुरुष प्राय पत्नी ही के घर मे निवास करता था।[3]

मातृ-सत्तात्मक परिवारो का होना समाज मे नारी के महत्त्व का प्रकाशन है, किन्तु कालान्तर मे यह स्थिति परिवर्तित हो गई और नारी की प्रधानता शनै-शनै कम होती गई। परिवार मे नारी की स्थिति माता, गृहिणी, भगिनी आदि रूपो मे सदैव अच्छी रही—यह निर्विवाद है।[4] परन्तु आखेट-युग से वर्तमान औद्योगिक युग तक आते-आते समाज मे नारी की स्थिति शोचनीय बन गई और पुरुष सर्वेसर्वा बन गया। समाजशास्त्री इस क्रमिक ह्रास की मीमासा करेगा, तो अपने निष्कर्ष देगा, किन्तु साहित्यकार इस सामाजिक स्थिति का उपयोग अपने 'नारी-चरित्र की सघटना' मे करेगा।

समाज मे नारी की स्थिति मे जो परिवर्तन हुए, वे पर्याप्त समय के अन्तराल पर हुए है। डॉ० हरिदत्त वेदालकार ने इस स्थिति को तीन चरणो मे देखा है[5]

सखायुग (वैदिक युग से ई० पू० ६०० तक)—इस युग मे पति, पत्नी का अर्धांश, सखा तथा उसके ही समान अधिकार रखने वाला था।

गुरुयुग (ई० पू० २०० से ई० पू० ६०० तक)—इस युग मे पति को पत्नी

---

[1] स्त्री वृत्त का व्यास है और पुरुष उसकी परिधि है स्त्री के जीवन से गुणित होकर पुरुष का जीवन बनता है। यही पति-पत्नी या गृहस्थ के जीवन का साज-सगीत है।

—डॉ० हरिदत्त वेदालकार हिन्दू परिवार मीमासा (भूमिका), पृ० २५

[2] हिन्दी महाकाव्यो म नारी-चित्रण, पृ० ५१–५२।

[3] डा० सरला दुआ आधुनिक हिन्दी साहित्य मे नारी, पृ० १३।

[4] डॉ० रामजी उपाध्याय प्राचीन भारत की सामाजिक सस्कृति, पृ० ७६।

[5] हिन्दू परिवार मीमासा, पृ० ८८।

का गुरु बनना पड़ा, जिससे समानता का भाव समाप्त होकर पति का महत्त्व बढ़ गया ।

देवतायुग (ई० पू० २०० से १६०० ई० तक)—इस युग मे देवता बनकर पति ने राजा के निरकुश अधिकार प्राप्त किये । पत्नी उसकी क्रीता, दासी बन गई ।

उपर्युक्त स्थिति नारी की समाज मे स्थिति तथा महत्ता को प्रदर्शित करती है । नारी को समाज मे विभिन्न रूपो मे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, जो उसके स्वरूप-निर्माण की आधारशिला है । सक्षेप मे, नारी के विभिन्न रूपो को देखना यहाँ अभीष्ट होगा ।

पत्नी रूप मे नारी—आदिकालीन युग से ही नारी भोगरूप मे पुरुष के समक्ष आई और उसके इसी स्वरूप ने नारी-चरित्र मे कलह, ईर्ष्या, द्वेष आदि को जन्म दिया । एक नारी के लिए भीषण युद्ध हो जाना सहज था । इस स्थिति ने 'एकपत्नीव्रत' का आधार बनाया और समाज मे नियम बन गया कि 'एक पुरुष एक नारी का स्वामी होगा' । साथ ही नियम बना—'एक नारी एक ही पुरुष से सम्बन्ध रख सकती है ।'[1]

पति को समाज-व्यवस्था मे पत्नी का देवता बना दिया जाने पर भी पत्नी के प्रति उदार भावना हिन्दू-शास्त्रज्ञो की रही । मुनि ने स्त्री को गृह-शोभा, समान्या, कल्याण-रूपा कहा । पत्नी को सम्मानित स्थिति प्राप्त थी, उसे शोभा और ऐश्वर्य का भण्डार माना जाता था ।[2]

वैदिक काल मे नारी को पत्नी रूप मे अत्यधिक सम्मान प्राप्त रहा होगा, यह ऋग्वेद से पुष्ट है

साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्र्वा भव ।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधि देवृषु ॥[3]

(ऋग्वेद १० ८५ ४६)

पुत्र-वधू का यह रूप गरिमामय रहा है । वस्तुत हिन्दू-समाज तथा सस्कृति मे पत्नी सह-धर्म-चारिणी के रूप मे प्रतिष्ठित रही है । यह रूप परवर्ती युग मे साम्राज्ञी का न रहकर दासी का हो गया और मनु ने उसे पति-सेवा का सर्वोच्च निर्देश दिया

विशील कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जित ।
उपचर्य स्त्रिया साध्व्या सतत देववत्पति ॥[4]

(मनु० ५ १५४)

---

[1] डॉ० सरला दुआ आधुनिक हिन्दी साहित्य मे नारी, पृ० १७ ।

[2] आर्यजन नारियो का बड़ा सम्मान करते थे । समाज मे नारियो का महत्त्वपूर्ण स्थान था ।
—डॉ० गजानन शर्मा प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी, पृ० ५०

[3] डॉ० रामजी उपाध्याय प्राचीन भारत की सामाजिक सस्कृति, पृ० ८४ ।

[4] वही, पृ० ८५ ।

—गुणहीन, शीलहीन, कामी पति की भी साध्वी स्त्री को देवता समान पूजा करनी चाहिए।

वस्तुत पत्नी की दो स्थितियाँ—साम्राज्ञी तथा दासी—प्रत्येक युग मे, प्रत्येक समाज मे सदा रही है और सदा रहेगी। भारतीय पारिवारिक जीवन मे दाम्पत्य का उच्च आदर्श शिव-पार्वती, नल-दमयन्ती, सत्यवान्-सावित्री तथा राम-सीता की चरित-गाथाओ मे सदैव के लिए साकार हो गया है।

माता की स्थिति मे नारी—भारतीय परिवार-सस्था मे माता का स्थान सर्वोच्च सम्मानित रहा है। 'मातृदेवो भव' जैसे वाक्यो मे माता का स्थान देव-तुल्य मानकर उसे सम्मान दिया गया है। 'धर्मसूत्र' मे वशिष्ठ ने कहा—पतित पिता का त्याग किया जा सकता है, किन्तु पतित माता का परित्याग नही हो सकता।[1]

माता के रूप मे नारी परिवार मे सदैव पूज्या रही और हिन्दू-शास्त्रकारो ने उसके मातृरूप का गौरव गान सर्वत्र किया है। माता का जीवन के निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योग होता है।[2] मातृत्व नारी की चरम परिणति है और नारी जीवन की परम उपलब्धि भी, जब उसमे स्नेह, औदार्य, ममत्व चरम सीमा पर होते है। माता रूप की सर्वोच्च प्रतिष्ठा किसी युग विशेष मे नही रही, अपितु मानव-जाति के सम्पूर्ण इतिहास मे नारी 'मातारूप' मे सम्मानित हुई है। इस प्रसग मे डॉ० श्यामसुन्दर व्यास का कथन है—नारी निदको का स्वर भी माता के गौरव के समक्ष नतमस्तक होता आया है। पूत का कुपूत होना स्वीकार किया गया है, किन्तु माता को कुमाता कभी नही माना गया।[3] माता के रूप मे नारी नैसर्गिक रूप मे उदात्त भावयुत होती है।[4] नारी के मातृत्व की यह सामाजिक सपुष्टि कलाकार को नारी-पात्रो की सघटना मे सदैव महत्त्वपूर्ण दिशा देती रही है।

कन्या रूप मे नारी—नारी-विकास का प्रथम चरण उसका कन्या रूप ही होता है। कन्या को वैदिक युग मे हर्ष का हेतु नही माना गया, किन्तु इसका निश्चित प्रमाण नही है। अनेक स्थलो पर कन्या को पुत्र से भी उच्च स्थान दिया गया। मनु ने कहा है—पुत्री को पुत्र के समान समझना चाहिए, क्योकि जिस प्रकार पुत्र आत्मा का रूप है, वैसे ही आत्मा पुत्री-रूप मे भी जन्मती है।[5]

---

[1] धर्म-सूत्र, १३।४७ (कल्याण 'नारी अक' से उद्धृत)।

[2] माताओ से जीवन मे सच्ची प्रेरणाएँ, प्रेम और सद्भावनाएँ प्राप्त होती हैं। माता की प्रतिष्ठा समस्त स्त्री जाति का सम्मान है।

—चन्द्रबली त्रिपाठी भारतीय समाज मे नारी आदर्शों का विकास, पृ० ४६।

[3] हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, पृ० ५५।

[4] शिशु के प्रति वात्सल्य भाव का उदय उसकी प्राकृतिक एव सहज स्वाभाविक स्नेह-गरिमा से ही होता है शिशु के प्रति उसके व्यवहार मे किसी प्रकार का आडम्बर नहीं होता।

—डॉ० सरला दुआ आधुनिक हिन्दी साहित्य मे नारी, पृ० १६।

[5] चन्द्रबली त्रिपाठी भारतीय समाज मे नारी आदर्शों का विकास, पृ० ३०।

वस्तुत विवाह की चिन्ता तथा कालान्तर मे कन्या के उपयुक्त वर मिलने की कठिनाई, दहेज न दे सकने की आर्थिक स्थिति आदि ऐसे कारण रहे होगे, जिनसे समाज मे कन्या की स्थिति पुत्रो की अपेक्षा हीन मानी गई होगी। इसका प्रमाण हम 'पचतत्र' के इस कथन मे देख सकते हैं—पुत्रीति जाता महतीति चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क। दत्तासुख प्राप्स्यति वा न वेति कन्या पितृत्व खलु नाम कष्टम्।[1] अर्थात् कन्या के उत्पन्न होते ही बडी चिन्ता घेर लेती है—इसे किसे देंगे ? यह महान् वितर्क उपस्थित हो जाता है। दे देने पर भी वह सुखी होगी या नहीं। सचमुच कन्या का पिता होना ही कष्ट है।

उपर्युक्त धारणा से कन्या का होना कष्टप्रद माना गया, जिसमे समाज-व्यवस्था का ही दोष है, कन्या का नही। कन्या के उपयुक्त वर मिलने पर ही विवाह का नैतिक और सामाजिक आग्रह इस स्थिति का मूल कारण है। मनु का आदेश है—कन्या ऋतुमती होकर यावज्जीवन घर मे ही पडी रहे, तो कोई हानि नही, किन्तु किसी निर्गुणी वर के साथ उसका विवाह करना उचित नहीं।[2] उपर्युक्त दृष्टिकोण प्रकारान्तर से हिन्दू-परिवार मे कन्या के महत्त्व को ही प्रदर्शित करता है।

कन्या को विवाह के पश्चात् सदा के लिए विदा करना पडता है, सभवत इसी कष्टदायी स्थिति को लक्ष्य कर नारी के कन्या रूप को समाज मे कुछ हीन दृष्टि से देखा गया। तुलसी ने पार्वती-विदा के समय मैना से यही कहलाया है

बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी। कहहिं बिरचि रची कत नारी॥[3]

वस्तुत कन्या के योग्य वर ढूंढना, दहेज की व्यवस्था करना, उसे व्यभिचार से बचाए रखना तथा भावी सुख की कामना आदि कन्या के प्रति पिता को सदैव चिन्ताकुल रखती हैं। सामाजिक स्थिति के अनुरूप कन्या का महत्त्व कम-अधिक होता रहा है।

अन्य रूपो—यथा बहन, भाभी, सास आदि मे नारी, समाज मे प्राय आदर ही पाती रही। नारी को समाज से इन रूपो मे जैसी मान्यता जब मिली; साहित्यकार ने नारी-पात्र के सृजन मे उसे पीठिका बनाया है। प्रत्येक युग के कलाकार को नारी की सामाजिक स्थिति ने उसका चरित्र-चित्रण करने मे प्रेरणा प्रदान की है।

सामाजिक विकास की पृष्ठभूमि मे नारी को देखने के पश्चात् 'सास्कृतिक परिवेश' मे देखना भी आवश्यक है। नारी किसी भी राष्ट्र की सस्कृति का मूल कही जा सकती है, यह डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है।[4] 'नारी सस्कृति के

---

[1] चन्द्रबली त्रिपाठी भारतीय समाज मे नारी आदर्शों का विकास, पृ० ३०।

[2] डॉ० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, पृ० ५५।

[3] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ३३४।८।

[4] इस संसार मे यदि नारी न होती, तो सभ्यता और सस्कृति न होती। अपने विविध रूपो मे नारी ने पुरुष को संवर्धन, प्रोत्साहन और शक्ति दी है और प्रकृति को सस्कृति के रूप मे ले आने तथा विकृति की ओर जाने से रोकने में समर्थ हुई है।

—चन्द्रबली त्रिपाठी भारतीय समाज मे नारी आदर्शों का विकास, पृ० ३

निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योगदान करती है'—यह तथ्य है।

समाजशास्त्र के विद्वान् सस्कृति का अर्थ विशिष्ट पद मे करते हैं, उनके अनुसार सस्कृति मे ज्ञान, विश्वासो, कला, नीतियो, कानूनो, रीतियो, रिवाजो, शिल्पो, विचारो तथा मूल्यो का समावेश है। यह इन सबसे बनी विषम समग्रता है, जो हर व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते सीखता है।[1] सस्कृति मानव-व्यक्तित्व का नियमन करती है। समाजशास्त्री फेरिस व्यक्तित्व की परिभाषा देता है—व्यक्तित्व सस्कृति का आत्मगत पक्ष है।[2]

जिस सास्कृतिक परिवेश मे किसी व्यक्ति का पालन-पोषण होता है, वह उसके व्यक्तित्व के निर्माण मे प्रभावी भूमिका रखता है। सस्कृति से व्यक्तित्व मे आधार-भूत परिवर्तन आ सकते हैं, यह भारतीय इतिहास से स्पष्ट है। भारतीय सस्कृति पर मुसलिम तथा अग्रेजी साम्राज्य का प्रभाव रहा, जिससे इन युगो मे व्यक्तित्व पर इनकी छाप भी रही है।

डॉ० राजबली पाण्डेय ने इस तथ्य को स्वीकार किया है—हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक कृत्यो और सस्कारो से जिस सास्कृतिक प्रयोजन का उद्भव हुआ, वह था व्यक्तित्व का निर्माण और विकास।[3] विचारक काकासाहेब कालेलकर भी इस तथ्य को पूर्णत स्वीकार करते हैं—इसलिए कबूल करना पडता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का अन्तिम आधार उसका कुल (खानदान), उसकी जाति, उसका धर्म और उसकी सस्कृति और खास कर के देश की परिस्थिति ही है।[4]

उपर्युक्त विवेचन से हमारा आशय यह है कि सामाजिक परिवेश के साथ-ही-साथ सास्कृतिक परिवेश भी 'पात्र-सघटन' मे कलाकार को प्रेरणा देने वाला प्रमुख तत्त्व है। नारी का सास्कृतिक परिवेश जिस युग मे जैसा होगा नारी-पात्र का सघटन साहित्यकार तदनुकूल ही करेगा।

भारतीय दर्शनो मे नारी तथा पुरुष को परम शक्ति का ही अश माना गया है और 'देवी भागवत' मे कहा गया है

स्वेच्छामय स्वेच्छयाय द्विधारूपो बभूव ह।
स्त्रीरूपो वाम भागाशो दक्षिणाश पुमान् स्मृत ॥[5]

अर्थात् स्वेच्छामय भगवान् ने स्वेच्छा से अपने दो रूप किए, वाम भाग के अश से नारी तथा दक्षिण भाग के अश मे पुरुष बने।

भारतीय सस्कृति म नारी-पुरुष को सहयोग तथा सहकम का आदर्श माना गया है। वस्तुत हिन्दू-सस्कृति मे विवाह प्रवृत्ति का सर्वोच्च सस्कार है, जिसका लक्ष्य

---

[1] हसराज भाटिया समाज मनोविज्ञान, पृ० १७७।

[2] Personality is the subjective aspect of culture —Feris —वही, पृ० १६६

[3] हिन्दू-सस्कार, पृ० ३६।

[4] युगानुकूल हिन्दू जीवन दृष्टि, पृ० ९।

[5] कल्याण (हिन्दू-सस्कृति अक जनवरी १९५०), पृ० ६१४।

है, नारी-पुरुष के रूप मे विच्छिन्न शक्ति का समायोजन तथा विकास । दर्शनशास्त्र का सिद्धान्त यही है—स्त्रीधारा पुरुषधारामयी होकर ही कैवल्य की अधिकारिणी होती है ।[1]

विवाह का प्रथम उद्देश्य स्त्रीधारा को पुरुषधारा मे मिलाकर उसे मुक्ति की अधिकारिणी बनाना तथा दोनो की अनर्गल, अनियन्त्रित पशु-वृत्तियो को नियन्त्रित कर दोनो की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, ऐहलौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति करना और दोनो के मधुर समन्वय से दोनो की पूर्णता सिद्ध करना तथा सासारिक सुख प्राप्त करना है । इस विवाह सस्कार के द्वारा स्त्री और पुरुष दोनो अपनी-अपनी अनर्गल भोग-प्रवृत्तियो को एक-दूसरे मे केन्द्रीभूत एव नियन्त्रित कर आत्म-सयम और आत्म-त्याग के अभ्यास द्वारा एक-दूसरे की आध्यात्मिक उन्नति मे सहायक बनते हैं । इसीलिए स्त्री के लिए पातिव्रत्य और पुरुष के लिए भी एक-पत्नीव्रत धर्म ही प्रशस्त एव आदर्श है ।[2]

नारी का उक्त आदर्श भारतीय सस्कृति का प्राणतत्त्व है । तुलसी ने भी इसे सीता के चरित्र का मूल बना दिया है

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद बिमल बिधु बदनु निहारे ।।[3]

भारतीय सस्कृति मे नारी को 'माया' रूप मे मानकर कही उसे अविद्यारूपा, मायाविनी कहकर निन्दा की गई है, तो कही विद्यारूपा, प्रकृति, भद्रा तथा कल्याणमयी कहकर वन्दना की गई । नारी का 'उच्छृखल, अनियन्त्रित, कामुकतापूर्ण रूप' कभी भारतीय प्रज्ञा को भला नही लगा, किन्तु मातृत्व की अधिष्ठात्री, सहगामिनी-वामा तथा स्नेहमयी पुत्री के रूप मे उसे सदा प्रतिष्ठा प्राप्त हुई । नारी का आभूषण उसके सुन्दर गुण हैं । गुणवती स्त्री दीन-हीन मनुष्य का सदन साकेत बना सकती है[4] और गुणहीन स्त्री साकेत को श्मशान बना देती है ।

भारतीय नारी का सर्वोच्च रूप है 'पतिव्रता का रूप', जिसके कारण वह चिर-काल से वदिता तथा गौरवमण्डिता रही है । इस तथ्य को इन शब्दो मे चन्द्रबली त्रिपाठी ने व्यक्त किया है—प्राय ससार की सभी सस्कृतियो मे पति-पत्नी सम्बन्ध

---

[1] स्त्रीधारा पुधारामयी कैवल्याधिकारिणी । (कर्ममीमासा दर्शन, धर्मपाद, ५६)
—कल्याण (हिन्दू-सस्कृति अक), पृ० ६१५

[2] वही, पृ० ६१५ ।

[3] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ६४।७–८ ।

प्राननाथ करुनायतन सुदर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ।। —अयोध्याकाण्ड, ६४

[4] निज सौध सदन मे उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया मे राज-भवन मन भाया । (सीता-आदर्श)
—मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० २२२

एक प्रगाढ बन्धन माना गया है, किन्तु भारतीय सस्कृति मे पातिव्रत्य की जो उत्कृष्ट तथा उदात्त कल्पना की गई है, वह ससार की अद्वितीय और भारतवर्ष की एक परम पवित्र एव महती निधि है।[1] नारी के पातिव्रत्य की सर्वत्र प्रशसा साहित्यकारों ने मुक्तकण्ठ से की है।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि नारी को भारतीय सस्कृति मे उच्चस्थ स्थान मिला है, उसके पातिव्रत्य, निष्ठा, सेवा, त्याग आदि दिव्य गुणो के कारण। कलाकार जब किसी नारी-पात्र की सघटना करता है, तो नारी के सास्कृतिक-परिवेश को उसे अनिवार्यत देखकर चलना पडता है। इस पक्ष का अभाव उसके नारी-पात्र को पूर्णता से दूर ले जाएगा—यह निश्चित है।

(स) देशकालगत तत्त्व

नारी-पात्र के सघटक तत्त्वो का सैद्धान्तिक विवेचन करने के क्रम मे 'देशकाल' भी एक महत्त्वपूर्ण, प्रभावी तत्त्व के रूप मे आ जाता है। किसी भी युग का कलाकार अपने युग की देशगत एव कालगत विशेषताओ को अनदेखा नही कर सकता, यदि ऐसा करता है, तो उसका साहित्य मूल उद्देश्य तथा प्राणवत्ता से शून्य हो जाएगा। साहित्य जीवन की अनुकृति माना गया है, और इसीलिए साहित्यकार को गौरव-मण्डित किया गया है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, विद्यापति, सूर, तुलसी, बिहारी, प्रसाद, पन्त, निराला और शेक्सपीयर, मिल्टन, शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ—किसी के भी साहित्य मे झाँककर देख लीजिए, उनका युग तथा भौगोलिक वातावरण वहाँ अपने गरिमामय रूप मे आपको मिलेगा। सूर जिस मस्ती से 'हस सुता की सुन्दर कगरी' तथा ब्रज के सघन नील हरित कुजो का सजीव चित्राकन करता है, उसी मस्ती से वर्ड्सवर्थ 'नर्गिस के फूलो' तथा लन्दन के पुल के नीचे बहती हुई जल-राशि का अकन करता है।

देशकाल का प्रभाव साहित्य पर अमिट हुआ करता है। भावनाएँ, परिवेश, शैली और भाषा सभी इसके प्रभाव से स्वरूप-परिवर्तन करती है। सस्कृत साहित्य का नारी-चित्रण देशकालगत वैभिन्य के कारण वैदिककाल से तथा परवर्ती प्राकृत-अपभ्रश साहित्य से अवश्य भिन्न होगा, वर्तमान काल का कवि नारी को अपने परिवेश मे रखकर देखेगा, जो निश्चय ही मध्यकालीन कवि के चित्रण से भिन्न होगा।

यही स्थिति देशगत अर्थात् स्थानगत परिवेश की भी है। कहावत है—'जैसा देश, वैसा भेस' अर्थात् स्थान के साथ-साथ रुचि, व्यवहार, आचार-विचार बदलते हैं, तो व्यक्तित्व मे स्वाभाविक परिवर्तन आ जाता है, जो कलाकार को चरित्र-

[1] भारतीय समाज मे नारी आदर्शों का विकास, पृ० १०६।

[2] मनुष्य को पृथ्वी से स्वर्ग तक पहुँचाने के लिए एकमात्र साधन पतिव्रता नारी है।
—कल्याण (हिन्दू-सस्कृति अक), हिन्दू सस्कृति मे नारी धर्म का उत्कर्ष, पृ० ६२७

चित्रण का आधार देता है। प्रमाण स्वरूप भारतीय तथा पाश्चात्य देशो की भिन्नता—भौगोलिक मुख्यत.—को लीजिए, तो ज्ञात होगा कि अमेरिका तथा इग्लैण्ड की स्त्री के लिए स्वच्छन्द विचरण करना, मुक्त यौन-सम्बन्ध रखना तथा सुरा पान करना साधारण बात है, जबकि भारतीय स्त्री ऐसा नही करेगी।

अब भारतीय कवि यदि किसी नारी-पात्र की सघटना करेगा, तो निश्चय ही लज्जा, मर्यादा, नैतिक सीमाओ का ध्यान करते हुए करेगा, जबकि अग्रेज कवि अपने नारी-पात्र मे स्वच्छन्दता, मुक्त यौन-प्रदर्शन जैसी विशेषताएँ अकित करेगा। इस सन्दर्भ मे डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का कथन उल्लेखनीय है—ससार के किसी देश के साहित्यकार ने समसामयिक समस्याओ और घटनाओ की सर्वथा अवहेलना नही की।[1]

डॉ० श्यामसुन्दर व्यास का कथन भी इस प्रसग मे महत्त्वपूर्ण है—कवि भी तत्कालीन सामाजिक जीवन और सासारिक परिस्थिति से बचा नही रह सकता, उसकी स्वतन्त्र सत्ता नही हो सकती, वह भी जाति के क्रमिक विकास की शृखला के बन्धन के बाहर नही जा सकता।[2]

इस विवेचन से यह तो पूर्णत स्पष्ट है ही कि कलाकार पात्र-सघटना मे देश-काल से असपृक्त नही रह सकता।

नारी की स्थिति के कालगत अध्ययन के लिए काल-सीमा निर्धारित करके उसे विकास-क्रम मे इस प्रकार देखा जा सकता है

आदि युग मे नारी,
वैदिक युग मे नारी,
रामायण-महाभारत काल मे नारी,
बौद्ध-जैन युग मे नारी,
राजपूत युग मे नारी,
मुसलिम युग मे नारी,
वर्तमान युग मे नारी।

आदि युग मे नारी—आदिकाल का अधिकाश इतिहास काल कवलित है, अत इस युग मे नारी की स्थिति का निर्धारण प्राय कठिन रहा है। इतना ज्ञात है कि मातृ-सत्ता समाज-सरचना का आधार थी।[3] आदि युग के जो सकेत मिले हैं, उनमे 'मातृदेवी की उपासना' प्रमुख रही है। इस सन्दर्भ मे डॉ० रतिभानुसिह नाहर का कथन उल्लेखनीय है—मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा मे असख्य देवियो की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं विद्वानो का यह मत है कि ये मूर्तियाँ मातृदेवी या प्रकृति देवी की

---

[1] डॉ० त्रिभुवनसिह साहित्यिक निबन्ध, पृ० ४६५।

[2] हिन्दी महाकाव्यों में नारी-चित्रण, पृ० १६।

[3] यूथ विवाहो में माता के जनकत्व को ही पहचाना जाता था और अन्न—आर्थिक व्यवस्था—में अपनी प्रमुखता के कारण वह परिवार की स्वामिनी होती थी। —वही, पृ० २१

मूर्तियाँ हैं।[1] यह निश्चित है कि भारतीय नारी आदि युग मे स्वामिनी तथा सर्वोच्च सम्मानिता थी। कालान्तर मे पितृ-सत्ता प्रधान हो जाने पर भी उसका सम्मान बना रहा और वह पारिवारिक विकास का आधार बनी रही।

वैदिक युग मे नारी—वैदिक काल मे भी नारी की स्थिति अत्यन्त गरिमायुक्त थी और नारी-विकास की दृष्टि से यह स्वर्णिम युग कहा जा सकता है।[2] इस युग मे नारी का सम्मान परिवार मे अत्यधिक रहा है। इस समय गृहपति यद्यपि पुरुष था, किन्तु गृहपत्नी का भी परिवार पर समान अधिकार था। परिवार मे सास, ससुर, ननद तथा देवर के मध्य वधू साम्राज्ञी बनकर रहती थी। पर्दा-प्रथा नहीं थी, नारियाँ विद्या-क्षेत्र मे पुरुष से पीछे नही थी और रण-कौशल मे भी निपुण थी। नारी को विवाह आदि मे पूर्ण स्वतन्त्रता थी, वह तरुणो से रुचि अनुसार मिल सकती थी, प्रेम कर सकती थी। वैदिक काल मे 'नारी नर के अधिकारो के काफी निकट पहुँच जाती है। यह युग उसके ऐतिहासिक विकास की चरम परिणति का युग है।'[3]

यह स्थिति उत्तर वैदिक काल मे बदलने लगी। समाज का गठन पितृ-मूलक हो गया तथा आर्य परिवारो मे सह-पत्नियो के रूप मे अनार्य स्त्रियो का प्रवेश होने लगा। अब नारी का स्थान गिरने लगा तथा विवाह को छोडकर नारियों के समस्त सस्कार वेद मत्रो के बिना होने लगे।[4] जाति-बन्धन कडे होने तथा अनार्यों की उपस्थिति से नारी की स्वतन्त्रता रुद्ध हो गई। कन्याओ का जन्म अब कष्टकर समझा जाने लगा था। वैदिक युग की सम्मानिता नारी का महत्त्व शनैः-शनैः गिरने लगा। डॉ० श्यामसुन्दर व्यास कहते है—भारतीय नारी की अधोगति का आरम्भ यही से समझना चाहिए।[5]

रामायण-महाभारत काल मे नारी—नारी का वैदिक काल का गरिमामय स्वरूप ज्यो-ज्यो गिरता गया, वह इस काल मे भी गिरता ही रहा। रामायणकालीन परिवार भी पैतृक थे, जिनमे पत्नी गृहस्वामिनी होकर भी पति की वशवर्त्तिनी थी।[6] इस युग मे बहुविवाह तथा बालविवाह की प्रथा प्रचलित थी। कन्या का होना अमागलिक तो नही माना जाता था, किन्तु कन्या का होना माता-पिता के लिए चिन्ता का कारण अवश्य था।[7] रामायणकाल मे नारी को पतिव्रता होने की

[1] प्राचीन भारत का राजनैतिक एव सास्कृतिक इतिहास, पृ० ४६।

[2] वेदकाल मे नारी एक रत्न थी। पुरोहित, सेनानी एव समग्रह नामक रत्नो के साथ ही 'महिषी' को भी रत्न-सज्ञा प्राप्त थी।

—डॉ० गजानन शर्मा प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी, पृ० ४७

[3] डॉ० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, पृ० २२।

[4] डॉ० रतिभानुसिंह नाहर प्राचीन भारत का राजनैतिक एव सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ९८।

[5] हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, पृ० २३।

[6] डॉ० गजानन शर्मा प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी, पृ० ७७।

[7] कन्या पितृत्व दु ख हि सर्वेषां मानकाक्षिणाम। —वाल्मीकिरामायण, ७।९।१०

शिक्षा सर्वत्र दी गई है। उसे बताया गया कि 'स्त्री के लिए पति ही गति है, पति ही धर्म है पति ही देवता है, प्रभु है, गुरु है और वही स्त्री का सर्वस्व है'।[1] स्त्री की चरित्रगत दुर्बलताओं की ओर लक्ष्य कर नारी-निन्दा भी इस युग में हुई और नारी के असत् रूप की निन्दा का भाव प्रमुख हो गया।

डॉ० श्यामसुन्दर व्यास ने इस युग की नारी का विश्लेषण करते हुए कहा है—रामायण-महाभारत काल की नारी यदि बडी है तो इसलिए कि वह अपने एकाकी नर की छाया है, उसकी सतत् अनुगामिनी है। इन बातो से यही प्रकट होता है कि नारी का मान-महत्त्व अब कम होने लगा था और चारो ओर से उसे जकडने एव उसके अधिकारो को सीमित करने का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया था।[2]

बौद्ध-जैन युग मे नारी—बौद्ध काल मे यद्यपि नारी की स्थिति मे विशेष अन्तर नही आया तथापि तत्कालीन गणराज्यो मे नारी का स्थान सम्मानप्रद था। शाक्यो मे नारी बहुत सम्मानिता थी। इनमे बहु-विवाह प्रथा नही थी, अत पत्नी तथा पुत्री का अत्यन्त सम्मान ये करते थे। डॉ० गजानन शर्मा का कथन है—बौद्धकाल मे सतीत्व के आदर्श की समाज मे प्रतिष्ठा थी तथा स्त्री का पुश्चली होना बुरा समझा गया था। स्त्रियाँ पतिव्रता होती थी। जातक कथाओ मे ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे यौन-अराजकता न होने का प्रमाण मिलता है।[3]

बौद्ध युग मे नारी को जो सम्मान मिला, वह अधिकार न होकर कृपा ही थी। जैन-धर्म मे नारी का भोग रूप प्रमुख हो गया था। राहुल साकृत्यायन ने इस विषय मे लिखा है—इस काल के सामन्तीय-जीवन मे सैकडो जनता को अपनी सुन्दर लडकियो को वैध या अवैध रूप से रनिवास मे भेजने के लिए भी तैयार रहना पडता था। कितनी ही जगह तो नव-विवाहिता की प्रथम रात भी सामन्त के लिए रिजर्व थी, चाहे वह हाथ से छूकर ही छुट्टी कर दे।[4] सामन्ती-युग मे नारी भोग की सामग्री मान ली गई थी और उसके स्थूल आगिक चित्रण की प्रवृत्ति प्रधान हो गई थी। नारी को मुक्ति का अधिकार देने मे भी यहाँ अनुदारता दिखाई गई।

बौद्ध-जैन युग मे भी नारी को चारो ओर से बाँधने का प्रयत्न चल रहा था और उसकी सीमा घर की चारदीवारी तक सीमित थी।

राजपूत युग मे नारी—राजपूत-काल पारस्परिक वैमनस्य, सघर्ष तथा बिखराव का काल रहा है। नारी की दशा मे सुधार की अपेक्षा यहाँ गिरावट ही आई।

---

[1] डॉ० सरला दुआ आधुनिक हिन्दी साहित्य मे नारी, पृ० ३८।

[2] हिन्दी महाकाव्यों में नारी-चित्रण, पृ० २४।

[3] प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी, पृ० १३७।

श्रावस्ती के भूमिपति पर डाकुओ ने आक्रमण किया। डाकू सरदार के उसकी पत्नी पर मोहित होने पर पत्नी ने कहा—यदि मेरे पति को मारोगे तो मैं विष खा लूँगी और तुम्हारे साथ नही जाऊँगी। —जातक, २६७ की निदान कथा

[4] हिन्दी काव्यधारा, पृ० १८।

डॉ० गजानन शर्मा का कथन है—समाज की चिन्तन धारा में निवृत्ति भावना की प्रधानता थी, वर्ण-जाति की सकीर्णताएँ बढ रही थी, अत स्वाभाविक रूप से नारी उपेक्षणीया होती चली गई। यह एक विडम्बना ही है कि प्राय समस्त वीर काव्य मे कही भी नारी शक्ति, दुर्गा, चण्डिका, कालिका के रूप मे चित्रित नही हुई है, वह केवल रमणीया कामिनी ही है।[1] इस युग मे कन्या का जन्म दुर्भाग्य का प्रतीक था। बाल-विवाह, सती-प्रथा, बहु-विवाह तथा पर्दा-प्रथा का प्रचलन बढ गया था। यो नारी वीर-प्रसविनी भी थी और जौहर करने वाली भी थी, किन्तु समाज मे उसकी दशा शोचनीय ही थी। यही नारी के पतन की भूमिका थी।[2] नारी का दाम्पत्य अधिकार तथा स्वाधीनता इस काल मे सुरक्षित नही रह सकी।

मुसलिम युग मे नारी—इस युग मे नारी की स्थिति अत्यन्त कारुणिक तथा शोचनीय हो गई। पर्दे का प्रचलन कड़ाई से लागू होने लगा। बहुविवाह तथा बाल-विवाह की प्रथा जोर पकड़ गई। नारी के अनेक पति सम्भव थे। दासियो का विक्रय तो आम बात थी। सती-प्रथा के नाम पर धन-लोलुप व्यक्ति नारियो पर दारुण अत्याचार करने लगे थे। नारी जीवन नारकीय हो गया था। मुसलिम-सस्कृति मे अनेक पत्नियाँ रखना दोष नही माना जाता था। डॉ० गजानन शर्मा का कथन है—मुसलिम विजेताओ ने भी अपने इन आदर्श पूज्यजनो का सर्वत्र अनुकरण किया। जहाँ-जहाँ वे गये, युद्धो के बहाने स्त्रियो की लूट मचाई और नारी-अपहरण एक सर्व-सामान्य कार्य बना लिया, जिससे कि वे धर्माज्ञा के अनुसार लूट मे प्राप्त स्त्रियो से विवाह कर सके। मुसलमानो की इस बहु-पत्नी प्रथा ने हिन्दुओ के एक पत्नीव्रत पर तीव्र आघात किया।[3]

मुसलिम युग मे नारी का पतन चरम सीमा पर था। यह उसके जीवन का निकृष्टतम काल रहा है।[4]

आधुनिक काल मे नारी—आधुनिक काल मे नारी की दशा सुधारने के अनेक प्रयास हुए हैं। ब्रह्म-समाज, राम-कृष्ण मिशन, आर्यसमाज आदि ने नारी-जागरण का महत् कार्य किया है। नारी मे पुन सामाजिक जागृति आने लगी है और वह अपने व्यक्तित्व की पुनर्प्रतिष्ठा मे लग गई है। अनेक कानून तथा सस्थाएँ बनी, जो नारियो की स्थिति को उठाने मे सहायक हुई। 'अखिल भारतीय महिला परिषद्' की स्थापना ने नारी-जागृति मे विशेष योग दिया है।

---

[1] प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० २१२।

[2] नारी की अवस्था दयनीय थी। काल की कठोरता ने उसके अधिकारो तथा स्वाभिमान को दयनीय बना डाला था। मध्ययुगीन चरम पतन का प्रारम्भ नारी के लिए राजपूत काल से ही प्रारम्भ हो गया था। —डॉ० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, पृ० २७

[3] प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी, पृ० २३८–३९।

[4] मुसलिम युग मे नारी की स्थिति देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि ऋग्वेदकाल उसके उत्कर्ष की चरम सीमा थी, तो मुसलिम काल उसके पतन की चरम सीमा सिद्ध होती है। —डॉ० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यों मे नारी-चित्रण, पृ० २७

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् नारियो को उच्च पदो पर प्रतिष्ठित किया जाना पुन नारी गौरव की प्रतिष्ठा का परिचायक है। आधुनिक काल में नारी की स्थिति मे आश्चर्यजनक प्रगति आई और वह समानता के सुखद वातावरण मे साँस ले रही है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कालगत नारी परिवेश भी नारी-पात्र का सघटक तत्त्व है और इसका प्रभाव पर्याप्त होता है।

स्थान तथा भौगोलिक परिवेश भी मानव-व्यवहार तथा व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करता है। भारत उष्ण जलवायु का प्रदेश होने के कारण यहाँ नारी मे परिपक्वता शीघ्र आ जाती है और यूरोप के देश शीत जलवायु के होते हैं, अत वहाँ की स्त्रियो मे काम-भावना उतनी तीव्र नही होती। इस प्रसग मे देखा जाता है कि भारत मे नारी लज्जाशीला है और यूरोप मे स्वच्छन्द, यह भी देशगत भेद है, जो व्यक्तित्व मे अन्तर ला देता है। डॉ० सरला दुआ का कथन है—शरीर-रचना की दृष्टि से तो नारी सब जगह एक-सी है। अग रचना तो सम्पूर्ण विश्व मे नारी की समान है, फिर उनमे व्यावहारिक असमानता का भाव क्यो परिलक्षित होता है? इस क्षेत्र मे जिन लोगो ने कार्य किया, उन्होने भिन्न-भिन्न सस्कृतियो मे नारी का अध्ययन किया तथा इसके फलस्वरूप इस तथ्य को पाया कि एक राष्ट्र की नारी दूसरे राष्ट्र की नारी से भिन्न है, एक जाति की नारी दूसरी जाति की नारी से भिन्न है।[1]

देशानुसार नारियो मे विशिष्टताएँ अवश्य होती हैं जिन्हे 'कामशास्त्र' मे उल्लिखित किया गया है। कविश्रेष्ठ राजशेखर ने अपनी प्रख्यात् कृति 'कर्पूरमजरी' मे देश-देश की नारियो का उल्लेख किया है।[2] पाण्डु देश, काँचि देश, चोल देश, कर्णाट देश, कुन्तल देश की रमणियो की सौन्दर्यगत भिन्नताएँ यहाँ दी गई हैं। एक प्रसग मे स्वयभूदेव ने भी विभिन्न प्रदेशो की नारियो का चित्राकन किया है

फिर उसने (रावण ने) तरह-तरह के रूप वाली मालाओ से 'जिनकी' पूजा की, जो मालाएँ—

—कर्णाटक देश की नारियो की भाँति काम की सारभूत थी,
—आभीर स्त्रियो की भाँति विटरूपी भ्रमरो से युक्त थी,
—लाट देश की वनिताओ की भाँति मुख वर्णों मे निपुण थी,
—सौराष्ट्र देश की स्त्रियो की भाँति सब ओर से मधुर थी,

---

[1] आधुनिक हिन्दी साहित्य मे नारी, पृ० १०।

[2] पडीण गडबाली पुलअण चवला कचिबाला बलीण,
माण दो खडअता, रहरहस कला लोल चोलप्पिआण।
कण्णाडीण कुणता चिउर तरलण कुतलीण पिएसु,
गुफंता णेह गंधि मलअसिहरिणो सीअला वाति वाआ॥
—महाकवि राजशेखर कर्पूरमंजरी, प्रथम जव०, १५

—मालव देश की स्त्रियो की भाँति मध्य मे दुबली-पतली थीं,

—महाराष्ट्र देश की नारियो की भाँति उद्दाम वाक् थी।[1]

उपर्युक्त विवेचन से पूर्णत स्पष्ट हो जाता है कि देशगत विभिन्नता भी नारी-व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। श्रृगार-प्रसाधन, वस्त्र, अलकार, हाव-भाव आदि मे देश-भेद से परिवर्तन आ जाना नितान्त स्वाभाविक है, जो नारी-पात्र का सघटन करने मे कवि को बहुत अशो मे प्रेरणा देता है। यदि कवि देशकालगत विशिष्टताओ से अनभिज्ञ है, तो उसके पात्र-चित्रण मे अस्वाभाविकता अवश्य आ जायेगी और यथेष्ट प्रभावोत्पादन मे कवि सफल नही हो सकेगा।

अत नारी-पात्र के सघटक-तत्त्व के रूप मे देशकाल का विशिष्ट महत्त्व है, जिसे प्रत्येक युग मे कलाकार प्रयोग मे लाकर प्रभावी चरित्रो की सृष्टि करता है।

(द) 'मिथ' (पुराण विषयक) तत्त्व

'मिथ का शाब्दिक अर्थ है[2]—पुराण कथा, काल्पनिक कथा, गप्प आदि। 'पुराण' का अथ 'भाषा शब्दकोश' के अनुसार है[3]—पुराना, प्राचीन, पुरातन, इतिहास, जनपरम्परागत देवदानवादि के वृत्तान्त, हिन्दुओ के १८ धम-सम्बन्धी आख्यान-ग्रन्थ आदि। पुराण-साहित्य एक प्रकार का 'अलिखा इतिहास'[4] होता है।

किसी भी राष्ट्र की सस्कृति का मूलाधार पुराण-साहित्य होता है, यह एक तथ्य है। ज्ञात इतिहास की सीमाओ से परे जो काल अज्ञात होता है, उसके विषय म आदर्श, नैतिक तथा शाश्वत मूल्यो की स्थापना का प्रयत्न पुराण होते है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थापन, प्रलय आदि का वर्णन, सद्-असद् मूल्यो का विवेचन इनमे रहता है।

डॉ० रमेशकुन्तल मेघ का कथन इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है—सभ्यता के आरम्भिक कालो मे ऐतिहासिक धारणाएँ मिथकशास्त्रीय अति-कल्पनाओ (फैंसीज) की निर्मितियो पर आधारित होती है, जिनमे इतिहास की तथ्यात्मकता का अभाव होता है। वे 'ऐतिहासिक आदर्शों' की प्रधानतावाली आदर्शपूर्ण अतीत बन जाती है।[5]

पुराणो मे इतिहास-बोध या वास्तविक जीवन की तुलना मे आदर्श जीवन प्रमुखता पा जाता है। जो अभाव वास्तविक जीवन मे होते है, उन्हे पौराणिक दृष्टि देकर आदर्श जीवन मे पूर्ण कर लिया जाता है। कवि अपने युग का 'मिथकीय-करण' करता है[6] और इस प्रकार अपने युग की सस्कृति को सँवारता है, जिससे

---

[1] डॉ० एच० सी० भायाणी पउमचरिउ, ७१।८।६–१०।

[2] स्टैण्डड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी, पृ० ५८१।

[3] (स०) डॉ० रमाशकर शुक्ल भाषा शब्दकोश, पृ० १२१०।

[4] डॉ० रमेशकुन्तल मेघ तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ७।

[5] वही, पृ० ४।

[6] वही, पृ० २।

कालान्तर मे एक कवि से दूसरे कवि मे भिन्नता आ जाती है ।

पुराण-चेतना कवि को अनेक नवीन दृष्टियाँ देती है, इसे डॉ० रमेशकुन्तल मेघ ने इस प्रकार व्यक्त किया है—पहले तो मिथकीय चेतना वाला इतिहास लेखक हमेशा रूपको और अन्यापदेशो (ऐलिगॅरी) के द्वारा अपनी भावना व्यक्त करता है, दूसरे वह स्वय को लेखक न मानकर किसी देवता, दैवी-प्रेरणा, गुरुकृपा को श्रेय दे देता है, तीसरे वह तमाम घटनाओ को सामाजिक शक्तियो का परिणाम न मानकर कर्म-फल-भोग मानता है, चौथे वह तीर्थस्थानो, आश्रमो, नदी-तटो पर ही जमता-रमता है, पाँचवे वह ऐतिहासिक तथ्यो की बजाय पौराणिक गल्प पेश करता है और अन्तत उसका काल-विभाजन चतुर्युगो के आधार पर हुआ करता है ।[1] और इस प्रकार पुराणतत्त्व प्रभावी हो जाता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पौराणिक दृष्टि का प्रभाव कवि पर पर्याप्त होता है । प्रमाण के लिए तुलसी के काव्य को ले सकते है, जहाँ राम मे 'ब्रह्मत्व', सीता मे 'शक्तित्व' की कल्पना करके कवि ने इन्हे 'पौराणिक चरित्र' बना दिया है ।

नारी-पात्र की सघटना मे भी यह पौराणिक दृष्टि महत्त्वपूर्ण तत्त्व बनकर रही है । नारी का पुराण-समर्थित-स्वरूप किसी न किसी रूप मे कवि को 'नारी-पात्र' की सर्जना मे प्रेरणा देता ही रहा है ।

पुराणो के अनुसार पातिव्रत्य, सेवा, धम आदि नारी के गुण माने गये है । 'पदम्पुराण' मे कहा गया है

कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननी समा ।
विपत्सु मत्रिणी भर्तु सा भार्या पतिव्रता ॥[2]

अर्थात् कार्य करने मे दासी सम, रति समय वेश्या सम, भोजन कराते हुए जननी सम तथा विपत्ति मे मत्रणा देने वाली भार्या ही पतिव्रता होती है । 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' मे अनेक स्थलो पर नारी को पति-सेवा मे रत रहना धर्म कहा गया है ।[3] सावित्री, गाधारी, शैव्या, शचि तथा दक्ष-पुत्री की पातिव्रत्य-कथाएँ पुराणो से होकर साहित्य तक आई है और कवियो के नारी विषयक दृष्टिकोण को न्यूनाधिक प्रभावित करती रही है ।

सतीत्व को पुराणो मे नारीत्व की चरम गरिमा माना गया है । सती नारी को सर्वोच्च सम्मान यहाँ दिया गया है और पृथ्वी के समस्त तीर्थ सती के चरणो मे ही अवस्थित माने गये है । पुराणो के अनुसार नर-नारी एक ही परम तत्त्व के अर्धांश है

---

[1] तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० १८ ।

[2] पदमपुराण (सृष्टिखण्ड, ४७।५६) ।

[3] पतिसेवा व्रत स्त्रीणा पतिसेवा पर तप ।
पतिसेवा परो धर्म पतिसेवा सुरार्चनम ॥ —ब्रह्म०, कृष्णखण्ड, ५७।१८
—डॉ० गजानन शर्मा प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी, पृ० १३५

अर्धनारी नर वपु: प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ।
विभज्यात्मानमित्युक्त्वा त ब्रह्मान्तर्दधे तत ॥[1]

अर्थात् सृष्टि के आदिकाल मे रुद्र आधे शरीर से पुरुष और आधे शरीर से स्त्री हुए, तब ब्रह्मा ने इनके दो विभाग करके सृष्टि बना दी, यही नर-नारी का मूलाधार है ।

प्रत्येक कवि पुराण के आदर्शों को यत्किंचित स्वीकार अवश्य करता है । स्वयभू एव तुलसी मे यह प्रभाव खोजना कठिन नही है । जैन-आगमो का प्रभाव स्वयभू पर स्पष्ट ही है । सीता का चरित्र उनमे पुराण-पुष्ट ही रहा है । सीता का एक कथन, जिसमे शील की प्रतिष्ठा है

मलु केवलु आयइँ सव्वइ मि जइ मणेॅ मलिणु मणम्मणउ ।
णिय-पइहेॅ मिलन्तिहेॅ कुल-वहुहेॅ सीलु जि होइ पसाहणउ ॥[2]

अर्थात् यह प्रसाधन मल है, कुलवधू का प्रसाधन शील होता है ।

तुलसी ने तो पुराणो का आधार निर्विवाद रूप से स्वीकार किया ही है ।[3] सीता के स्वरूप का चित्रण तुलसी ने पौराणिक आधार पर ही किया है ·

उद्भवस्थितिसहारकारिणी क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करी सीता नतोऽह रामवल्लभाम् ॥[4]

अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और सहार करने वाली, क्लेशो की हरणकर्त्री तथा सपूर्ण कल्याणकारिणी श्री रामचन्द्र की प्रियतमा श्री सीता को मै नमस्कार करता हूँ । अन्यत्र भी सीता को ब्रह्म की 'शक्ति' रूप मे चित्रित किया गया है ।[5]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नैतिक मान्यताएँ, नीतिशास्त्र तथा आदर्श, जो पुराण हमे देता है, पात्र-सघटना मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है । डॉ० राधाकमल मुखर्जी तो मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण तथा समाजशास्त्र के सदर्भ मे इसके महत्त्व को बहुत मानते है ।[6]

कवि को जो दृष्टि किसी भी पात्र—पुरुष अथवा नारी—के विषय मे पुराणो से मिलती है, वह उसका उपयोग अपने पात्र की सघटना मे करे—यह नितान्त स्वाभाविक है । अत हम कह सकते है कि नारी-पात्र के सघटक तत्त्व के रूप मे

---

[1] विष्णुपुराण (डॉ० गजानन शर्मा प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी, पृ० १३७) ।

[2] डॉ० एच्० सी० भायाणी पउमचरिउ, ७८।५।६ ।

[3] नानापुराणनिगमागमसम्मत यद् रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि ।

—रामचरितमानस, बालकाण्ड, स्तुतिश्लोक ७ ।

[4] वही, स्तुतिश्लोक ५ ।

[5] श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥

—रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, छन्द १२६ ।

[6] *Philosophy of Personality*, p 91

'मिथ' (पुराण विषयक) तत्त्व भी प्रभावी होता है और कवि इसे भी पात्र के सघटन में प्रयोग करता है।

(इ) कवि-दृष्टिकोण

पात्र-संघटना में कवि का निज का दृष्टिकोण अनिवार्यत प्रभावशाली तत्त्व हुआ करता है। पौराणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एव देशकालगत तत्त्वो का समावेश भी बहुत अंशो तक कवि के निजी दृष्टिकोण के ही अनुसार होता है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि कवि स्वानुभूति के बल पर ही पात्र-सृजन करता है। 'साधारणीकरण' निबध मे डॉ० नगेन्द्र का निष्कर्ष इसी तथ्य की पुष्टि करता है—अतएव निष्कर्ष यही निकला कि साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है।[1] उन्ही के अनुसार—भावशक्ति थोडी बहुत सभी मे होती है। इसलिए साधारणीकरण की भी शक्ति थोडी बहुत सभी मे होती है, अन्यथा जीवन की स्थिति ही सभव नही। परन्तु साधारणीकरण की विशेष शक्ति उसी व्यक्ति मे होगी, जिसकी भाव-शक्ति विशेष रूप से समृद्ध हो, जिसकी अनुभूतियाँ विशेष रूप से सजग हो। ऐसा ही व्यक्ति कवि है।[2]

कवि का दृष्टिकोण ही किसी पात्र को विशिष्ट व्यक्तित्व दे पाता है। जब प्रसाद की 'श्रद्धा' का स्वरूप देखते हैं, तो सहसा प्रसाद का नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण हमारे समक्ष आ जाता है।[3]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की 'शकुन्तला' कालिदास के मानस की सर्जना है, गोदान की 'धनिया' मे प्रेमचन्द का नारी के प्रति दृष्टिकोण सहज ही देखा जा सकता है। शेक्सपीयर के ओथेलो की 'डैस्डीमोना' मे परम्परागत गुणो के साथ ही कवि का अपना दृष्टिकोण भी निहित है।

यदि कवि-दृष्टिकोण प्रभावकारी तत्त्व न हुआ होता, तो पौराणिक नारी-पात्र के रूप मे 'सीता' का चरित्र हमे सर्वत्र एक-सा मिलना चाहिये था, किन्तु ऐसा नही है। वाल्मीकि की सीता का चरित्र भवभूति की सीता से भिन्न है, भवभूति की सीता स्वयभूदेव की सीता से भिन्न चरित्र वाली है, स्वयभू और तुलसी की सीता मे अन्तर है, तुलसी और केशव की सीता का स्वरूप भिन्न है और मैथिलीशरण गुप्त की सीता सर्वथा अनूठी है।

---

[1] (स०) डॉ० रामेश्वरलाल खडेलवाल, सुरेशचन्द्र गुप्त हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ, पृ० २३७।

[2] रीति काव्य की भूमिका, पृ० २१८।

[3] नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में॥
—महाकवि जयशंकर प्रसाद कामायनी, पृ० ११४

पौराणिक दृष्टि से एक ही पात्र के चरित्र-निर्धारण मे यह अन्तर अन्तत क्यो आ गया ? क्या काल या देशगत भिन्नता से या समाज, सस्कृति, धर्म का स्वरूप भिन्न हो जाने से ऐसा हुआ ? देशकाल, समाज, सस्कृति, धर्म आदि का प्रभाव भी मानना होगा, किन्तु मूल और महत्त्वपूर्ण कारण है इस भिन्नता का 'कवि-दृष्टिकोण' ही। यह पृथक् बात है कि कवि का दृष्टिकोण समाज से बनता है, अत समाज का प्रभाव अधिक रहेगा या कवि दृष्टिकोण का ? यहाँ इस विवाद मे पडना समीचीन नही होगा। इस प्रसग मे डॉ० सपूर्णानन्द का कथन उल्लेखनीय है—साहित्यकार फोटोग्राफर नही होता। अर्थात् वह अपने अन्त करण से सींचकर पात्र का सृजन करता है। पात्र वस्तुत कवि का मानस-पुत्र या पुत्री होता है। जैसे सन्तान मे पितृ-सस्कार आना सहज अनिवार्य है, वैसे ही पात्र मे कवि की छाप—उसका दृष्टि-कोण—आना स्वाभाविक होता है।

कवि-दृष्टि साहित्य को नूतनता एव नित्यता प्रदान करती है। यह पद्मसिंह शर्मा के कथन मे देखिये—प्राचीन कवियो ने कोई बात नई कवियो के लिए नही छोडी है, जिसे वे वर्णन न कर गए हो। वास्तव मे कोई नई बात ससार मे होती ही नही, वह गिनी-चुनी, जानी-पहचानी बाते है, जिन्हे अपनी-अपनी प्रतिभा से नया-नया रूप देकर कवि वर्णन करते है। पुरानी बातो मे उक्ति-वैचित्र्य से नवीनता लाना ही कवि की कारीगरी है। आनन्दवर्धनाचार्य कहते है

दृष्ट पूर्वा अपि ह्यर्या काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति माधुमास इव द्रुमा ॥[1]

परम्परागत चले आ रहे पात्र को नवीन स्वरूप कवि अपनी प्रतिभा से ही दे सकता है, जिसे 'उक्ति-वैचित्र्य' कहे या कुछ और, इससे हमे विशेष प्रयोजन नही है। गुप्तजी की कैकेई यदि पश्चात्ताप की अग्नि में सुलग कर[2] कचन बन जाती है, तो यह गुप्तजी की उपलब्धि है, उनके निजी 'कवि-दृष्टिकोण' की ही उपलब्धि है। यदि सीता को उन्होने स्वाभिमानी गृहपत्नी[3] बनाया, उर्मिला को उपेक्षिता से गरिमामयी[4] बनाया, तो यह श्रेय मूलत उनके कवि-दृष्टिकोण को ही है।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि नारी-पात्र के सघटक तत्त्वो मे कवि-दृष्टिकोण भी एक प्रभावशाली महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिससे पात्र के सघटन मे कवि प्रेरणा ग्रहण करता है।

---

[1] प० पद्मसिंह शर्मा बिहारी सतसई—तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३३।

[2] युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी—
'रघुकुल मे भी थी एक अभागिन रानी'।
निज जन्म जन्म मे सुने जीव यह मेरा—
'धिक्कार ! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा'। —मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० २४६

[3] औरो के हाथो यहाँ नही पलती हूँ,
अपने पैरो पर खडी आप चलती हूँ। —वही, पृ० २२३

[4] मानस-मन्दिर मे सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह मे, बनी आरती आप ! —वही, पृ० २६८

३

स्वयंभू एवं तुलसी के काव्य की पृष्ठभूमि

प्रत्येक कवि अपने युग से प्रभाव ग्रहण करता है और युगानुरूप सृजन करके उस प्रभाव को व्यक्त भी करता है। यद्यपि साहित्यकार देशकाल की सीमा मे नही बँधता, किन्तु युग-चित्रण से विमुख भी नही हो पाता। प्रत्येक देश मे, प्रत्येक युग मे साहित्यकार ने अपने युग के समाज, दर्शन, सस्कृति तथा धर्म का स्वरूप अकित किया है और अतीत से परम्परा तथा मूल्यो को ग्रहण करके, वर्तमान (कवि का अपना युग) की कसौटी पर उन्हे परखकर आगत के लिए उनको सरक्षित करने का दायित्व निभाया है। कालिदास हो या शेक्सपीयर, वाल्मीकि हो या व्यास, गेटे हो या गोर्की, प्रसाद हो या प्रेमचन्द, तथा सुमित्रानन्दन पन्त हो या अज्ञेय—सभी के साहित्य मे युग-चित्रण अवश्य होता है। साहित्यकार युग का प्रतिनिधि होता है और जिस युग को इतिहासकार की पक्षपातपूर्ण बुद्धि वास्तविक से अवास्तविक बना सकती है, उसको साहित्यकार काव्य के माध्यम से नितान्त वास्तविक बनाकर प्रस्तुत करता है।

स्वयभू का समय हम ई० ७५०–७६० (जन्म) मानते है, जिसकी पुष्टि इस प्रमाण से होती है—स्वयभू राष्ट्रकूट राजा ध्रुव[1] (वि० स० ८३७–८५१) के अमात्य रयडा धनजय के आश्रित थे।[2]

स्वयभू के आश्रयदाता रयडा धनजय का समय ८३७–८५१ वि० स० माना जाता है, जो ईसवी सन् ७८०–७९४ तक आता है। इस आधार पर स्वयभूदेव का समय ई० सन् ७५०–७६० मान लेना आपत्तिजनक नही होना चाहिए। भाषा विकास को आधार बनाकर, इतिहासविद् अपभ्रश-काल को सामान्यत विक्रम की छठी

---

[1] ध्रुव का समय ७८० ई० से ७९४ ई० रहा है।
—डॉ० रतिभानुसिह नाहर प्राचीन भारत का राजनैतिक एव सास्कृतिक इतिहास, पृ० ६०८।
[2] (स०) राजबली पाण्डेय हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्रथम भाग), पृ० ३३१।

शती से लेकर दसवी शती तक मानते हैं ।[1]

तुलसी का समय हम निश्चित रूप से सम्वत् १५८९ (सन् १५३२)—सम्वत् १६८० (सन् १६२३) मानते हैं। इस विवेचन मे हम निम्न दृष्टि से दोनो महा-कवियो के काव्य की पृष्ठभूमि का निरूपण करेगे

१ सामाजिक-सास्कृतिक तथा धार्मिक,
२ राजनीतिक-आर्थिक,
३ साहित्यिक,
४ नारी-विषयक युगीन पारिवेशिक मान्यता ।

स्वयभूदेव का युग अपभ्रश के उत्कर्ष का काल माना गया है,[2] जिसमे समाज तथा सस्कृति, राजनीति तथा धर्म एव साहित्यिक प्रवृत्तियो का सम्यक् विवेचन स्वाभाविकत हुआ, जिसकी पृष्ठभूमि उसी युग से मिली होगी। उस युग की एक विशिष्टता को डॉ० रामसिह तोमर ने निम्न कथन मे स्पष्ट किया है—समस्त साहित्य मे एक विशिष्ट सम्प्रदायगत धार्मिक वातावरण मिलता है। जैन-कवि की अपनी विवशताएँ थी, उसके सामने एक समाज रहा होगा। उसी को ध्यान मे रखकर रचना करने के कारण धार्मिकता ने कही-कही प्रधान स्थान ले लिया है।[3] सम्भव है, यही धार्मिक-सम्प्रदाय-गत वातावरण स्वयभू के पात्रो का स्वरूप 'जिनमय' बनाने का कारण रहा हो। स्वयभू के समस्त पात्र—पुरुष और नारी—जैन धर्म मे दीक्षित और जिन भक्त है।[4]

सामाजिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक

स्वयभूदेव का युग सामाजिक दृष्टि से सिमटने और ह्रास का युग माना जाता है। विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति इस युग की राजनीति से सामाजिक जीवन मे भी प्रवेश कर रही थी, परिणामत समाज विघटन की ओर उन्मुख हो रहा था। तत्कालीन समाज की गतिविधि का परिचय डॉ० राजबली पाण्डेय ने इन शब्दो मे दिया है—भारत के इतिहास मे इस युग की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। राजनीतिक और सामाजिक जीवन का विस्तृत विभाजन और विघटन, राजवशो की स्थानीयता और जातीयता, धार्मिक साम्प्रदायिकता, अन्ध-विश्वास, आचार-विचार की कृच्छ्रता और सकीर्णता, रूढिवादिता और परम्परावाद, अतीत का अत्यन्त आग्रह, सग्रह और सरक्षण, आत्मविश्वास का अभाव और ग्रहण-शक्ति की दुर्बलता आदि विशेष

---

[1] (स०) राजबली पाण्डेय हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्रथम भाग), पृ० ३२९।

[2] विक्रम की आठवी, नवी, दसवीं शताब्दियाँ अपभ्रश साहित्य का उत्कर्ष युग कही जा सकती हैं। चतुर्मुख, द्रोण, स्वयभू, पुष्पदन्त, योगीन्द्र आदि इसी युग के प्रतिभाशाली कृतिकार हैं।

—डॉ० रामसिह तोमर प्राकृत और अपभ्रश साहित्य, पृ० ६७

[3] वही, पृ० ६९।

[4] डॉ० सकटाप्रसाद उपाध्याय कवि स्वयभू, पृ० ११५।

उल्लेखनीय हैं ।[1]

वास्तविकता यह है कि इस काल से पूर्व भारतीय समाज जीवन के उच्चादर्शों से प्रेरणा पाकर एकता के सूत्र मे बँधा हुआ था । यद्यपि उच्च एव निम्न वर्ग के लोग समाज में तब भी थे, किन्तु खान-पान, रीति-नीति, आचार-व्यवहार मे इतना विभेद या व्यवधान नही था। डॉ० सकटाप्रसाद उपाध्याय का कथन है कि सामाजिक सम्बन्धों मे सकीर्णता का प्रवेश नवीं शताब्दी के अन्त मे हुआ । तदनन्तर वर्ण बिलकुल जन्म-मूलक माने जाने लगे और जाति-भावना ने वर्ण पर विजय पा ली ।[2]

जैन, वैष्णव तथा अन्य आचारो के कारण खान-पान तथा रहन-सहन मे छुआ-छूत की भावना को प्रोत्साहन मिला। इस छुआछूत के परिणामस्वरूप समाज विघटित होने लगा और विदेश से आने वाले इस्लामी तथा अन्य लोगों ने इस प्रवृत्ति का पूरा लाभ उठाया । हिन्दू तथा जैन समाज मे सामाजिक-सास्कृतिक-धार्मिक आधार पर भेद-भाव होने लगा, जिसका प्रभाव स्वयभू की रचनाओ से लक्षित हो जाता है । यद्यपि उनमे धार्मिक कट्टरता नही है, तथापि जैन-धर्म के तत्त्वो के प्रति वे पर्याप्त सजग रहे हैं ।

वर्ण-व्यवस्था मे विघटन का क्रम आरम्भ हो चुका था । यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण समाज मे थे, तथापि बहुसख्यक शूद्रो की स्थिति शोचनीय ही रही । जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि सम्प्रदायो के शुद्धिवाद और कृच्छ्राचार के कारण शूद्रो की सामाजिक अवस्था और गिर गई । यह एक बहुत बडा ऐतिहासिक आश्चर्य है कि जिन धर्मों के प्रवर्तको ने मानव-मात्र की समता का उपदेश दिया, उन्ही के अनुयाइयो ने बाह्य-शुद्धि के नाम पर बहुसख्यक मानव को मानवेतर स्थान दिया ।[3]

सामाजिक विघटन के कारण जातियाँ, उपजातियाँ बनती जा रही थीं, जिससे सास्कृतिक परिवेश भी परिवर्तित हो रहा था । आचार-विचार मे भी परिवर्तन आना स्वाभाविक था । जन्म, स्थान, व्यवसाय, प्रथा, सम्प्रदाय आदि के आधारो पर बनने वाली नई जातियाँ स्वार्थ के सीमित दायरो मे बन्द होकर समष्टि की भावना ओझल होने देने मे सहायक बन रही थी । इस स्थिति का यथार्थ मूल्याकन राजबली पाण्डेय के इस कथन मे हुआ है—जीवन के प्रवाह और प्रसार के बदले उसमे अव-रोध, सकीर्णता और वर्णनशीलता ने घर कर लिया था । यह एक प्रकार से असावधानता, प्रमाद और ह्रास का युग था ।[4]

उस युग मे ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन—तीन प्रधान धर्म थे और यही सास्कृतिक मूल्यो तथा आदर्शों को प्रभावित कर रहे थे । इस्लाम का प्रवेश आरम्भ हुआ ही था

---

[1] प्राचीन भारत, पृ० ३६५ ।

[2] कवि स्वयभू, पृ० १८ ।

[3] (स०) राजबली पाण्डेय . हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्रथम भाग), पृ० १०३ ।

[4] प्राचीन भारत, पृ० ३६५ ।

और बहुत सीमित प्रभाव उसका इस युग मे हुआ है। इस काल मे धार्मिक जीवन भी विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति से बच नही सका। ब्राह्मण सस्कृति अपने नवोत्थान की ओर अग्रसर थी और बौद्ध तथा जैन-दर्शन का समावेश ब्राह्मण धर्म मे हो रहा था, जिससे ये सम्प्रदाय महत्त्वहीन से हो रहे थे।[1] इतने पर भी ब्राह्मण धर्म मे असगिता और जडता बनी ही रही। हिन्दू समाज शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, ब्राह्म, गाणपत्य आदि सम्प्रदायो मे बँट गया था। इस विघटन ने साहित्य को प्रभावित किया।

इस काल मे सस्कृति की मुख्य भाषा सस्कृत थी। बौद्ध और जैन-धर्मों के उदय से उत्पन्न पाली-प्राकृत भाषाओ को इस सस्कृत के अवरोध को सहना पडा, और जैनाचार्यों ने सस्कृत मे रचनाएँ की।[2] सस्कृत मे सरलता, सुन्दरता, मौलिकता के स्थान पर शुष्कता, पाडित्य, शास्त्रीय-विवेचन तथा कृत्रिमता ने उसे लोक-सम्पर्क से दूर कर दिया और प्राकृत-अपभ्रश पुन साहित्य रचना का आधार बनी।

स्वयभू का युग सामाजिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से टूटने का युग था, इसलिए स्वयभू को भी समाज के उत्थान का दायित्व लेना पडा। सक्षेप मे, उनके युग को इन शब्दो मे देखा जा सकता है—जो धर्म एक समय जीवन की समष्टि का आधार था, अब विभाजन का माध्यम बन गया। अपने-अपने सम्प्रदाय मे अत्यधिक आस्था और विश्वास के साथ बहुत-सी युक्तिहीन प्रथाएँ और अन्धविश्वास जुट गए। भाषा अलकार से बोझिल होती चली गई। साहित्य मे नवीनता, सरलता और प्रेरणा की कमी होती गई।[3]

तुलसीदास के काव्य की सामाजिक तथा सास्कृतिक पृष्ठभूमि भी अधिकाशत स्वयभूदेव से समानता रखती है। सास्कृतिक विघटन का मूल कारण था—'इस्लामी-सस्कृति का प्रवेश तथा हिन्दू-सस्कृति मे उसका टकराव'—जिससे पृथकता और विद्वेष की प्रवृत्ति जन्म ले रही थी। इस तथ्य को रामबहोरी शुक्ल के इस कथन से जाना जा सकता है—मुसलमान भारत पर अपना राज्य स्थापित करके ही चुप नही बैठे। उन्होने इस्लाम का सिक्का जमाना भी अपना मुख्य उद्देश्य बनाया। इस देश के निवासियो को इस्लाम-धर्म का अनुयायी बनाना उनका लक्ष्य हुआ।[4] इन मुसलिम आक्रमणो ने समाज को प्रभावित किया।[5] समाज मे बिखराव की प्रवृत्ति पनप रही थी, सम्प्रदायगत विभेद-विद्वेष जन्म ले रहे थे और समाज मे वर्णाश्रम व्यवस्था की

---

[1] डॉ० सकटाप्रसाद उपाध्याय कवि स्वयभू, पृ० १६।

[2] रविषेणाचार्य ने विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' का सस्कृत छायानुवाद 'पद्मचरितम्' किया, जिसका प्रभाव स्वयभू पर है।

[3] राजबली पाण्डेय प्राचीन भारत, पृ० ३६५।

[4] तुलसी, पृ० १।

[5] अकबर के पूर्व मुसलमानो के जो आक्रमण हुए थे, उनमे मूर्तियों के खण्डन, अनेक अनाचार तथा अत्याचार, धर्म-विपर्यय आदि के दृश्यो ने जनता मे अवतारवाद के विरुद्ध भावना भर दी।

—डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ३

भावना अपना महत्त्व खो रही थी। सामाजिक बिखराव की इस भीषणता का चित्रण रामबहोरी शुक्ल ने किया है—जिन ब्राह्मणो के पूर्वजो ने ज्ञानार्जन और विद्यादान को अपने लिए एक मात्र कार्य स्थिर किया था, वे अब निरक्षर होने लगे। उनके आचरण-भ्रष्ट होने से उनकी ओर लोगो की श्रद्धा भी धीरे-धीरे कम होने लगी· ·क्षत्रियो के हाथ से राजशक्ति छिन चुकी थी। कुछ नाम-मात्र के राजा रह गए थे। उन्होने मुसलमानो की अधीनता ही नही, उनके प्रभाव को अपने घरो मे घुस आने दिया था · वैश्यो की मर्यादा भी भग हो गई थी ·शूद्रो ने भी इस सामाजिक विश्रृखलता से लाभ उठाया। वे मनमाने व्यवसाय और काम करने लगे। इन सभी वर्णों मे बहुतो ने इस्लाम भी स्वीकार किया—भय और प्रलोभन दोनो के कारण।[1]

तुलसी को अपने समाज की इसी दुरावस्था का निराकरण करने के लिए सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और सास्कृतिक समन्वय के आदर्श को अपना उच्चतम काव्यादर्श बनाना पडा। यह उस समय की अनिवार्यता थी, जिसे डॉ० रमेशकुन्तल मेघ ने लक्ष्य किया है—अकबर के समय मे 'समन्वय' ही सस्कृति का प्रतीक हो गया। उस समय के सभी समाजोन्मुख सस्कृति-निर्माताओ को समन्वय करना पडा। सामाजिक और सास्कृतिक क्षेत्र मे अकबर ने तथा धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र मे तुलसी ने यह समन्वय किया।[2]

तुलसी का समाज पाखण्ड, रूढियो, अन्धविश्वासो से ग्रस्त एक ह्रासोन्मुख समाज था, जिसमे मर्यादाहीनता, आदर्शहीनता तथा निष्ठाहीनता उच्चतम स्तर पर थे। रामबहोरी शुक्ल का कथन है कि सामान्य जन अपने पूर्वजो के चलाए हुए धर्म के प्रति अविश्वास करने लगे। वे आध्यात्मिक तत्त्वो को सम्यक् रीति से समझे बिना ही उक्त वर्ग के धर्म-निरूपको के द्वारा जो कुछ कहा जाता—उसे ही ठीक समझते और शास्त्रो के प्रवर्तित विचारो का तिरस्कार करते। इन सब बातो का परिणाम यह हुआ कि समाज के विचार और आचार की स्थिति डाँवाडोल हो उठी।[3]

हिन्दू-धर्म इस काल तक अनेक सम्प्रदायो तथा उप-सम्प्रदायो मे विभक्त हो चला था। इस्लाम से इसका सम्पर्क तथा सघर्ष आत्म-केन्द्रित करने मे मूल कारण बना और अनेक सुधार-आन्दोलन चल पडे। शैव, वैष्णव, शाक्त, स्मार्त, सौर, गाणपत्य आदि सम्प्रदायो ने अपने प्रचार कार्य द्वारा सर्वसाधारण मे कही-न-कही स्थान बना लिया।

जैन तथा बौद्ध-धर्म जिनके कारण हिन्दू-धर्म मे अनेक सुधार किए गए, अब भी विद्यमान थे और इनके प्रभाव का क्षेत्र पर्याप्त बडा था। स० १४०० तक ये

[1] तुलसी, पृ० ४।

[2] तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ७३।

[3] तुलसी, पृ० ५।

दोनो धर्म भी ह्रासोन्मुख हो चले थे ।[1] धर्म अपने व्यापक अर्थों को छोडकर सीमित 'सम्प्रदाय' का अर्थ ग्रहण कर रहा था। इस्लामी सस्कृति के प्रभाव से आचार-विचार तथा कला आदि मे भी परिवर्तन आ गए थे। इस पतनोन्मुख, पाखण्डपूर्ण तथा विघटित समाज के प्रति, जिसमे सास्कृतिक. नैतिक, सामाजिक पराभव के दृश्य साकार थे, तुलसी का दृष्टिकोण निश्चितत खेदपूर्ण, क्षोभ तथा रोष से भरा होना नितान्त स्वाभाविक ही था। डॉ० रमेशकुन्तल मेघ का कथन दृष्टव्य है—उनके सामने वर्ण-आश्रम-श्रुति-सम्मत एक समाज का चित्र था जिसकी कसौटी पर उन्होने अपने समाज को कसा। इसलिए उनमे इन सामाजिक परिवर्तनो के प्रति शोक और रोष है ।[2]

स्वयभू एव तुलसी के काव्यो की सामाजिक तथा सास्कृतिक पृष्ठभूमि एक विघटनोन्मुख समाज की ओर सकेत करती है। दोनो ने ही सामाजिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक आदर्शों, मूल्यो तथा प्रतिमानो मे बिखराव की प्रवृत्ति का सामना किया, अन्तर यदि रहा, तो इतना कि स्वयभू को जैन-सस्कृति, समाज और धर्म का आधार मिल गया और तुलसी को हिन्दू-सस्कृति, समाज तथा धर्म का आधार लेना पडा। दोनो को ही सामाजिक तथा सास्कृतिक आदर्शों की पुनर्प्रतिष्ठा का महत् उत्तर-दायित्व वहन करना पडा,[3] जिससे उनके काव्यो मे व्यापक जीवन-दृष्टि—'समष्टि की ओर उन्मुख'—आ गई।

राजनीतिक-आर्थिक

स्वयभू का युग राजनीतिक दृष्टि से भी अस्थिरता, विघटन तथा विद्वेष का युग था। केन्द्रीय शक्तियाँ छिन्न-भिन्न होकर प्रान्तीयता की भावना को स्थान दे रही थी। राजनीतिक अस्थिरता के कारण राष्ट्रीयता की उच्च-भावना का लोप स्वाभाविक ही था। डॉ० ओमप्रकाश ने उस युग की राजनीतिक दुरावस्था का अकन इस प्रकार किया है कि हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उत्तर भारत की राजनीतिक एकता समाप्त हो गई। उसके विस्तृत साम्राज्य के स्थान पर अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये। उत्तर भारत मे इस समय कन्नौज, मगध, कश्मीर के राज्य सबसे शक्ति-शाली थे ।[4]

राजनीतिक वातावरण मे तीव्र परिवर्तन हो रहे थे और नये-नये राज्यो के उदय से शक्ति-सघर्ष का खतरा बढ गया था। भारत के उत्तरी तथा दक्षिणी भागो मे

---

[1] परशुराम चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्थ भाग), पृ० ३५ ।

[2] तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ७६ ।

[3] स्वयंभू और तुलसीदास दोनो ही कवि अपनी-अपनी रचना द्वारा भिन्न-भिन्न आदर्श प्रस्तुत करते हुए लोगो के मन पर धम और व्यवहार सम्बन्धी अनेक सस्कार उत्पन्न करना चाहते थे।

—डॉ० गजानन साठे पउमचरिउ और रामचरितमानस, अध्याय ५

[4] प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २७६ ।

क्रमश. प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट ही प्रधान रूप से राजनीतिक शक्ति के रूप मे प्रतिष्ठित थे। दक्षिण के राज्यो का उत्तरी राज्यो से सघर्ष हुआ, जिसके कारण ७५३ ई० में चालुक्य वश को पराजित कर दन्तिदुर्ग ने राष्ट्रकूट वश की स्थापना कर दी। इस राष्ट्रकूट वश का सम्राट् ध्रुव[1] अत्यन्त प्रतापी हुआ। इस प्रतापी सम्राट् ध्रुवधारा वर्ष ने काँची से कोशल तथा लाट देश तक अपनी शक्ति-पताका फहराई और उत्तर भारत पर आक्रमण करके वत्सराज, गौडराज आदि को हराया। ध्रुव का स्थायी शासन उत्तर भारत मे नही हुआ और ध्रुव के पुत्रो को पराजित करके वत्सराज के पुत्रो ने कन्नौज पर पुन अधिकार कर लिया।

समस्त युग का विश्लेषण करते हुए डॉ० सकटाप्रसाद उपाध्याय ने लिखा है—इस प्रकार ९वी शताब्दी मे उत्तर से लेकर दक्षिण तक भारतवर्ष अनेक छोटे-बडे राज्यो मे विभक्त था, जिनका एक प्रधान कार्य परस्पर युद्ध करना और एक-दूसरे को मिटा देने की चेष्टा करना था।[2] अरबो ने भारत की शक्ति को चुनौतियाँ देनी आरम्भ कर दी थी और राष्ट्र को इनके समक्ष आत्म-समर्पण भी करना ही पडा।[3]

स्वयभू के युग का राजनीतिक ढाँचा निश्चय ही खोखला हो चुका था और आत्म-विश्वास तथा शौर्य आदि का लोप हो गया था। डॉ० चन्द्रबली पाण्डेय ने इन शब्दो मे उस युग को देखा है—जनता मे स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता, देशभक्ति आदि की भावनाएँ, जो किसी देश की रक्षा और समृद्धि के लिए आवश्यक हैं, शिथिल पड गई और उनके स्थान पर परावलम्बन, राज्य के प्रति उदासीनता, राजभक्ति, चाटुकारिता, दब्बूपन आदि की भावनाओ का उदय हुआ, जो किसी भी देश के राजनीतिक जीवन को खोखला बना देते हैं।[4]

राजनीतिक अस्थिरता तथा देश मे निरन्तर युद्धो के वातावरण मे आर्थिक स्थिति मे भी असमानता तथा परिवर्तन की प्रवृत्ति रहती है। आर्थिक सपन्नता तो अवश्य थी, किन्तु आर्थिक क्रियाओ—व्यापार, लेन-देन आदि, के कर्त्ता वैश्य का स्थान अत्यन्त निम्न श्रेणी मे परिगणित हो रहा था। हिन्दी प्रदेश मे स्यात् वैश्य लोगो का स्थान द्विज श्रेणी से गिर रहा था।[5]

तात्पर्य यह है कि स्वयभू के युग मे राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी स्थिरता नही थी और उन्हे राज्याश्रय ग्रहण करना पडा होगा। स्वयभू पर इस स्थिति का प्रभाव अवश्य पडा होगा।

---

[1] इसी ध्रुव (७८३–९४ ई०) के राज्यकाल मे मन्त्री धनजय के आश्रय मे कवि स्वयभू रहे थे।
—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्रथम भाग), पृ० ३३४।

[2] कवि स्वयभू, पृ० १६।

[3] सांघिक शक्ति के अभाव, सीमान्त नीति और विदेश नीति के प्रति उदासीनता तथा विलास-प्रियता के परिणामस्वरूप देश मुसलिम आक्रमण से झुक गया। —वही, पृ० १७

[4] प्राचीन भारत, पृ० ३६६।

[5] (स०) धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य (प्रथम भाग), पृ० ११६।

तुलसीदास का युग इस्लाम के आधिपत्य का युग है। जो प्रक्रिया स्वयम्भू के युग मे आरम्भ हुई थी, उसका परिणाम तुलसी युग मे मुसलिम-प्रभुता के रूप में प्रकट हुआ। तुलसीदास महान् मुगल सम्राट् अकबर[1] (शासन काल १५५६–१६०५ ई०) तथा उसके पुत्र जहाँगीर[2] (शासन काल १६०५–१६२६ ई०) के शासन काल मे विद्यमान थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उस युग का राजनीतिक विवरण दिया है—देश मे मुसलमानो का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय मे गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उनके सामने ही उसके देव मन्दिर गिराये जाते थे, देव मूर्तियाँ तोडी जाती थी और पूज्य पुरुषो का अपमान होता था और वे कुछ भी नही कर सकते थे।[3]

तुलसी का युग राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता का तो नही रहा, किन्तु धार्मिक कट्टरता तथा वर्ग-सघर्ष की राजनीति अवश्य इस युग मे पनप उठी। सामन्तों तथा गैर सामन्तो एव अमीरो और गरीबो के बीच राजनीतिक-आर्थिक सघर्ष था। तुलसी युग का एक चित्र यह है—तुलसी जिस काल मे हुए उसमे महाभारत के भारद्वाज और युधिष्ठिर, मनु, शुक्र, धर्मशास्त्रकार और कौटिल्य आदि के राजनीति-सिद्धान्त अपनी व्यावहारिक अन्विति खो चुके थे, तथा समाज के वर्ण विभाजन एव आश्रम-धर्म लडखडा चुके थे। मुगल कूटनीति और सरकार धर्म, सम्राट, समाज एव शासन के नये आधारो पर मजबूत हो गयी थी।[4]

तुलसी का राजनीतिक मापदण्ड श्रुति-स्मृति-पुराण पर आधारित था। अत मुगल काल की कट्टरता ने उन्हे विचलित अवश्य किया होगा। अकबर इस युग का महान् शासक था, जिसने सामाजिक तथा सास्कृतिक समन्वय करके राजनीति को उदार बनाने का प्रयास किया था, किन्तु सामन्तीय सस्कृति की विकृतियाँ उसे छोड नही सकी और अकबर का उदार दृष्टिकोण राजनीति मे आकर सकुचित ही बना रहा। इतिहास की दृष्टि से अकबर का शासन काल 'राजनीतिक व्यवस्था' का काल रहा, जिसमे आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक स्थिति मे ही सुधार नही हुआ, प्रत्युत् साहित्य की मधुर गम्भीर धाराएँ भी प्रवाहित हुई।[5]

तुलसी को राजनीतिक दृष्टि से स्थिरता का युग मिला, किन्तु यह विधर्मी सस्कृति पर आधृत था, अत तुलसी इस ओर कम ही आकृष्ट हुए। सम्भवत इस्लाम की हिन्दू-विरोधी राजनीति के परिणामस्वरूप ही तुलसी ने 'राम-राज्य' के रूप मे एक सर्वोत्तम आदर्श राज्य-व्यवस्था की मौलिक कल्पना की। उन्हे किसी राजतन्त्र या राजसभा का निजी अनुभव नही था, क्योकि वे राजा के आश्रित नही रहे।

---

[1] (स०) धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य (प्रथम भाग), पृ० १३–१४।

[2] वही, पृ० १३–१४।

[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६३।

[4] डॉ० रमाकुन्तल मेघ तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० १०१।

[5] डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ३।

यही कारण है कि तुलसी-काव्य मे तत्कालीन समाज पर जितना विचार किया गया, उतना प्रशासन पर नही हुआ ।[1]

आर्थिक विषमता और दरिद्रता तुलसी के युग मे थी, इसका आभास स्वय उन्होने अनेक स्थलो पर दिया है । वास्तविकता तो यही है कि उच्च तथा निम्न वर्ग बन जाने से आर्थिक विषमता बढ गई थी । तुलसी ने इस दरिद्रता को स्वय भोगा था और उसी को भोगने के कारण उनमे लोकभावना ने अत्यन्त उत्कट रूप धारण किया था । तुलसी ने उदर पूर्ति के लिए भीख माँगी, जीवन की साँसो को बचाने के लिए दरिद्रता से अनवरत सघर्ष किया । जीवन मे उच्चता प्राप्त करने का जैसे यह वरदान था—जिसका बचपन लललाते-बिललाते, दर-दर भिक्षा माँग कर बीता, प्रणय के अतृप्ति-बोध ने जिसके यौवन पर बैराग्य की विभूति लेप्रित कर दी, उस तुलसी का अन्तिम समय भी सुखकर न व्यतीत हुआ । सम्भवत विधाता का यह उन्हे सबसे बडा वरदान था ।[2]

तुलसी के युग में 'कलि बारहि बार दुकाल पडे'—अकाल पडते थे और अन्नाभाव मे लोग मृत्यु का ग्रास बनते थे । तुलसी के समय गरीबी, शोषण, बेरोजगारी, अराजकता और अकाल जनता के भोगने को रह गये थे । आर्थिक विषमता के कारण धनी व्यक्ति 'नीच' होकर भी 'उच्च' बन सकता था । तुलसी युग की इस विषमता का एक यथार्थ रूप यह था—इतना सब कुछ होते हुए भी यह नही कहा जा सकता कि उन दिनो के सभी लोग एक ही प्रकार से सम्पन्न थे । एक ओर जहाँ सम्राट्, सुलतान, राजे-महाराजे एव उमरा लोग अपने धन के गर्व मे चूर समझे जाते थे, वही समाज के निम्न वर्ग वालो की दशा ठीक नही थी ।[3] तुलसी को इस दरिद्रता का यथार्थ व्यक्तिगत अनुभव था ।[4]

तुलनात्मक दृष्टि से स्वयभूदेव का युग राजनीतिक अस्थिरता, किन्तु इस्लामी प्रभाव से प्राय अछूता था, जबकि तुलसी का युग स्थिरता का होकर भी इस्लाम की प्रभुता एव कट्टरता की भावना का युग था । इस अन्तर ने एक को राजनीति के प्रति कुछ उदासीन बना दिया, तो दूसरे को हिन्दू रीति-नीति के पुर्नस्थापन की प्रेरणा दी । स्वयभू राज्याश्रय मे रहे थे, राजनीति के भोक्ता एव द्रष्टा थे, अत दरबारो के चित्रणो, मन्त्रियो की गोष्ठियो आदि के चित्रणो, राजाओ के विलास, जल-क्रीडा, मृगया, विहार आदि के विशद और सजीव वर्णनो की प्रधानता उनके काव्य मे रही, जबकि तुलसी राज-दरबार से दूर ही रहे और इस ओर से प्राय उदासीन होकर उन्होने अपने आदर्श के रूप मे 'राम-राज्य' की कल्पना की ।

आर्थिक मूल्यो तथा आदर्शों के प्रति भी दोनो कवियो की दृष्टि का अन्तर युगीन

[1] डॉ० रमेशकुन्तल मेघ तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० १०२ ।

[2] सुधाकर पाण्डेय मानस-अनुशीलन, पृ० ७ ।

[3] (स०) परशुराम चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्थ भाग), पृ० ६८ ।

[4] डॉ० रमेशकुन्तल मेघ तुलसी आधुनिक वातायन से, पृ० ८२ ।

परिवेश के कारण ही रहा है। स्वयभू को दरिद्रता, आर्थिक सघर्ष भोगने का अवसर ही कभी नही आ सका और तुलसी दरिद्रता के चक्र मे आजीवन पिसते रहे। यही कारण है कि स्वयभू आर्थिक मूल्यो के स्थापन का कहीं प्रयास ही नहीं करते, जबकि तुलसी इस विषमता से जूझ कर उसका हल खोजने को प्रयत्नशील रहते हैं।

राजनीतिक-आर्थिक दृष्टि से स्वयभू तथा तुलसी के काव्यो की पृष्ठभूमि मे निश्चित रूप से अन्तर आ गया, जिसने तुलसी को स्वयभू की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय बनाया। इसी अन्तर ने तुलसी को लोक-द्रष्टा तथा यथार्थ-द्रष्टा बनाया—अपने जीवन के परवर्ती चरण मे तुलसी आध्यात्मिक तथा स्वप्नद्रष्टा के बजाय क्रमश धार्मिक और यथार्थ द्रष्टा हुए है।[1]

साहित्यिक

प्रत्येक कवि अपने युग का चित्रण साहित्य मे करता है, तो साहित्यिक आधार अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन रचनाकारो से ग्रहण करता है, और उनको अपने काव्यादर्शों के निर्धारण के लिए मानक बना लेता है। इसी कारण प्रत्येक आने वाला कवि अपने पूर्ववर्ती रचनाकारो से प्रभावित होता ही है। स्वयभू से पूर्व इस दृष्टि से एक सशक्त परम्परा विद्यमान थी, जिसमे सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश के अनेक विश्रुत एव समर्थ रचनाकार रहे हैं। स्वयभू ने स्वय को जिस आचार्य परम्परा मे रक्खा है, वह प्राकृत के उत्कृष्ट कवि विमलसूरि से चलकर आचार्य रविषेण तक पहुँची है। स्वयभू को सस्कृत की विशाल साहित्य-सपदा विरासत मे मिली थी और उस सपदा से वे लाभान्वित भी हुए थे। सस्कृत मे स्वयभू के समय तक आते-आते जो कृत्रिमता, दुरूहता, शुष्कता तथा पुनरुक्ति आदि दोष आ गए थे, उन्होने अपभ्रश को उसकी स्थानापन्न बनने का अवसर प्रदान किया।

स्वयभू ने सस्कृत तथा प्राकृत के प्रभाव को स्वीकार किया है, किन्तु 'देसी भाषा' के रूप मे अपभ्रश को ही आधार बनाया है

दीह-समास-पवाहावकिय । सक्कय-पायय-पुलिणालकिय ।।
देसी-भासा-उभय-तडुज्जल । क वि दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ।।[2]

इस प्रकार अपभ्रश को ग्रहण करने के साथ ही साथ स्वयभू ने रविषेणाचार्य का प्रभाव भी श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया है

पुणु रविसेणायरिय-पसाए । बुद्धिएँ अवगाहिय कइराए ।।[3]

प्राकृत-साहित्य की विपुल सपदा मे से विमलसूरि के 'पउमचरिय' ने स्वयंभू को आकृष्ट किया। जैन-धर्मानुयायी होने के कारण स्वयभू ने जैन-पुराण-साहित्य को

---

[1] डॉ० रमेशकुन्तल मेघ तुलसी आधुनिक वातयन से, पृ० ८२।
[2] डॉ० एच्० सी० भायाणी पउमचरिउ, १।२।३–४।
[3] वही, १।२।६।

अपनी रचनाओं में प्रधान आधार बनाया है।

इस संदर्भ मे डॉ० नामवरसिंह का कथन उल्लेखनीय है—ब्राह्मणो की तरह जैनो का भी अपना पुराण-साहित्य है। सामान्यत दिगम्बर जैनो के धार्मिक साहित्य के चार भाग किये जाते हैं—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, और द्रव्यानुयोग। प्रथमानुयोग मे तीर्थंकर आदि पुरुषोत्तमो का चरित्र वर्णन किया जाता है और यही जैन महापुराण हैं। इस तरह महापुराण अथवा पुराण साहित्य दिगम्बर मत के इसी प्रथमानुयोग की एक शाखा है, जिसमे तीर्थंकरो, चक्रवर्तियो, बलदेवो, वासुदेवो और प्रतिवासुदेवो आदि ६३ शलाका पुरुषो के जन्म-जन्मान्तर की जीवन-गाथाओ को लेकर विशाल साहित्य की सृष्टि की गई है।[1]

स्वयंभू का युग साहित्य मे सप्रदाय की भावना को प्रश्रय देने वालो का युग था, यद्यपि इसके कुछ विशिष्ट कारण अवश्य थे। बौद्ध, जैन तथा हिन्दू-धर्म परस्पर स्पर्धा रखते थे, ये धर्म अपने आन्तरिक विग्रहो के कारण विभक्त होते जा रहे थे और विभाजन की इस प्रक्रिया ने सकुचित सप्रदायवाद को जन्म देने मे प्रधान भूमिका निभाई। इस युग का साहित्य इस भावना से अछूता नही रह सका। डॉ० रामसिंह तोमर ने लिखा है कि समस्त साहित्य मे एक विशिष्ट सप्रदायगत धार्मिक वातावरण मिलता है। जैन कवि की अपनी विवशताएँ थी, उसके सामने एक समाज रहा होगा। उसी को ध्यान मे रखकर रचना करने के कारण धार्मिकता ने ही कही-कही प्रधान स्थान ले लिया है।[2]

यही कारण है कि स्वयभू के साहित्य मे भी जैन-धर्म का प्रतिपादन हुआ है और उनके सभी पात्र जैन-धर्म मे दीक्षित हैं। इस काल मे भी दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हुई—एक पौराणिक महाकाव्य, जो ऐतिहासिक महापुरुषो के जीवन को आधार बनाकर लिखी गई, तथा दूसरी मुक्तक रचनाएँ, जिनमे स्वतत्र भावाभिव्यक्ति प्रमुख रही।[3]

स्वयभू का युग भी राज्याश्रय मे रहकर साहित्य-सृजन का है, वे स्वय राष्ट्रकूट राजा ध्रुव के अमात्य रयडा धनजय के आश्रय मे थे। इस राज्याश्रय की प्रवृत्ति का उल्लेख डॉ० हरिवश कोछड ने किया है।[4] डॉ० नामवरसिंह ने इस युग के जैन-साहित्य मे धार्मिकता के साथ-साथ मौलिक अनुभूतियो को लक्ष्य किया है और इस साहित्य का

---

[1] हिन्दी के विकास मे अपभ्रश का योगदान, पृ० १७६।

[2] प्राकृत और अपभ्रश साहित्य, पृ० ६६।

[3] वही, पृ० ६६।

[4] जैन कवियों ने किसी राजा, राजमन्त्री या गृहस्थ की प्रेरणा से काव्य-रचना की है, अत इन कृतियो मे उन्हीं की कल्याण कामना से किसी व्रत का माहात्म्य प्रतिपादन या किसी महापुरुष का चरित-व्याख्यान किया गया है।

—अपभ्रंश साहित्य, पृ० ३६।

महत् गौरव गान किया है—तीर्थंकरो की भावोच्छ्वसित स्तुतियो, अनुभव भरी सूक्तियों, रहस्यमयी अनुभूतियो, वैभव-विलास की झाँकियो आदि के साथ ही उन्मुक्त वन्य जीवन की शौर्य स्नेह-सिक्त गाथाओ के विविध चित्रो से अपभ्रंश साहित्य की विशाल चित्रशाला सुशोभित है ।[1]

अपभ्रंश-साहित्य को अपने मत-प्रचार का माध्यम बनाकर प्रयुक्त करने के बाद इसके प्रयोक्ताओ ने उत्कृष्ट साहित्य-सृजन भी किया है। स्वयभू इसके सर्वप्रथम कवि है, जिन्होने दीर्घ परम्परा का प्रवर्तन करके गौरव प्राप्त किया है।

तुलसी के साहित्य की साहित्यिक पृष्ठभूमि स्वयभू के समान ही पुष्ट तथा विश्रुत साहित्य-सृजेताओ की है। सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की विपुल साहित्य-निधि तुलसी के समक्ष हमेशा ही रही और इस अनुपम निधि से तुलसी ने अपने साहित्य-भवन की नीव को इतना दृढ बना लिया कि काल का वेगपूर्ण प्रवाह उसे हिला पाने मे असमर्थ रहा है।

तुलसीदास ने अपने काव्य का आधार स्वीकार करते हुए कहा है

नानापुराणनिगमागमसम्मत यद् रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि ।[2]

अर्थात् पुराण, आगम, निगम तथा कुछ अन्य आधारो पर 'रामचरितमानस' आधारित है। तुलसी ने जिन पूर्ववर्ती कवियो का साहित्यिक ऋण स्वय पर स्वीकार किया है, उन सबका सश्रद्धा उल्लेख उन्होने किया है

ब्यास आदि कबि पुगव नाना । जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ।।
चरन कमल बदउँ तिन्ह केरे । पुरवहु सकल मनोरथ मेरे ।।
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा । जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ।।
जे प्राकृत कबि परम सयाने । भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने ।।
भए जे अहहिं जे होइहहि आगे । प्रनवउ सबहि कपट सब त्यागे ।।[3]

उक्त पक्तियो मे 'प्राकृत कबि' तथा 'भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने' पर बरबस ध्यान चला जाता है। क्या तुलसी अपने सर्वाधिक निकटस्थ प्राकृत कवि (विमलसूरि, प्रवर सेन, रविषेणाचार्य तथा स्वयभू) का प्रभाव स्वीकार करते है ? यह अप्रत्याशित तो कुछ नही लगता, बल्कि स्वाभाविक-सा लगता है कि तुलसी ने जिस 'भाषा काव्य' की परम्परा को लिया, वह अवश्य इन्ही 'प्राकृत कवियो' से आई है। यो भी प्राकृत का 'पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश' नाम से वर्गीकरण सत्रहवी शती का ही है, इससे पूर्व तो यह प्राकृत ही थी।

प्रश्न हो सकता है कि यदि तुलसी को जैन-रामकाव्य का ज्ञान था, तो स्वयभू आदि का स्पष्ट उल्लेख क्यो नही वे कर सके ? हमारा मत है कि धार्मिक विद्वेष ने

---

[1] हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योगदान, पृ० १७६ ।

[2] रामचरितमानस, बालकाण्ड, स्तुतिश्लोक ७ ।

[3] वही, १४।२–६ ।

इस दिशा मे तुलसी को रोका और वे जैन कवियो का स्पष्ट नामोल्लेख न कर सके। डॉ० सकटाप्रसाद उपाध्याय ने भी धार्मिक आग्रह को इस दिशा मे बाधक माना है।[1] तुलसी अपने साहित्य पर इनके प्रभाव का उल्लेख करना भी अपना दायित्व मानते रहे होगे, अत किसी विवाद में पड़ने से बचने की भावना के कारण ही उन्होने केवल 'जे प्राकृत कबि परम सयाने' कहकर अपना दायित्व निर्वाह कर लिया है। 'भाषा बद्ध करबि मै सोई' कहकर तुलसी ने इन प्राकृत कवियो का देय स्वीकार किया है।

तुलसी का युग इस्लाम की प्रभुता का था, जिसमे अरबी तथा फारसी साहित्य का सृजन मुगल दरबारो मे हो रहा था। अकबर के दरबार मे अनेक कवि विद्यमान थे, किन्तु तुलसी 'स्वान्त सुखाय' लिखकर समाज को सजीवनी-शक्ति देने का महान् उपक्रम कर रहे थे। इस मुगल-शासन द्वारा पोषित साहित्यधारा का प्रभाव भी अवश्य उन पर पडा,[2] जिसे तुलसी की भाषा से स्पष्ट किया जा सकता है।

तुलसी को अपने समक्ष सन्त कवि कबीर, नानक, सूफी कवि कुतुबन, मझन, जायसी तथा सगुण भक्ति के रसखान, आलम तथा मीरा की परम्परा दीख रही थी, जहाँ लोक-भूमि पर भक्ति की प्रतिष्ठा ही सर्वोपरि थी, लोक-चेतना और समन्वय जहाँ काव्य के आदर्श थे और स्वतन्त्र भावाभिव्यक्ति जिसकी विशेषता थी। तुलसी युग का मूल्याकन इन शब्दो मे हुआ है—इस युग का अधिकाश साहित्य धार्मिक था। कृष्ण या राम की जीवन-गाथाएँ ही इस युग की अधिकाश कविता के विषय थे।

राममार्गी कवियो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध तुलसीदास थे।[3] रामानन्द के दार्शनिक प्रदेय को लेकर तुलसी ने काव्य को उदात्त भावनाओ से मण्डित किया है। उनमे भी हिन्दुत्व का स्वर मुखरित हुआ है, किन्तु वह सम्प्रदायवाद की सकुचित भावना से प्रेरित नही, अपितु मर्यादा, आदर्श एव शाश्वत जीवन-मूल्यो से अनुप्राणित है। इस्लाम की विधर्मी तथा कट्टर साम्प्रदायिकता के विष को प्रभावशून्य करने के लिए तथा सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक विघटन को रोकने के लिए तुलसी ने स्वभावत 'समन्वय' लिया, जो उन्हे पूर्ववर्ती महापुरुषो से मिला।

दोनो महाकवियो के काव्य की साहित्यिक पृष्ठभूमि की तुलना करने पर स्वयभू के समक्ष समाज का विघटन होने के साथ-साथ सम्प्रदायवाद की उग्र भावना थी

[1] परवर्ती हिन्दी कवियों पर स्वयभू की भाव या विचारधारा का प्रभाव ढूँढ निकालना कठिन है। इसका मुख्य कारण यह है कि स्वयभू एक जैन कवि थे और उन्होने जो कुछ लिखा, वह जैन-धर्म के आदर्शों के प्रचार और प्रसार के लिए। यह कैसे सम्भव था कि अपने अवतारो और आराध्यो को इस प्रकार जैन-मतावलम्बी बनाए जाते देखकर भी हिन्दू कवि स्वयभू की विचारधारा को मान्यता देते या उसे ग्रहण करते ? —कवि स्वयभू, पृ० २२१

[2] अरबी वाली साहित्यिक परम्परा की अपेक्षा फारसी की साहित्यिक परम्परा इस देश के कुछ अधिक अनुकूल थी और इसी कारण यहाँ के साहित्य पर इसका प्रभाव भी कम नही पडा।

—(स०) प० परशुराम चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (चतुर्थ भाग), प० ८५

[3] डॉ० बी० एन्० लूनिया भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, पृ० ३८७।

और तुलसी के समक्ष इसके साथ-साथ इस्लाम की ओर कट्टरता तथा हिन्दुत्व-विरोधी भावना भी थी। स्वयभू ने इसके समक्ष प्राय आत्मसमर्पण-सा करके जैन-धर्म के प्रचार-प्रसार को ही अपना लक्ष्य बना लिया, जबकि तुलसी ने 'समन्वय' का मार्ग अपनाकर इस भावना से डटकर टक्कर ली है। स्वयंभू ने निश्चित रूप से स्वय को जैन-कवि बना दिया है, किन्तु तुलसी हिन्दू, शैव, वैष्णव आदि कवि न होकर विश्वात्मा-कवि हैं, मानवता के कवि हैं और उदार-उदात्त जीवनधारा के कवि हैं। स्वयभू ने राज्याश्रय की सीमाओ मे बँधकर काव्य लिखा, तुलसी ने मुक्त रहकर, काव्य के माध्यम से, आत्म-प्रकाशन किया। स्वयभू ने केवल रविषेणाचार्य का उल्लेख किया, जबकि तुलसी ने व्यास, वाल्मीकि तथा समस्त प्राकृत-कवियो का उल्लेख करके अपनी साहित्यिक गरिमा का निर्वाह किया है।

निष्कष रूप मे स्वयभू मे मूल्यो तथा आदर्शों के प्रति जो निरपेक्ष दृष्टि रही है, वह उनके काव्य मे सीमित दृष्टिकोण का परिचय देती है, जबकि तुलसी का काव्य महान् सागर बन गया है।

नारी-विषयक युगीन पारिवेशिक मान्यता

नारी, काव्य के मूल मे आदिकाल से रही है और सर्वोच्च सम्मान विद्या की देवी के रूप मे 'सरस्वती' को दिया गया है। आदियुग से नारी समाज का प्रमुख अग रही है। पितृ-सत्तात्मक युग रहा हो अथवा मातृ-सत्तात्मक युग, नारी 'जननी' होने के कारण सदैव उच्च पदस्थ एव गरिमा मण्डित रही है। मानव जीवन पग-पग पर नारी के त्याग, ममता, करुणा, अनुराग एव उदारता जैसे दिव्य गुणो मे अनुप्राणित होता रहा है।

प्रत्येक युग का कवि नारी के प्रति एक विशेष भाव बनाकर चला है क्योंकि 'प्रकृति' बनकर नारी कवि को सदैव अभिभूत करती रही है। भारतीय प्रज्ञा ने नारी के प्रति कहा—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' और नारी का स्तवन मुक्त-कण्ठ से करती रही

> या नारी प्रयतादक्षा या नारी पुत्रिणी भवेत्।
> पतिव्रता पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी ॥[1]

वैदिक-साहित्य मे नारी को पूज्या माना गया, किन्तु सर्वत्र ऐसा नही हो सका। परवर्ती साहित्य मे, विशेषत बौद्धकाल मे, नारी को भोग का साधन माना जाने लगा। वास्तविकता यह है कि समाज की नारी के प्रति दृष्टि एक कभी नही रही और युगानुरूप उसमे भी परिवर्तन आते रहे। कभी नारी मे औदार्य, त्याग, निष्ठा,

---

[1] श्री विष्णु धर्मोत्तर, ३।३२२।११ (कल्याण, नारी अक)।

पावित्र्य और सतीत्व तो भारतीय नारी की वह बहुमूल्य निधि है, जो उसे अतीत काल से परम्परा से प्राप्त हुई है।
—स्वामी विवेकानन्द भारतीय नारी, पृ० ५८

ममता, समर्पण आदि महान् गुणों को पाकर कवि उसे 'देवी' कह उठा, तो कभी ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, कामुकता तथा छल देखकर कवि ने उसे 'कुलटा' कहकर, तिरस्कृत कर दिया।

संस्कृत-साहित्य मे नारी-चित्रण के दोनो ही रूप मिले, जिनसे नारी के प्रति समाज के उच्च तथा निम्न दृष्टिकोण का परिचय मिल जाता है। नारी का सामाजिक रूप जब जैसा रहा, कवि ने उसे न्यूनाधिक ग्रहण अवश्य किया है।

स्वयभू के युग मे नारी की स्थिति अवश्य सम्मानजनक रही होगी, क्योकि स्वय स्वयभू की पत्नियो—आइच्चम्बा तथा सामिअब्बा—ने क्रमश अयोध्याकाण्ड तथा विद्याधरकाण्ड लिखने की प्रेरणा उन्हे दी थी, ये दोनो सुशिक्षिता थी।[1] स्वयभू के समय नारियो की स्थिति पर डॉ० ओमप्रकाश ने लिखा है—इस काल मे भी कुछ स्त्रियाँ अच्छी पढी लिखी थी। पर्दे की प्रथा नही थी। स्त्रियाँ राजसभा तथा महाभारत की कथा सुनने के लिए मन्दिरो मे निस्सकोच जाती और पुजारियो और ब्राह्मणो से मिलती।[2]

जैन-धर्म मे नारी के प्रति श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदाय एक धारणा नही रखते, एक उसे मुक्ति की अधिकारिणी मानते हैं, दूसरे नही मानते। इस अन्तर को इस प्रकार देखा जा सकता है

The Swetambara admit women to full membership in the monastic order and accept the possibility of their attaining salvation, Digambara—they have consistently held women in low esteem as the greatest temptations in the world, and the cause of all sinful acts Women are prohibited from entering their temples and the possibility of their attaining sainthood is denied [3]

जैन-धर्म मे स्त्रियो को जो भी स्थान मिला हो, किन्तु स्वयभू के युग मे स्त्रियो का सामाजिक स्थान ऊँचा रहा है, इसे इतिहासविद् डॉ० बी० एन्० लूनिया ने भी स्वीकार किया है—उस युग मे महिलाओ की महान् प्रतिष्ठा थी। ऐसा कोई प्रमाण नही है जो यह प्रकट करे कि समाज मे स्त्रियो की स्थिति पुरुषो की अपेक्षा नीची थी तथा वे पुरुषो की उपाश्रित और अधीनस्थ होती थी। बौद्धिक तथा आध्यात्मिक जीवन मे स्त्रियो को वही प्रतिष्ठा प्राप्त थी जो कि पुरुषो को।[4] स्वयभू ने भी नारी के प्रति हीनता को स्थान नही दिया, किन्तु धार्मिक आग्रह के कारण कही-कही नारी का विकृत रूप भी आ गया है।

---

[1] नाथूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९७।

[2] प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ३०९।

[3] Benjamin Walker *Hindu World*

[4] भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति का विकास, पृ० ४७।

बहुपत्नीत्व, वेश्यावृत्ति, कामुकता आदि से स्वयभू-युग अछूता नही था और नारी के प्रति भोगमूलक दृष्टि तब भी बनी हुई थी। विरोधाभास यह था कि स्त्रियो की दशा उच्च होते हुए भी पुत्रियो की अपेक्षा पुत्रो की कामना अधिक की जाती थी।[1] नारी के प्रति उस युग की इस विरोधाभास पूर्ण दृष्टि का सकेत डॉ० उषा पाण्डेय ने भी दिया है—इतना सब होते हुए भी, अन्य मतो के समान जैन धर्म भी नारी को काम का साधन, वासना का मूल समझ कर उसे त्याज्य बताता था।[2] स्वयभू पर यह प्रभाव स्पष्ट दीख पडता है, जब वे नारी को अत्यन्त घृणित देखकर उसमे विरति उत्पन्न कराने के लिए कहते हैं

आहारहों पिसिवउ सीवियउ। णिसि मडउ दिवसें सजीवियउ॥
णीसासूसासु करन्ताहुँ। गउ जम्मु जियन्त-मरन्ताहुँ॥
मरण-कालें किमि-कप्परिउ। जे पेक्खेंवि मुहु वकिज्जइ॥
घिणिहिणन्तु मक्खिय-सएँहिँ। त तेहउ केम रमिज्जइ॥[3]

अर्थात आहार के लिए पीसना, रात मे मृतक समान सो जाना, दिन मे जीना, इस प्रकार श्वास लेते-छोडते तथा जीते-मरते स्त्री-जन्म बीतता है। मरण काल में कीडे उसे ऐसे खाते हैं कि देखने वाला मुँह फेर लेता है। सैकडो मक्खियो से घृणित बने इस स्त्री-शरीर से कैसे रमण किया जाता है।

प्रकारान्तर से डॉ० नामवरसिंह ने इस युग मे नारी की स्थिति दयनीय कही है—पुरुष के अत्याचारो के विरुद्ध नारी के आत्म-गौरव को उस युग मे स्वयभू ने जितने साहस के साथ प्रतिष्ठित किया, उतना साहस और किसी ने नही दिखाया।[4]

वस्तुत स्वयभू का युग नारी के प्रति विरोधाभास युत भावनाओ का युग था। एक ओर तो नारी को उच्च स्थान दिया गया, दूसरी ओर उसे भोग की सामग्री के रूप मे चित्रित किया गया। इसी का दिग्दर्शन 'पउमचरिउ' मे हमे मिलता है। स्वयभू अधिकाशत नारी के भोगमय रूप का अकन करते हैं।

तुलसी का युग सामाजिक तथा सास्कृतिक विघटन का युग रहा है। उस युग मे नारी राजपूत नरेशो के लिए विलास की वस्तु बन गयी थी।[5] तुलसी का युग नैतिक पतन का युग था, जिसे डॉ० राजपति दीक्षित ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है—विलासिता का वातावरण देश भर मे व्याप्त था, लोगो मे स्त्रैण्य की अभिवृद्धि हो रही थी, बडे-बूढो की उपेक्षा मे भी वह हेतु थी।[6]

तुलसी का युग नारियो के प्रति घोर उपेक्षा का तथा उनके माँसल सौन्दर्य के

---

[1] डॉ० बी० एन्० लूनिया भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति का विकास, पृ० ४८।
[2] मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे नारी भावना, पृ० २२।
[3] पउमचरिउ, ३९।६।७–९।
[4] हिन्दी के विकास मे अपभ्रश का योगदान, पृ० २४४।
[5] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड), पृ० ४३।
[6] तुलसीदास और उनका युग पृ० २१–२२।

प्रति घोर आसक्ति का ही रहा, जिसमे पुरुष नारी के तन को देखने का अभ्यस्त हुआ। प० परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि जहाँ तक समाज मे नारियो के स्थान के विषय मे कहा जा सकता है, वह उतना स्पृहणीय नही था। ये, उसके पहले से ही, पुरुषो की ही अपेक्षा कही अधिक नीचे स्तर की समझी जाती रही और इन्हे प्राय दासियो जैसा ही स्थान प्राप्त रहा। .उस काल की स्त्रियो मे पर्दा-प्रथा के कारण उन्हे अनेक प्रकार की दु खद असुविधाओ का भी सामना करना पड जाता था।[1]

पुरुष वर्ग नारी के प्रति वासना का भाव किस सीमा तक रखता था, यह तुलसी के कथन से पुष्ट है

नहिं मानत क्कौ अनुजा तनुजा[2]

इस घोर चारित्रिक पतन की स्थिति का दिग्दर्शन डॉ० सुधारानी शुक्ला ने कराया है—पुरुष समाज की नारी-विषयक आसक्ति ने धर्म और समाज की मर्यादा को उच्छृखल करना आरम्भ कर दिया था उस समय सती-साध्वी नारियो को निकाल कर भ्रष्ट और पतित नारियो को प्रश्रय दिया जाता था। मन, वचन और कर्म सबमे धूर्तता आ गई थी।[3]

इस्लाम मे नारी को भोग की सामग्री माना गया है, और उसी के प्रभाव से नारी के प्रति भारतीय दृष्टिकोण मे भी परिवर्तन आ गया था, जो अपरिहार्य ही था।

इस्लामी सस्कृति के मूल ग्रन्थ 'कुरान' मे स्त्रियो से पुरुष को ऊँचा बताया गया है और पराङ्मुखी स्त्री को पीटने का भी आदेश है। स्त्री पति की खेती कही गई है।[4] मुसलिम युग मे नारियो की पतितावस्था के प्रमाण अनेक लेखको ने दिये हैं।[5] बहुविवाह तथा बालविवाह का प्रचलन जोरो पर था। विधवाओ की दशा अत्यन्त दयनीय थी। दासियो को बेचना एक सामान्य बात थी। नारी की उन्नति अवरुद्ध हो गई थी और नारकीय जीवन नारी को व्यतीत करना पड रहा था। इस सन्दर्भ मे डॉ० श्यामसुन्दर व्यास का कथन उल्लेखनीय है—मुसलिम युग मे नारी की स्थिति देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि ऋग्वेद काल उसके उत्कर्ष की चरम सीमा थी, तो मुसलिम काल उसके पतन की चरम सीमा सिद्ध होती है। इस काल मे उसके अधिकारो का ही अपहरण नही हुआ, अपितु जीने के लिए उसे शुद्ध प्राणवायु भी मिलना कठिन हो गई। युग के स्वार्थ ने उसके विकास को अफीम, आग और अनैतिकता का खिलौना बना डाला। नारी के प्रति बरता गया ऐसा घिनौना दृष्टि-

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्थ भाग), पृ० ६५।

[2] रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, १०२।५।

[3] गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक आदर्श, पृ० ४६।

[4] डॉ० राजाराम रस्तोगी तुलसीदास—जीवनी और विचारधारा, पृ० १७७।

[5] डॉ० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, प० २७।

कोण इसी काल मे सम्भव हो सका और सम्भवत भारतीय नारी के विकास के इतिहास का सबसे काला पृष्ठ यही काल है ।[1]

नारी के प्रति युग के इसी अपावन दृष्टिकोण से तुलसी प्रभावित हुए होंगे और नारी के उत्थान की कामना उनके मानस में जगी होगी। जिस 'काम' के गर्हित रूप ने नारी को गिराया था और उसकी गरिमा को कलंकित किया था, उसकी निन्दा करना उनके लिए नैतिक कवि-दायित्व बन गया था । डॉ० सुधारानी शुक्ला का विचार है कि तुलसी नारी की दिव्य विभूतियो के पारखी थे । गोस्वामी जी समाज मे ऐसी ही नारियो को चाहते थे, जिनके द्वारा गृहस्थ-धर्म की पुनीत भावना का विनाश नही हो सकता था ।[2]

तुलसी जैसा सन्त, साधक कवि नारी को हेय दृष्टि से देखता भी, तो आखिर क्यो ? इस प्रश्न का उत्तर खोजे बिना, समाज के उद्धार के मार्ग को खोजने वाला, यदि यथार्थ को चित्रित करने वाले इस युगचेता कवि को आज प्रगतिशीलता के नाम पर 'घोर नारी-निन्दक' कहे, तो उसके कथन का क्या औचित्य है ?

युगान्तरकारी कवि होने के नाते अपने युग का पूरी ईमानदारी से चित्रण करने वाले तुलसी को यदि 'युगीन परिवेश' मे रखकर देखा जाए, तो वे नारी के महान् पोषक एव परिष्कारकर्त्ता ही सिद्ध होगे । डॉ० शिवकुमार शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है कि गोस्वामी जी वस्तुत नारी-निन्दक नही है, किन्तु मूलत काम-प्रवृत्तियो की ही निन्दा करने के लिए वे विभिन्न प्रसगो मे 'नारी' को भी उसी दृष्टिकोण से देखने को विवश हो गये हैं ।[3]

तुलसी ने युग का यथार्थ चित्रण जैसा किया, वैसा अन्यत्र सहज प्राप्य नही । लोक-मगल की शीतलता प्रदायिनी वारिधारा से तुलसी ने 'वासना के कीचड से सनी' नारी का प्रक्षालन कर उसे 'देवी' बनाने का महान् उपक्रम किया । नारी-विषयक युगीन परिवेश मे तुलसी जैसे 'उदात्त के पोषक' कवि के लिए यही प्रेय और ध्येय भी था । डॉ० राजाराम रस्तोगी का मत है कि नारी के कामिनी रूप की निन्दा और उसके गुणो की शत-शत प्रशसाएँ तुलसी ने अपने महाकाव्य 'मानस' मे की हैं। नारी से ही रामभक्ति का आलोक पाकर वह मातृविहीन बालक माँ के प्यार और पत्नी के प्रेम की उदात्तता को जानते हुए नारी के प्रति सदा उदार रहा है ।[4]

दोनो महाकवियो—स्वयभूदेव तथा तुलसीदास के नारी-विषयक युगीन परिवेश तथा मान्यताओ का तुलनात्मक मूल्याकन करे, तो हम पायेंगे कि स्वयभू का युग नारी की सामाजिक स्थिति की दृष्टि से तुलसी की तुलना मे अत्यन्त श्रेष्ठ तथा परिष्कृत था । नारी का जो स्वरूप युग ने इन दोनो को दिया, वह सर्वथा भिन्न

[1] हिन्दी महाकाव्यो मे नारी-चित्रण, पृ० २७ ।
[2] गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक आदर्श, पृ० ३८ ।
[3] रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४१२ ।
[4] तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ० १६१ ।

है। अत. दोनो के नारी-चित्रण मे अन्तर आ जाना नितान्त स्वाभाविक ही है। स्वयभू ने राजसी दृष्टि से नारी को देखा और उसके भोग-विलास वाले रूप को चित्रित किया, क्योंकि यही युग—'सामन्ती वातावरण'—की माँग थी, जबकि तुलसी ने नारी के 'विलास-वासना-मय' रूप की तीव्रतम निन्दा करके, उसके पावन रूप को चित्रित करने तथा उसी की शाश्वत प्राण-प्रतिष्ठा करने का महत्तर दायित्व निभाया है।

वस्तुत स्वयभू तथा तुलसी की नारी-भावना में जो मूलभूत अन्तर है, वह है 'स्वयभू का नारी के प्रति अनुराग-जन्य विराग' और 'तुलसी का नारी के प्रति वैराग्यजनित अनुराग'। इसी कारण स्वयभू ने नारी के स्थूल, माँसल, लौकिक सौन्दर्य एव सभोग-क्रीडा के चित्र अकित किये हैं और तुलसी ने वासनामूलक काम-रूप की निन्दा करके, मानसिक, सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय सौन्दर्य का मर्यादित रहकर अकन किया है। यह अन्तर दोनो कवियो मे उनकी नारी-विषयक युगीन पारिवेशिक मान्यता के कारण ही आया है।

४

सुकुमार कन्याएँ

नारी-चित्रण का प्रथम रूप 'कन्या रूप' ही है, क्योकि हर नारी 'कन्या' अवश्य होती है, तभी उसे वह नारीत्व प्राप्त होता है, जो उसकी चिर कामना तथा गरिमा का परिचायक होता है। कवि जब अपने पात्रो का सघटन करता है, तो कथा के रूप तथा अपने निजी दृष्टिकोण के अनुसार ही पात्र का गठन करता है। सम्भव है, किसी नारी-चरित्र का विकास दिखाने के लिए कवि जन्म से युवा होने तक का चित्रण करे अर्थात् 'कन्या रूप' को लेकर चले अथवा उस रूप को छोडकर वह नारी का पत्नी रूप या माता रूप या अन्य वाछित रूप ही चित्रित करे। तात्पर्य यह है कि नारी के विविध रूपो—कन्या, प्रेयसी, पत्नी, सपत्नी, माता, बहन, भाभी, सास, सखी तथा दासी आदि—का एक ही पात्र मे चित्रण कवि के लिए अनिवार्य नही होता। यह सम्भव है कि जिस पात्र के कन्या रूप का विशद चित्रण कवि ने नही किया, उसके पत्नी रूप का अत्यन्त सजीव चित्रण वह प्रस्तुत कर दे। वस्तुत पात्र के किसी स्वरूप विशेष का चित्रण करना या न करना कथानक की प्रकृति तथा कवि-दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

परम्परित कथानक मे परम्परित पात्रो का चित्रण कवि अपने दृष्टिकोण तथा मान्यताओ के अनुरूप ही करता है। फलत पात्रो का रूप ही भिन्न हो जाता है। जैन-परम्परा ग्रहण करने वाले स्वयभू के नारी-पात्र जैन धर्मानुगामी है और ब्राह्मण रामकथा से उनकी कथा मे अनेक परिवर्तन आ गए हैं।[1] इस कारण स्वाभाविकत 'पउमचरिउ' तथा 'रामचरितमानस' के नारी-पात्रो मे अन्तर आ गया है।

---

[1] जैनी रामकथाओ का आधार स्पष्टतया प्रचलित वाल्मीकिरामायण है किन्तु जैन कवियो ने ब्राह्मण रामकथा को अपना कर उसमें बहुत-से परिवर्तन किए हैं।

—डॉ० कामिल बुल्के रामकथा (उत्पत्ति एव विकास), पृ० ७३५

स्वयभू ने 'पउमचरिउ' मे जितने नारी-पात्रो की सर्जना की है, कुछ उनमे से ऐसे हैं, जिनके नाम तथा परम्परा उपलब्ध हैं और कुछ ऐसे हैं, जो कवि के मानस की मौलिक सृष्टि हैं। यही तथ्य तुलसी के साथ भी है। रामकथा दोनो ही कवियो ने प्राय समान मूलस्रोत—'बाल्मीकि'—से पाई, यद्यपि माध्यम बदल गए, किन्तु कथा की समानता के बाद भी पात्रो मे समानता आ गई हो, ऐसा नही है। केवल नौ या दस प्रमुख पात्र ही 'नाम' की समानता रखते हैं, शेष पात्र नाम और चरित्र से भिन्न है।

सुकुमार कन्याओ के चित्रण मे स्वयभू उदासीन तो नही रहे, तथापि विशद रूप मे कुमारिकाओ का चित्रण भी प्राय उन्होने नही किया।

स्वयभू सुकुमार कन्याएँ

	प्रधान पात्र		गौण पात्र		
१	सीता	१	अनगकुसुम	२	कनकमाला
२	कैकेई	३	तरगमाला	४	श्रीमाला
३	अजना	५	कमलावती	६	तिलककेशा
४	वनमाला	७	कैकसी	८	अनामा कन्याएँ
५	चन्द्रनखा	९	पुष्परागा	१०	जितपद्मा
६	लका-सुन्दरी	११	विशल्या (अनगसरा)	१२	तरगमती की कन्याएँ

प्रधान पात्र

सीता—रामकाव्य परम्परा मे सीता के जन्म की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं,[1] जिनमे जैन-रामकाव्य परम्परा के ग्रन्थो 'वसुदेवहिण्डि', 'उत्तरपुराण' (गुणभद्र) तथा 'महाभागवत्पुराण' मे सीता को 'रावणात्मजा' माना है।

स्वयभू ने जैन कवि 'बिमलसूरि' की परम्परा[2] स्वीकार करके सीता को जनक की पुत्री स्वीकार किया है और साथ ही, जनक की रानी का नाम विदेही (विदेहा) स्वीकार किया है। स्वयंभू ने सीता का परिचय इस प्रकार दिया है

जणउ वि मिहिला-णयरें पइट्ठउ। समउ विदेहएँ रज्जें णिविट्ठउ॥
ताहँ विहि मि वर-विक्कम-वीयउ। भामण्डलु उप्पण्णु स-सीयउ॥[3]

अर्थात् मिथिला नगर के प्रतिष्ठित सम्राट् जनक विदेही के साथ राज्य कर रहे थे,

---

[1] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ३६५–६६।

[2] अह सा सुह पसूया, दुहिया पुत्त च तत्थ वइदेही। —२६।७५

एव अणुक्कमेण जोव्वण-लायण्ण-कन्ति पडिपुण्णा।
सोयस्स मोयणट्‌ णज्जइ सवट्ठिया सीया॥ —२६।९८

—स० डॉ० एच्० जेकोबी पउमचरियं (बिमलसूरि)

[3] डॉ० एच्० सी० भायाणी पउमचरिउ, २१।५।३–४।

उनके यहाँ श्रेष्ठ, विक्रमशाली पुत्र भामण्डल तथा पुत्री सीता उत्पन्न हुए।

स्वयभू ने सीता का राम के साथ विवाह परम्परागत ढग से सम्पन्न न कराते हुए अपनी कुशल काव्य-कला का परिचय एक मौलिक उद्भावना से दिया है। जनक के राज्य पर शबर-पुलिन्द और म्लेच्छो ने आक्रमण कर दिया, फलत जनक की सहायतार्थ राम-लक्ष्मण ने युद्ध किया और सीता की रक्षा की,[1] इस शौर्य-पराक्रम के कारण सम्राट् जनक ने अपनी पुत्री 'राम' को देने का सकल्प कर लिया।

दसहिँ तुरगहिँ णीसरिउ। भिल्लाहिउ भज्जेँवि आहवहोँ।
जाणइ जणय-णराहिवेँण। तहिँ कालेँ वि अप्पिय राहवहोँ॥[2]

उपर्युक्त मौलिक उद्भावना से स्वयभू सीता को समर्थ वर राम की भावी पत्नी बनने का सकेत दे रहे हैं।

कन्या रूप मे सीता की अनुपम देह-यष्टि का सूक्ष्म-चित्रण कवि ने किया है

सीयहेँ देह-रिद्धि पावन्तिहेँ। एक्कु दिवसु दप्पणु जोयन्तिहेँ॥
पडिमा-छलेँण महा-भय-गारउ। आरिस-वेसु णिहालिउ णारउ॥
जणय-तणय सहसत्ति पणट्ठी। सीहागमणेँ कुरगि व तट्ठी॥
'हा हा माएँ' भणन्तिहिँ सहियहिँ। कलयलु किउ सज्झस-गह-गहियहिँ॥[3]

अर्थात् सीता की देह ऋद्धि पा रही थी, यौवनागम था। एक दिन सीता दर्पण देख रही थी कि सन्यासी वेश मे नारद की छवि देख भयभीत हो उठी, मानो सिंह के आ जाने से मृगी भयभीत हो गई हो। 'हा माँ' कहती हुई भागी और मूर्छित हो गई।

कन्या-सुलभ भोलापन तथा निश्छलता इस स्वरूप से स्वत मुखरित हो उठे हैं। सिंह-मृगी की उपमा सीता के बाल-सुलभ मनोविज्ञान को स्पष्ट करती है, तो 'दर्पण' देखने की क्रिया निश्चय ही देह-यष्टि पर आती कौतूहलप्रद ऋद्धि का परिणाम है। एक ही बार मे कन्या के मानसिक भावो को प्रत्यक्ष कर दिया गया है। जनक के परिवार की मर्यादा का सकेत भी है कि पर पुरुष, जो अपरिचित है, की परछाही मात्र से सीता भयभीत हो उठती है। कन्या-सुलभ इस निश्छलता तथा भोलेपन का कुपरिणाम बेचारी सीता को भोगना पडा, 'नारद के कोप का भाजन बनकर।'

नारद का अपमान हुआ और बदला लेने के लिए नारद ने सीता का चित्र 'भामण्डल' को दिखाकर सीता के प्रति उसे आसक्त करा दिया।[4] इस प्रसग मे भी प्रकारान्तर से कवि ने सीता के 'सौन्दर्य' का चित्रण किया है, जिसके चित्र मात्र को

---

[1] बिण्णि मि भिडिय पुलिदहोँ साहणेँ। रहवर-तुरय-जोह-गय-वाहणेँ॥
दीहर-सरेँहिँ बइरि सताविय। जणय-कणय रणेँ उव्वेढाविय॥
—पउमचरिउ, २१।७।३–४

[2] वही, २१।७।६

[3] वही, २१।८।३–६।

[4] वही, २१।८।६।

देखकर भामण्डल कामाभिभूत हो गया और काम की दसवीं दशा पा गया ।

दिट्ठ जं जें पडें पडिम कुमारें । पंचहिं सरहिं विद्धु णं मारें ॥[1]

भामण्डल का काम-मद बढ़ता देख, उसे पुत्रवत् पालने वाले, राजा चन्द्रगति ने जनक को बुलाकर सीता का विवाह भामण्डल से करने को कहा । जनक ने असमर्थता प्रकट की, तो निश्चित हुआ कि 'वज्रावर्त' तथा 'समुद्रावर्त' नामक दो विशाल धनुषो की प्रत्यचा चढ़ाने वाले व्यक्ति को सीता दे दी जाएगी ।[2]

राजा जनक उन धनुषो को मिथिला ले आए और तुरन्त 'स्वयवर' का आयोजन कर डाला । इसमे राम-लक्ष्मण ही धनुष तोड पाए, फलत राम के साथ सीता का विवाह सम्पन्न हो गया

लइयइँ सायर-वज्जावत्तइँ । गामहणा इव गुणेहिँ चडन्तइँ ॥

मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-सत्थें । परिणिय जणय-तणय काकुत्थें ॥[3]

सीता का परिणय-बधन राम से होते ही स्वयभू की सीता 'पत्नी' के पद पर प्रतिष्ठित हो गई । यहाँ स्वयभू ने भविष्यवाणी के द्वारा प्रकारान्तर से सीता-राम के 'दैवी रूप' को मानने का उपक्रम भी किया, यद्यपि वे इस दृष्टि से इन पात्रो का चरित्र बनाने के इच्छुक नही लगते । विवाह होने पर योगी-ऋषियो ने राम-लक्ष्मण को आशीष दिया और कहा

आयहें कण्णहे कारणेॅण । होसइ बिणासु बहु-रक्खसहुँ ॥[4]

अर्थात् इस कन्या के कारण अनेक राक्षसो का विनाश होगा ।

सीता राम के साथ सुखपूर्वक रहने लगी । सुकुमार कन्या से बन गई वधू ।

सीय-बलइँ पइसारियइँ जणें जय-जय-कारिज्जन्ताइँ ।

थियइँ अउज्झहें अविचलइँ रइ-सोक्ख-स य भुजन्ताइँ ॥[5]

कैकेई—कैकेई रामकथा की प्रमुख पात्रा है, जिसका उल्लेख पूर्ववर्ती रामकाव्यो मे मिलता है । 'वाल्मीकि-रामायण' मे केकय-पुत्री कैकेई के स्वयवर का उल्लेख नही मिलता, किन्तु 'पउमचरिय' मे इस स्वयवर का सर्वप्रथम विशद चित्रण हुआ है ।[6] इसके अनुसार राजा शुभमति तथा उसकी पत्नी पृथ्वीश्री की पुत्री कैकेई के स्वयवर का आयोजन धूम-धाम से हुआ ।

यद्यपि स्वयभू ने कैकेई के चित्रण मे बिमलसूरि की परम्परा को ग्रहण किया है, तथापि अपनी मौलिक उद्भावना का परिचय भी उन्होंने दिया है । कैकेई का परिचय स्वयभू ने इस रूप मे दिया है

---

1 पउमचरिउ, २१।६।१ ।

2 वही, २१।१०, ११, १२।१–६ ।

3 वही, २१।१३।५–६ ।

4 वही, २१।१३।६ ।

5 वही, २१।१४।१० ।

6 डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० २६४ ।

तहिँ सुहमइ-णामेण पहाणउ । ण सुरपुरहोँ पुरंदरु राणउ ।।
पिहुसिरि तहोँ महएवि मणोहर । सुरकरि-कर कुम्भयल-पओहर ।।
णन्दणु ताहेँ दोणु उप्पज्जइ । कैक्कय तणय काइँ वण्णिज्जइ ।।
सयल-कला-कलाव-सपण्णी । ण पच्चक्ख लच्छी अवइण्णी ।।[1]

अर्थात् शुभमति सम्राट् की सुन्दरी पत्नी पृथु श्री से सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति, सकल कला-कलापो मे निपुण, प्रत्यक्षत लक्ष्मी के सदृश कन्या कैकेई उत्पन्न हुई ।

कन्या का सौन्दर्य, सर्व कला-नैपुण्य तथा सौभाग्य ऐसे गुण है, जो उसे समाज मे गरिमा प्रदान करते है । कैकेई मे इन गुणो का समावेश स्वयभू की सामाजिक तथ्यो के प्रति जागरूकता का परिचायक है ।

कैकेई के स्वयवर का आयोजन किया जाता है ।[2] सम्राट् दशरथ तथा जनक इस अवसर पर कौतुक मगल नगर, जहाँ स्वयवर हो रहा है, मे उपस्थित है । कैकेई राज-मर्यादा के अनुकूल आती है । समस्त नर-श्रेष्ठो, विद्याधरो आदि पर दृष्टि-पात करती है और राजा दशरथ के गले मे वर-माला डाल देती है

तो करेणु आरुहेँवि विणिग्गय । ण पच्चक्ख महासिरि-देवय ।।
पेक्खन्तहँ णरवर-सघायहुँ । भूगोयर-विज्जाहर-रायहुँ ।।
घित्त माल दससन्दण-णामहोँ । मणहर-गइएँ रहएँ ण कामहोँ ।।[3]

यहाँ स्वयभू दो उपमाओ से कैकेई के सुकुमार सौन्दर्य की व्यजना कराते है । 'हस्तिनी पर आरूढ कैकेई ऐसे निकली, जैसे प्रत्यक्ष महालक्ष्मी ही हो' तथा 'दशरथ के गले मे मनोहर गति से माला डाल दी, जैसे रति ने काम को माला डाली हो ।' इन दोनो उपमानो से अपार सौन्दर्य तथा आकर्षण की सृष्टि स्वयभू ने कैकेई के चरित्र मे कर दी है ।

स्वयवर मे दशरथ का वरण कैकेई द्वारा हुआ देख 'हरिवाहन' ने 'पकडो, मारो' का घोष करके दशरथ के साथ युद्ध छेड दिया ।[4] वीर पिता की वीर-पुत्री होने के कारण, उस समय कैकेई भयभीत न होकर वीरत्व की प्रतिमा बन गई । उसने दशरथ के रथ के धुरे पर बैठ कर कुशल सारथी का कर्त्तव्य निर्वाह किया

केक्कइ धुरहिँ करेप्पिणु सारहि । तहिँ पयट्टु जहिँ सयल महारहि ।।[5]

राजा दशरथ के युद्ध-कौशल तथा कैकेई की बुद्धि से 'हरिवाहन' पराजित हुआ । इस कौशल के कारण दशरथ ने कैकेई से परिणय के पश्चात् 'वर' माँगने को कहा

---

[1] पउमचरिउ, २१।२।६–९ ।
[2] वही, २१।२।१० ।
[3] वही, २१।३।१–३ ।
[4] वही, २१।३।४–५ ।
[5] वही, २१।३।८ ।

परिणिय केक्कइ दिण्णु महा-वरु । चवइ अउज्झापुर-परमेसरु ॥
'सुन्दरि मग्गु मग्गु ज रुच्चइ' । सुहमइ-सुयएँ णवेप्पिणु वुच्चइ ॥

अत्यन्त शालीन, गरिमामयी, उच्चकुलोत्पन्न-सस्कार-युक्ता कैकेई ने कन्या का शील निर्वाह किया और दशरथ की वधू होने का गौरव यह कहकर रक्खा—'देव ! जब मैं माँगूँ, तब अपने सत्य का पालन करना ।'

कन्या कैकेई 'वधू' कैकेई बनकर दशरथ के साथ ऐश्वर्य-भोग करते हुए रहने लगी । कैकेई का कन्या रूप मे चित्रण सक्षिप्त अवश्य है, किन्तु कवि-प्रतिभा ने उस रूप मे कैकेई के शील, सौन्दर्य तथा वीरत्व जैसे गुणो का सूक्ष्म चित्रण सजीवता एव सफलता पूर्वक किया है ।

अजना—अजना का उल्लेख 'वाल्मीकिरामायण' मे हनुमान्-जन्म कथा के बाहर केवल एक बार आया, किन्तु इस उल्लेख वाला सर्ग निश्चितत प्रक्षिप्त है ।[3] 'महाभारत' मे अजना का कही कोई उल्लेख नही हुआ है ।[6] 'ब्रह्मपुराण' के ८४वे अध्याय मे अजना को अजनपर्वत के शिखर पर रहने वाले केसरी की अप्सरा-पत्नी बताया गया है, जो इन्द्र के शाप से पृथ्वी पर अवतरित हुई ।[4]

जैन-कवियो ने अजना के चरित्र को विशिष्ट रूप मे ग्रहण किया है, जिसके अनुसार उसे परित्यक्ता-परिणीता के रूप मे चित्रित किया गया है । विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे अजना की कथा तीन उद्देशो (अध्यायो) मे विस्तार से वर्णित हुई है, जिसके अनुसार—आदित्यपुर के राजकुमार पवनजय ने महेन्द्रपुर की राजकुमारी अजना से विवाह किया । विवाह से पूर्व ही अजना की सखी के मुख से अपनी निंदा सुनकर उसने बाइस वर्ष तक उसका त्याग किए रक्खा ।[5]

'भविष्यपुराण' मे अजना गौतम-कन्या है और शिव तथा मारुत ने उसके पति केसरी के मुख मे प्रविष्ट होकर अजना के साथ रमण किया । प्राचीनतम तथा मूल कथा के अनुसार हनुमान् वायु-पुत्र है और केसरी की पत्नी अजना से जन्म लेते हैं ।[7]

स्वयभू ने अजना की कथा तो जैन-कवि-परम्परा से ही ग्रहण की है, किन्तु इस चरित्र मे अनेक मौलिक उद्भावनाएँ उनकी निजी उपलब्धि हैं । स्वयभू ने अजना का परिचय देते हुए उसे राजा महेन्द्र तथा रानी मनोवेगा की कन्या कहा है । कन्या अजना एक दिन जब गेद खेल रही थी, तो पिता को उसके उभरते स्तन देख चिन्ता हुई कि 'कन्या किसे दूँ' और वह उपयुक्त वर खोजने चल दिया

---

[1] पउमचरिउ, २१।४।३-४ ।
[2] वही, २१।४।५ ।
[3] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ६५४ ।
[4] वही, पृ० ६६० ।
[5] विमलसूरि पउमचरिय, उद्देश, १५ से १८ की कथा ।
[6] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ६६३ ।
[7] वही, पृ० ६६७ ।

एत्तहे वि महिन्दु महिन्दु णामें । पुरवरें इच्छिय-अणुहुअ-कामें ।।
तहो हिययवेय णामेण भज्ज । तहें दुहियञ्जणसुन्दरी मणोज्ज ।।
किन्दुएण रमन्तिहे थण णिएवि । थिउ णरवइ मुहें कर-कमलु देवि ।।
उप्पण्ण चिन्त कहो कण्ण देमि । लइ वट्टइ गिरि-कइलासु णेमि ।।[1]

कन्या के यौवनागो की वृद्धि पिता के लिए कन्या के विवाह की चिन्ता का स्वाभाविक कारण है, किन्तु स्वयभू ने 'गेंद खेलने' की स्थिति लेकर कन्या की बाल-सुलभ अबोधता के साथ ही पिता की मर्यादा का चित्रण कर दिया है । मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक स्थिति का कुशल अकन यहाँ हुआ है । कन्या का विवाह तो पिता का नैतिक-सामाजिक दायित्व स्वयभू मानते हैं

कण्णा दाणु कहिं (?) तणउ जइ ण दिण्णु तो तुडिहि चडावइ ।
होइ सहावे मइलणिय छेय-कालें दीवय-सिह णावइ ।।[2]

अर्थात् कन्यादान क्यो ? इसलिए, यदि कन्याएँ किसी को न दी जाएँ, तो दोष लगा देती है । क्षयकाल की दीपशिखा की भाँति वे स्वभाव से मलिन होती है ।

स्वयभू कामशास्त्र तथा समाजशास्त्र का आधार लेकर ही कन्या का विवाह परमावश्यक मानते है, अन्यथा काम-तृप्ति हेतु कन्या व्यभिचार करेगी और कलक लगेगा ।

अजना के पिता उत्तम वर की खोज मे कैलाश गए, तो वही आदित्यपुर के राजा सपत्नीक अपने पुत्र पवनजय को लेकर आए । दोनो राजाओ मे परिचय हुआ और अजना को पवनजय के लिए माँग लिया गया

पल्हाएँ खेडु करेवि वुत्तु । 'तउतणिय कण्ण महुतणउ पुत्तु ।।
किण कीरइ पाणिग्गहणु राय' । त णिसुणें वि तेण वि दिण्ण वाय ।।[3]

अजना का पवनजय से तीसरे दिन विवाह करने का निश्चय कर दोनो राजा अपने-अपने घर लौट आये ।

स्वयभू ने यहाँ कामातिरेक से दग्ध पवनजय के अस्थिर चरित्र के साथ-साथ अजना के शील तथा मर्यादा का चित्रण करने के लिए कथा-क्रम को बढ़ाया है । पवनजय प्रतीक्षा नही कर पा रहा था, विरहाग्नि से दग्ध था ।[4] विश्वस्त मित्र प्रहसित के पूछने पर उसने अपने काम-वेग का वर्णन करके, अजना से भेट करने का उपक्रम करने को कहा । दोनो तपस्वी वेश मे अजना के निवास पर छिप कर पहुँचे । स्वयभू ने यहाँ अजना के कौमार्य, सौन्दर्य तथा आकर्षण का चित्रण किया है—किन्तु सूक्ष्म तथा आलकारिक शैली अपना कर ।

---

[1] पउमचरिउ, १८।३।४–७ ।
[2] वही, ६।३।६ ।
[3] वही, १८।४।७–८ ।
[4] वही, १८।५।१–८ ।

थिय जाल-गवक्खएँ दिट्ठ बाल । ण मयण-बाण-धणु-तोण-माल ॥
मारो वि मरइ विरहेण जाहें । को वण्णें वि सक्कइ रूवु ताहें ॥[1]

अर्थात् गवाक्ष के झरोखे मे बैठी बाला को देख कर लगा, मानो वह काम का धनुष-बाण-तूणीर हो। जिसके विरह मे काम स्वय मर रहा हो, उसके रूप का वर्णन कौन कर सकता है।

स्वयभू के इस वर्णन मे व्याज-स्तुति अलकार का माध्यम अजना के सौन्दर्य की सटीक व्यंजना में सफल हो गया है।

तभी अंजना की सखी मिश्रकेशी ने पवनजय के स्थान पर विद्युत्प्रभ की प्रशसा कर दी और पवनजय ने इसे अपना अपमान समझ कर अजना के प्रति दुर्भावना अपने मन मे पाल ली।[2] प्रात काल राजा नगर से जाने लगा, तो अंजना स्वाभाविकत अन-मनी हो उठी। यहाँ अबोध बालिका का मानसिक चित्र साकार हो उठा है, जिसमे यौवन के आगमन का मधुर सकेत भी झाँक रहा है

अञ्जणसुन्दरिहें तुरन्तएण । उम्माहउ लाइउ जन्तएण ॥
सचल्लइ पउ पउ जेम जेम । कम्पिज्जइ हियवउ तेम तेम ॥[3]

अनजाना भय बालिका को उन्मन बना रहा था। राजाओ ने अनुनय-विनय करके पवनजय को रोका। पवनजय ने मन मे सोच लिया—विवाह करके बारह वर्ष के लिए इसे छोड दूँगा। विडम्बना भाग्य की। उन्मन पवनजय ने अजना से विवाह कर लिया और बारह वर्ष के लिए उसका त्याग कर अलग रहने लगा

तो दुक्खु दुक्खु दुम्मिय-मणेण । किउ पाणिग्गहणु पहञ्जणेण ॥
थिउ वारह वरिसइँ परिहरेवि । णवि सुअइ आलवइ सुइणवे(?)वि ॥[4]

कन्या से वधू बन गई अजना, किन्तु पति सपने मे भी उसके साथ न बोलता था, न सोता था।

अजना के चरित्र मे कन्योचित शील, मर्यादा जैसे सामाजिक गुणो की प्रतिष्ठा यहाँ स्वंयभू ने कराई है।

वनमाला—वनमाला का उल्लेख प्रथमत जैन-रामकाव्य-परम्परा के सूत्रधार विमलसूरि ने 'पउमचरिय' के छत्तीसवे उद्देश मे 'वणमाला पव्व' शीर्षक से किया है। 'पउमचरिय' के अनुसार दशरथ की प्रव्रज्या तथा राम-लक्ष्मण के वनगमन के पश्चात् लक्ष्मण मे अनुरक्ता, वनमाला के विवाह का प्रस्ताव जब पिता ने उससे किया, तो-उसने लक्ष्मण को छोड अन्य से विवाह न करने का मन मे निश्चय कर लिया और 'वन देवता' की पूजा के बहाने वहाँ पहुँची, जहाँ राम-लक्ष्मण थे। वहाँ वह आत्म-

---

[1] पउमचरिउ, १८।६।७–८।
[2] वही, १८।७।१–६।
[3] वही, १८।८।६–७।
[4] वही, १८।६।१–२।

घात करने को जब तत्पर थी, तो लक्ष्मण ने उसे रोक लिया और विवाह करके उसे राम-सीता के पास ले आए। बाद मे वनमाला के पिता ने विधिपूर्वक लक्ष्मण के साथ उसका विवाह कर दिया।[1]

स्वयभू ने वनमाला के चरित्र मे भी मौलिकता ला दी है। वनमाला लक्ष्मण की वाग्दत्ता और जीवन्त नगर के राजा महीधर की सुन्दरी कन्या है। जब राम-लक्ष्मण वन चले गए, तो भरत ने महीधर को पत्रिका भेजी

'रज्जु मुएवि वे वि रिउ-मद्दण। गय वण-वासहों राम-जणद्दण ॥
को जाणइ हरि कद्दिउ आवइ। तहों वणमाल देज्ज जसु भावइ' ॥[2]

अर्थात् रिपु-मर्दन सम्राट् मर गए है, राम-लक्ष्मण वनवास मे चले गए हैं। कौन जाने कब आएँगे, आप वनमाला को जहाँ चाहे, दे दे।

स्वयभू द्वारा वनमाला के पिता को लिखाया गया भरत का 'पत्र' सामाजिक मर्यादा का पालक भी बन गया और वनमाला के लिए उद्दीपक भी। पिता के लिए कन्या का विवाह सर्वोपरि चिन्ता होती है। 'अब कन्या किसे दूँ? लक्षणो से युक्त लक्ष्मणवत् वर कहाँ से ढूंढ कर लाऊँ?'[3] वनमाला का पिता सोच रहा था।

अपने अन्त करण मे लक्ष्मण को वर-रूप मे प्रतिष्ठित करनेवाली कन्या वनमाला का प्रणयी मन इस पत्र की सूचना से टूक-टूक हो गया। नितान्त मनोवैज्ञानिक चित्रण स्वयभू ने वनमाला का किया है

तो एत्थन्तरें णयण-विसालएँ। एह वत्त ज सुय वणमालएँ ॥
आउलिहुय हियएण विसूरइ। दुक्खे महणइ व्व आऊरइ ॥
सिरें पासेउ चडइ मुहु सूसइ। कर विहुणइ पुणु दइवहों रूसइ ॥
मणु धुगुधुगइ देहु परितप्पइ। वम्महों ण कग्वत्ते कप्पइ ॥[4]

अर्थात् महान् दुख से हृदय दग्ध है। सिर घूमता है, मुख सूख रहा है। काम दग्ध करता है। मन धुक्-धुक् करता है, तप्त है, मानो कामदेव ही मारना चाहता हो।

कन्योचित शील के साथ-साथ वियोग का यह चित्रण स्वयभू की मौलिक उद्भावना है। हृदय मे कन्या जिसका वरण कर लेती है, उसे छोड अन्य से रमण करने से श्रेष्ठ है, प्राण त्याग देना—यह वनमाला के चरित्र का आदर्श है, जो स्वयभू प्रस्तुत करते है

---

[1] विमलसूरि पउमचरिय, उद्देश, ३६।

[2] पउमचरिउ, २९।२।५–६।

[3] जाय चिन्त मणे दुद्धरहों धरणीधरहों सिहि-गल-तमाल-घण-वण्णहों।
लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु त मुएँवि वरु मइँ दिण्ण कण्ण किं अण्णहों ॥
—वही, २९।२।९।

[4] वही, २९।३।१–४।

दोच्छिउ मेहु पणट्ठु णहगणें । पुणु वणमालएँ चिन्तिउ णिय-मणें ॥
किं पइसरमि बलन्तें हुआसणें । किं समुद्दें किं रण्णें सु-भीसणें ॥
किं विसु भुजमि किं अहि चप्पमि । किं अप्पउ करवत्तें कप्पमि ॥
किं करिवर-दन्तहिं उर भिन्दमि । किं करवालें हिं तिलु तिलु छिन्दमि ॥
किं दिस लघमि किं पव्वज्जमि । कहों अक्खमि कहों सरणु पवज्जमि ॥
अहवइ एण काइँ गमु सज्जमि । तरुवर-डालएँ पाण विसज्जमि ॥[1]

अर्थात् नभ मेघाच्छन्न है, वनमाला मन मे सोच रही है—मैं प्रज्वलित अग्नि मे प्रवेश कर लूं, या समुद्र या भीषण वन मे चली जाऊँ। विष खा लूं या सर्प से डसी जाऊँ या तलवार से कट जाऊँ। हाथी के दाँतो से वक्ष चिरा दूं या छुरी से तिल-तिल स्वय को कटवा डालूं। कही उड जाऊँ, कहो कहाँ जाऊँ ? अथवा किसी प्रकार जाकर वृक्ष की डाल से लटक कर प्राणो का विसर्जन कर दूं।

यह प्राणघात की भावना कन्या के शील तथा मर्यादा की रक्षा के लिए ही कवि व्यक्त कराना चाहता है। आदर्श की उच्चतम प्रतिष्ठा यहाँ दृष्टव्य है। आत्म-घात से पूर्व कन्या वनमाला का उद्गार भारतीय कन्या के गौरव की शाश्वत एव उच्चतम प्रतिष्ठा बन गया है

पुणु परिवायणु कियउ असोयहों। 'अण्णु ण इह-लोयहों पर-लोयहों ॥
जम्में जम्में मुअ-मुअहें स-लक्खणु। पिय-भत्तारु होज्ज महु लक्खणु' ॥[2]

अर्थात् साक्षी रहना अशोक, न इस लोक मे और न ही परलोक मे, मैं अन्य किसी का साथ करूँगी। जन्म-जन्म मे जब भी मिले, लक्ष्मण ही प्रिय पति के रूप मे मुझे मिले।

स्वयभू का नैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक आदर्श वनमाला के रूप मे उपर्युक्त पक्तियो मे साकार हो उठा है। सभी दिशाओ, ग्रहो, नक्षत्रो, नदियो, वनस्पतियो को साक्षी बना कर कन्या वनमाला प्राण त्यागने को तत्पर हो गई

वुच्चइ धीय महीहरहों दीहर-करहों वणमाल-णाम भय-वज्जिय।
लक्खण-पइ सुमरन्तियएँ कन्दन्तियएँ वड-पायवें पाण-विसज्जिय ॥[3]

क्या स्वयभू वनमाला को आत्मघात कर लेने देते ? नही, कवि भावना शून्य, प्राणहीन नही है। इस उच्चतम प्रेम का प्रतिदान मृत्यु नही,—केवल प्रणय ही हो सकता है। प्राणघात करती हुई वनमाला को उसके 'प्राण' मिल गए और लक्ष्मण ने सहसा आकर उसे अपने आलिगन मे भर लिया

एम भणेप्पिणु णयण-विसालएँ। असुअ-पासउ किउ वणमालएँ ॥
सों ज्जें णाइँ सइँ मम्भीसावइ। णाइँ विवाह-लील दरिसावइ ॥[4]

---

[1] पउमचरिउ, २६।४।१–६।
[2] वही, २६।५।२–३।
[3] वही, २६।६।६।
[4] वही, २६।७।१–२।

अपने मन-मीत लक्ष्मण को साकार समक्ष पाकर कृत-कृत्य हो उठी बाला वन-माला। हर्षातिरेक की भावपूर्ण मनोदशा स्वयम्भू की लेखनी से मूर्तिमान हो गई है.

त णिसुणेंवि महिहर-सुअएँ पुलइय-भुअएँ णड्डु जिह णच्चाविय णिय-मणु ॥
'सहल मणोरह अज्जु महु परिहूउ-सुहु (?) भत्तारु लद्धु ज लक्खणु' ॥[1]

प्राप्त मनोरथा, सफला प्रेयसी वनमाला को साथ लेकर लक्ष्मण राम-सीता के पास आए और कलत्र सहित राम की चरण-वन्दना की। राम ने वनमाला का वृत्तान्त सुना और लक्ष्मण का वनमाला से परिणय करा दिया।

वनमाला के पिता ने 'कन्या का अपहरण' हुआ समझ कर, राम-लक्ष्मण पर आक्रमण कर दिया और युद्ध होने लगा।[2] लक्ष्मण के कुल-गोत्र का समाचार पाते ही महीधर ने हथियार डालकर, गद्गद् कण्ठ से लक्ष्मण का सत्कार किया और सादर राम सहित उन्हे नगर मे ले आया। विधिपूर्वक लक्ष्मण से वनमाला का परि-णय-सस्कार सम्पन्न हुआ

सहुँ वणमालएँ महुमहणु परितुट्ठ-मणु ज वेइहें जन्तु पदीसिउ।
लोएँहिँ मगलु गन्तएँहिँ णच्चतएँहिँ जिणु जम्मणें जिह स इँ भू सिउ ॥[3]

कन्या वनमाला अपना मनचीता वर प्राप्त करके वधू बन गई। स्वयम्भू का यह पात्र नारी आदर्श की उच्चतम प्रतिष्ठा का परिचायक है। कन्या के सभी उदात्त गुण वनमाला मे चित्रित हो गये हैं।

चन्द्रनखा—'वाल्मीकि-रामायण' मे इस पात्र का नाम 'सूर्पनखा' है, जो रावण की बहन है। दानवेन्द्र विद्युज्जिह्व के साथ इसका विवाह हुआ तथा खर-दूषण भी इसके भाई थे। इसे मुख्यत कुटिला, कामुक राक्षसी के रूप मे चित्रित किया गया है। इसके विरूपीकरण की कथा भी 'वाल्मीकि-रामायण' मे है।[4]

जैन-काव्य-परम्परा मे सूर्पनखा का नाम 'चन्द्रनखा' रक्खा गया है। 'पउमचरिय' मे चन्द्रनखा रावण की बहन तथा खर दूषण की पत्नी है। उसके दो बलशाली पुत्र शबूक तथा सुन्द हैं।[5] पुत्र शबूक की मृत्यु पर विलाप करती हुई वह वन मे घूमती थी, तभी राम-लक्ष्मण पर कामासक्त हुई और उनके द्वारा ठुकराए जाने पर, स्वय ही विद्रूप होकर, रावण के पास पहुँच कर, राम-रावण-युद्ध का कारण बनी।

स्वयम्भू ने चन्द्रनखा का चरित्र ग्रहण तो किया जैन-परम्परा से ही, किन्तु अपनी प्रतिभा से उसे जीवन्त बना दिया। स्वयम्भू ने 'कन्या रूप' से ही उसे चित्रित

---

[1] पउमचरिउ, २६।७।६।

[2] वही, २६।८।८–६, २६।६।१–६ तथा २६।१०।१–६।

[3] वही, २६।११।६।

[4] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ४१६–२०।

[5] तत्थ य रक्खस वसे, उप्पणो रावणो तिखण्डवई।
बहिणी से चन्दणहा, तीए खरदूसणो क तो ॥
—विमलसूरि पउमचरिय, उद्देश, ४३।१६–१८।

किया और पारिवारिक वातावरण तथा संस्कारो के प्रभाव को उसके विकास की मनोवैज्ञानिक पीठिका बनाया है।

चन्द्रनखा का प्रथम दर्शन स्वयभू ने परिवार मे रहने वाली कन्या के रूप मे कराया। रावण के बल पराक्रम को जानकर मय तथा मारीच मदोदरी सहित रावण के भवन मे गए, तो रत्नाश्रव की सुन्दरी कन्या ने उनका यथोचित स्वागत किया

> चन्दणहि णिहालिय तेहिँ तेत्थु। 'परमेसरि कउ दहवयणु केत्थु' ॥
> त णिसुणेँवि णयणाणन्दणीएँ। वुच्चइ रयणासव-णन्दणीएँ ॥[1]

राजकुलोचित मर्यादा स्वयभू ने चन्द्रनखा के कन्या रूप मे रक्खी है और मय द्वारा 'परमेसरि' जैसे सबोधन का प्रयोग कराया है।

रावण अपने बल के आधिक्य से आए दिन कन्याओ का अपहरण करता रहता था। स्वयभू का कवि-न्याय सर्वथा सचेत होकर नवीन उद्भावना करता है। एक दिन वह सुरबाला तनूदरा का अपहरण करके लौट रहा था, तो कुल-भूषण खर-दूषण चन्द्रनखा का अपहरण कर ले गए

> गउ एक्क-दिवसेँ सुर सुन्दरिहेँ। जा अवहरणेण तणूयरिहेँ ॥
> ता हरेँ वि णीय कुल-भूसणेँहिँ। चन्दणहि ह(व?)रिय खर-दूसणेँहिँ ॥[2]

प्रसन्न मन रावण ने लौट कर चन्द्रनखा-अपहरण का समाचार सुना, तो क्रोध से रक्तिम नेत्र लिए खर-दूषण का पीछा करने चला। मदोदरी ने उसे रोका और नैतिक-आचार का शाश्वत प्रश्न उससे पूछा

> परमेसर कहोँ वि ण अप्पणिय। जिह कण्ण तेम पर-भायणिय ॥[3]

अर्थात् परमेश्वर, सोचो तो, जैसी अपनी कन्या, क्या वैसी ही पराई बहन (कन्या) नही होती ?

कितना सटीक कवि-न्याय है स्वयभू का। कन्या के कुमारीत्व की सर्वोच्च प्रतिष्ठा कराते है यहाँ स्वयभू। कन्या पराया धन है, उसे घर रखना शोभा नही देता। अत उसका ससम्मान पाणिग्रहण करना ही सामाजिक मर्यादा है, इसी को पाल कर चन्द्रनखा का विवाह कर दीजिए—यह मन्त्रणा रावण को मदोदरी ने दी।[4]

रावण ने चन्द्रनखा का विवाह 'खर' से करके उसका राज्याभिषेक कर दिया

> तेहिँ विवाहु किउ खरु रज्जेँ थिउ अणुराहहेँ विज्ज-सहिउ।
> वणेँ णिवसन्तियहेँ वय वन्तियहेँ सुउ उप्पण्णु विराहिउ ॥[5]

---

[1] पउमचरिउ, १०।१।४–५।

[2] वही, १२।३।२–३।

[3] वही, १२।४।४।

[4] जइ आण-वडीवा होन्ति पुणु। तो घरेँ अच्छन्तिएँ कवणु गणु ॥
पट्ठवहि महन्ता मुएँ वि रणु। कण्णहेँ करन्तु पाणिग्गहणु ॥ —वही, १२।४।६–७।

[5] वही, १२।४।६।

कन्या चन्द्रनखा वधू बन गई। स्वयभू ने चन्द्रनखा को कन्या रूप मे सभवत इसीलिए चित्रित किया है, ताकि वे 'कन्या-अपहरण' के रावण के कुकृत्य के प्रति अपने 'कवि-न्याय' का प्रयोग कर सके। स्वयभू की यह सर्वथा मौलिक उद्भावना है। अन्यत्र चन्द्रनखा का 'कन्या रूप' मे चित्रण बहुत ही कम हुआ है।

लका-सुन्दरी—इस पात्र का उल्लेख 'वाल्मीकि-रामायण' के एक प्रक्षेप मे 'लका देवी' राक्षसी के रूप मे हुआ है। वहाँ इमे हनुमान्-युद्ध मे पराजय मिलती है। यही भविष्यवाणी करती है कि राक्षसो का विनाश हो जाएगा।[1]

जैन-परम्परानुसार लका-सुन्दरी वीर राक्षस वज्रमुख की कन्या है, जो हनुमान् द्वारा अपने पिता का वध हुआ देखकर उससे युद्ध करती है। हनुमान् उसके सौन्दय पर मुग्ध है, तो लका-सुन्दरी हनुमान् के शौर्य-पराक्रम पर, परिणामत दोनो परिणय-बधन मे बँध गए।[2]

परवर्ती कवि केशव ने 'रामचन्द्रिका' मे इसी स्वरूप को लिया है और उसे सुन्दरी चित्रित किया है

तजि देह भई तब ही वर नारी[3]

स्वयभू ने जैन-परम्परा का अनुगमन करते हुए लका-सुन्दरी को पितृ-भक्ता, सुन्दरी तथा वीर बाला के रूप मे चित्रित किया है। हनुमान् द्वारा युद्ध मे अपने पिता वज्रायुध के वध का समाचार मिलने पर लका-सुन्दरी पितृ-शोक से व्याकुल हो उठती है।

लका-सुन्दरी का यह करुण विलाप 'शोक' स्थायी भाव की व्यजना कराता है। तभी लका-सुन्दरी की सखी ने उसे धनुष-बाण देकर पिता-वध के प्रतिकार की प्रेरणा दी। शोक-भाव तुरन्त 'उत्साह' स्थायी भाव मे बदल गया और स्वयभू की मानस-कन्या लका-सुन्दरी वीर बाला बन गई

त णिसुणेप्पिणु कुइय किसोयरि।
चडिय महारहे लकासुन्दरि ॥ तेन तेन तेन चित्ते ॥
धणुहर-हत्थिय बाणुग्गाविरि ।
सहुँ सुर-चावेँण ण पाउस-सिरि ॥ तेन तेन तेन चित्ते ॥[4]

वीर वेश मे सजकर, धनुष बाण धारण कर, रथ पर सवार वह कन्या लका-सुन्दरी अत्यन्त प्रचण्ड वेग से रण-भूमि को चल पडी। भीषण वातावरण हो गया। रण-भूमि मे पहुँचकर उस वीर बाला ने पराक्रमी हनुमान् को ललकारा, मानो क्रुद्ध शेरनी ने शेर को ललकारा हो

---

[1] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ५०१।

[2] विमलसूरि पउमचरिय, ५२।१२–१३, १८–१९ तथा २२।

[3] महाकवि केशवदास रामचन्द्रिका (१३ ४४)।

[4] पउमचरिउ, ४८।८।१–२।

हक्कारिउ रणे हणुवन्तु तीएँ । पचाणणु जिह पचाणणीएँ ॥
मुह-कुहर-विणिग्गय-कडुअ-वाय । 'वलु वलु दहवयणहो कुद्ध-पाय ॥
ज हय आसालिय णिहउ ताउ । त जुज्झु अज्जु खय-कालु आउ' ॥[1]

हनुमान् ने लका-सुन्दरी के 'कुमारीत्व' का ध्यान करके उससे युद्ध करने की अनिच्छा प्रकट की, तो इसे अपने 'कन्यात्व' का अपमान जानकर, लका-सुन्दरी वीरत्वदर्प से भर उठी और उसने अपने पराक्रम का उद्घोष करते हुए कहा—क्या चिगारी जला नही देती ? क्या विष-वृक्ष की लता मार नही देती ? क्या रात्रि सूर्य को प्रतिहत नही करती ? और व्यग्य का तीखा बाण छोड दिया उसने हनुमान् पर

जइ एत्तिउ मणे अहिमाणु तुज्झु । तो किं आसालिहे दिण्णु जुज्झु ॥[2]

लका-सुन्दरी के इस व्यग्य से हनुमान् तिलमिला उठा और उसने तीरो की वर्षा करके आकाश को ढक दिया । तीरो की वर्षा दोनो ओर से होने लगी और परस्पर तीर कटने लगे । लका-सुन्दरी ने खुरपा चलाकर हनुमान् के धनुष को काट दिया

ते तिक्ख-खुरुप्पें दुज्जएँण । पडिवक्ख-मडप्फर-भजएँण ॥
गुणु छिण्णु विणासिउ चाउ किह । मिच्छत्तु जिणिन्दागमेंण जिह ॥[3]

भयकर युद्ध हनुमान् और लका-सुन्दरी मे हो रहा था । वार और प्रतिवार हो रहे थे । दोनो ही परम वीर, निडर तथा युद्ध-कुशल थे । युद्ध प्रचण्ड था, जय-पराजय मानो आते हुए डर रही थी ।[4]

स्वयभू की कवि-प्रतिभा सजग है और इस परम पराक्रमी युगल को सम्मिलित विजय देने की कामना उसने कर ली । प्रचण्ड 'रौद्र' भाव सहसा 'रति' मे परिवर्तित हो उठा और विष बाणो की परिणति 'काम-बाण' मे हो गई

जिह जिह मारुइ समरें ण भज्जइ ।
तिह तिह कण्ण णिरारिउ रज्जइ ॥ तेन तेन तेन चित्ते ॥
वम्मह-वाणेंहिं विद्ध उरत्थले ।
कह वि तुलग्गेंहिं पडिय ण महियले ॥ तेन तेन तेन चित्ते ॥[5]

लका-सुन्दरी का रोम-रोम रति भाव से पुलकित हो उठा । उसने मन-ही-मन हनुमान् की प्रशसा करते हुए, उसे पति रूप मे वरण कर लिया और अब प्रतिकार के निमित्त नही, प्रणय-निवेदन के लिए अपने प्रणय-प्रस्ताव सहित उसने हनुमान् की ओर बाण छोड दिया

---

[1] पउमचरिउ, ४८।८।६–८ ।

[2] वही, ४८।६।७ ।

[3] वही, ४८।१०।६ ।

[4] वही, ४८।११ तथा १२।१–६ ।

[5] वही, ४८।१३।१–२ ।

पइँ णाह परज्जिय हउँ समरें । वरें एवहिँ पाणिग्गहणु करें ॥
णिय-णामु लिहेप्पिणु मुक्कु सरु । ण दूउ विसज्जिउ पियहों घरु ॥[1]

अर्थात् हे नाथ ! मै समर मे पराजय स्वीकार करती हूँ । मुझसे विवाह करे । अपना नाम लिखकर बाण को छोडा, मानो प्रिय के घर दूत भेजा हो ।

वीरत्व का सम्मान करते हुए, हनुमान् ने लका-सुन्दरी के प्रणय-प्रस्ताव को स्वीकार किया और प्रगाढ आलिगन करके विवाह करने की स्वीकृति दे दी

सरु जोएँवि पवर-धणुद्धरीएँ । परिओसें लका-सुन्दरीएँ ॥
अवगूढु पवणि थिरथोर-बाहु । परिहूअउ विज्जाहर-विवाहु ॥[2]

विवाह के पश्चात् हनुमान् ने लका-सुन्दरी से सुखपूर्वक रमण किया । कन्या लका-सुन्दरी 'वधू' बन गई ।

स्वयभू ने प्रचण्ड रौद्र के मध्य रति भाव की जागृति की जो मौलिक उद्भावना की है, वह निश्चय ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सफल है । अन्यत्र लका-सुन्दरी का यह उदात्त रूप दृष्टिगत नही होता, अत इस पात्र के 'कन्या रूप' की श्रेष्ठ सर्जना का श्रेय स्वयभूदेव को ही है ।

गौण पात्र

कथा-क्रम के विकास तथा प्रमुख नारी चरित्रो का विकास दिखाने के लिए स्वयभू ने अनेक ऐसे नारी-पात्रो की सर्जना की है, जो कन्या हैं । इनका या तो मात्र नामोल्लेख हुआ है अथवा सुविधानुसार सक्षेप मे चरित्र-चित्रण भी कर दिया गया है।

अनगकुसुम—यह पात्र 'पउमचरिय' के अनुसार रावण की बहन चन्द्रनखा की पुत्री है, जिसका विवाह हनुमान् से किया जाता है ।[3] इसी परम्परा को स्वयभूदेव ने स्वीकार किया है और अनगकुसुम को 'खर की व्रत पालनेवाली' कन्या के रूप मे सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है

पुज्जिउ पवण-पुत्तु दहगीवें । दिज्जइ पउमराय सुग्गीवें ॥
खरें ण अणङ्गकुसुम वय-पालिणि । णल-णीले हिँ धीय सिरिमालिणि ॥[4]

रावण के द्वारा सीता-हरण करने तथा अपने भाई विभीषण का अपमान करने के पश्चात् यह जानने की चेष्टा की गई कि राम की सेना मे कौन वीर है । तब हनुमान् का नाम 'अनगकुसुम' के पति के रूप मे लिया गया

का वि अणङ्गकुसुम वलवन्तहों । दिण्णी खरेण धीय हणुवन्तहों ॥[5]

कन्या रूप मे अनगकुसुम का यही चरित्र स्वयभू मे प्राप्त होता है ।

---

[1] पउमचरिउ, ४८।१३।९ ।
[2] वही, ४८।१४।३–४ ।
[3] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ६५१ तथा पउमचरिय, उद्देश ८५ ।
[4] पउमचरिउ, २०।१२।८–९ ।
[5] वही, ४२।१२।६ ।

कनकमाला—यह कन्या परम्परा से प्राप्त चरित्र न होकर स्वयभू की मौलिक सृष्टि है, जो पृथ्वीपुर के राजा पृथु तथा रानी अमृतमती की अत्यन्त सुन्दरी कन्या है। राम के पुत्र लवण के लिए उसके मामा ने कनकमाला को माँगा

पट्ठविय महन्ता तेण तासु। पिहिमी-पुरवरें पिहु-पहुहें पासु ॥
दे देहि अमयमइ-तणिय बाल। कमणीय-किसोयरि कणयमाल ॥[1]

यहाँ कवि ने 'अमृतमयी, कमनीय, किशोरी' विशेषणो द्वारा सक्षेप मे कनकमाला की सुन्दरता को व्यजित किया है।

कनकमाला के पिता ने बिना कुल-शील-गोत्र जाने हुए अपनी कन्या देने मे असमर्थता प्रकट की।[2] इसे लवण के मामा ने अपना अनादर समझा और क्रोध मे भर कर कनकमाला के पिता पर आक्रमण कर दिया। युद्ध होने लगा और तब लवण के कुल 'दससन्दण-णन्दण-णन्दणेहिँ' का पता चलते ही राजा पृथु ने क्रोध छोड़कर लवण के साथ कनकमाला के पाणिग्रहण की प्रार्थना की

पिहु-पत्थिउ चलणेहिँ पडिउ ताहँ। 'रूसेवउ णउ अम्हारिसाहँ ॥
लइ लवण तुहारी कणयमाल . . . '॥[3]

और आदर-सत्कार पूर्वक, नगर मे आकर धूमधाम से लवण के साथ कनकमाला का विवाह हो गया। स्वयभू ने इस पात्र के द्वारा 'कन्या' के विवाह से पूर्व वर के कुल-शील-गोत्र को जानने की सामाजिक तथा पिता की नैतिक मर्यादा का कुशलतापूर्वक चित्रण किया है, जो उनकी मौलिकता है।

तरगमाला—कनकमाला की बहन जो पिता द्वारा लवण के भाई अकुस को विवाह मे दी गई

लइ लवण तुहारी कणयमाल। मयणकुम तुहु मि तरगमाल ॥[4]

इस नारी-पात्र का कन्या रूप मे केवल इतना ही उल्लेख कवि स्वयभू ने 'पउमचरिउ' मे किया है।

श्रीमाला—स्वयभू से पूर्व इस नारी-पात्र की परम्परा राम-काव्य मे अन्यत्र प्राप्त नही है। विशेषत 'पउमचरिय'[5] मे श्रीमाला का उल्लेख प्रथम बार हुआ है। स्वयभू ने श्रीमाला का प्रथम परिचय देते हुए उसे विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे स्थित आदित्य नगर के राजा विद्यामन्दर की पत्नी वेगमती की कन्या कहा है। श्रीमाला अत्यन्त सुन्दर तथा कमनीया है

---

[1] पउमचरिउ, ८२।२।१-२।

[2] कुल-सील-कित्ति-परिवज्जियाहँ। को कण्णउ देइ अलज्जियाहँ ॥ —वही, ८२।२।४

[3] वही, ८२।५।३-४।

[4] वही, ८२।५।४।

[5] विमलसूरि पउमचरियं, ६।१५८ से १७५ (स्वयवर की कथा विस्तार से है)।

विज्जामदरु णामेण राउ । वेयमइ अग्ग-महिसिएँ सहाउ ।।
सिरिमाल-णाम तहों तणिय दुहिय । इन्दीवरच्छि छण-चन्द-मुहिय ।।
कयली-कदल-सोमाल वाल । सा परएँ पिवेसइ कहों वि माल ।।[1]

श्रीमाला का स्वयवर हो रहा है, यह सुनकर दो बधु—किष्किंध तथा अंधक भी आदित्य नगर मे पहुँच गए, जहाँ अनेक विद्याधर विद्यमान थे। स्वयवर के स्थान पर सुन्दर मण्डप थे, जिन पर राजकुमार आदि बैठे थे, मणि-रत्नों से दीप्त, गायिकाओं के कोमल सगीत से मुखर उस स्वयवर-मण्डप मे सभी श्रीमाला के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।[2]

श्रीमाला एक छोटी-सी हथिनी पर बैठकर मण्डप मे आई। उसके सौन्दर्य की सीमा नही थी। मेघो मे बिजली-सी, प्रसाधित-देह चन्द्रलेखा-सी जान पडती थी

सिरिमाल ताम करिणिहें वलग्ग । ण विज्जु महा-घण-कोडि लग्ग ।।
सयलाहरणालकरिय-देह । ण णहें उम्मिल्लिय चन्द-लेह ।।[3]

हथिनी पर आगे बैठी दूती कन्या श्रीमाला को सभी राजकुमारो का सम्यक् परिचय देती हुई आगे बढ रही थी। श्रीमाला ने कुमार किष्किंध के समीप पहुँच कर उसके गले मे जयमाला डालकर वरण कर लिया

किक्किन्धहों घल्लिय माल ताएँ । ण मेहेमरहों सुलोयणाएँ ।।
आसण्ण परिट्ठिय विमल-देह । ण कणयगिरिहें णव-चन्दलेह ।।[4]

अर्थात् श्रीमाला ने किष्किंध के गले मे माला डाल दी, मानो मेघेश्वर को सुलोचना ने पहनाई हो। समीप बैठी उसकी विमल देह ऐसी लग रही थी, मानो स्वर्ण-पर्वत पर चन्द्र रेखा हो।

इस प्रकार श्रीमाला का विवाह किष्किंध से हो गया। एक अन्य श्रीमाला[5] का उल्लेख भी नल-नील द्वारा हनुमान् को विवाह मे दिये जाते समय हुआ है, वह कोई अन्य पात्र प्रतीत होती है। श्रीमाला के चरित्र द्वारा स्वयभू ने कन्या को वर के चयन की तत्कालीन स्वतन्त्रता का उल्लेख किया है, जो जैनागमो के द्वारा पुष्ट होता है।[6]

कमलावती—यह पात्र परम्परा से प्राप्त न होकर स्वयभूदेव की स्वतन्त्र सर्जना है। विजयार्ध श्रेणी मे कचनपुर के राजा मेघधर की कन्या है कमलावती

---

[1] पउमचरिउ, ७।१।३–५।
[2] वही, ७।२।१–६।
[3] वही, ७।३।१–२।
[4] वही, ७।४।१–२।
[5] णल-णीले हिं दीय सिरिमालिणि। —वही, २०।१२।६
[6] कन्याएँ विवाह करने या न करने के विषय मे स्वतन्त्र थी पिता पुत्री से विवाह की स्वीकृति ले, यह आवश्यक हो गया था।
—डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमो में नारी जीवन, पृ० १२

किं ण मुणहि धण-कचण पउरु । विज्जाहर-सेढिहिँ मेहउरु ।।
तहिँ पुप्फोत्तर-विज्जाहिवइ । तहोँ तणिय दुहिय हउँ कमलमइ ।।[1]

एक दिन कमलावती चामरधारिणी स्त्रियो के साथ कही घूमने जा रही थी कि उसकी दृष्टि कुमार श्रीकण्ठ पर पडी और उसने नेत्र-कमलो की वरमाला श्रीकण्ठ को पहना दी

छुडु छुडु उच्चेल्लेँ वि णीसरिय । चमरहरिहि णारिहिँ परियरिय ।।
तहि अवसरेँ धवल-विसालाइँ । वन्देप्पिणु मेरु-जिणालइँ ।।
स-विमाणु एन्तु णहेँ णियवि सइँ । घत्तिय णयणुप्पल-माल मइँ ।।[2]

इस प्रकार श्रीकण्ठ से कमलावती का विवाह हो गया । उक्त कथा सुना कर कमला ने अपने भाई कीर्तिधवल तथा श्रीकण्ठ को युद्ध करने से रोक लिया ।

तिलककेशा—यह नारी-पात्र भी स्वयभू की स्वतन्त्र सर्जना है । तिलककेशा बलशाली सुलोचन की कन्या तथा सहस्राक्ष की बहन है

समु मेल्लइ वेत्तालहोँ जावेँहिँ । तिलयकेस सम्पाइय तावेँहि ।।
धीय सुलोयणाहोँ वलवन्तहोँ । वहिणी सहोयरि दससयणेत्तहोँ ।।[3]

वन मे तिलककेशा उस सरोवर पर पहुँची, जहाँ राजा सगर भटक कर, विश्राम कर रहा था । तिलककेशा राजा सगर पर मुग्ध हो गई और मन ही मन उसने उसका वरण कर लिया

विद्धि काम-सरेहिँ एक्कु वि पउ ण पयट्टइ ।
णाइँ सयम्वर-माल दिट्ठि णिवहोँ आवट्टइ ।।[4]

सुकन्या तिलककेशा के सगर पर मुग्ध होने का समाचार पाकर सहस्राक्ष झूम उठा कि 'ज्योतिषियो का कथन सच निकला, चक्रवर्ती सम्राट् सगर ही आ गए लगते है' ।[5]

तिलककेशा का भाई सहस्राक्ष राजा सगर के पास गया और आदरपूर्वक उसने अपनी बहन का विवाह उनसे कर दिया

सिरेँ करयल करेवि जोक्कारिउ । दिण्ण कण्ण पुणु पुरेँ पइसारिउ ।।[6]

और तदनन्तर राजा सगर तिलककेशा के साथ अयोध्या नगरी आ गए ।

कैकसी—यह परम्परा से प्राप्त नारी-पात्र है । 'वाल्मीकि-रामायण' के नवम् सर्ग मे कथा है—कैकसी विश्रवा (पउमचरिउ मे रत्नश्रवा) के पास उस समय पहुँची, जब वे अग्नि-होत्र कर रहे थे, अत उन्होने कहा कि तुम्हारे पुत्र दारुण-क्रूर-कर्मी

1 पउमचरिउ, ६।२।२–३ ।
2 वही, ६।२।४–७ ।
3 वही, ५।४।६–७ ।
4 वही, ५।४।६ ।
5 वही, ५।५।५ ।
6 वही, ५।५।८ ।

राक्षस होंगे। कैकसी की विनय पर उन्होंने कहा कि तुम्हारा अन्तिम पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा—यही पुत्र विभीषण था।[1]

विमलसूरि द्वारा रचित 'पउमचरिय' मे कैकसी कौतुक मगल नगर के राजा व्योम बिन्दु की महिषी नन्दवती की कन्या तथा कौशिकी की बहन बताई गई है

अत्थि त्ति वोम बिन्दू, नन्दवई सुन्दरी तस्स ॥
तीए गब्भुप्पन्नाउ दोण्णि कन्नाउ रूववन्ताओ ।
कोसिय-केकसियाओ, अह कोउय मगले नयरे ॥[2]

व्योम बिन्दु ने अपनी कन्या कैकसी का विवाह रत्नाश्रव से कर दिया।

स्वयभू ने जैन-परम्परा को ही पल्लवित किया है। सुमाली का सुन्दर पुत्र रत्नाश्रव विद्या-सिद्धि हेतु पुष्प-वन मे गया, जहाँ उसे व्योम बिन्दु नामक विद्याधर ने देखा और अपनी पुत्री के लिए उसे पति रूप मे स्वीकार कर लिया तथा तपस्या मे रत रत्नाश्रव के पास कैकसी को छोड कर वह अपने नगर लौट गया।

विद्या-सिद्धि करने पर रत्नाश्रव ने कैकसी को ऐसा देखा, मानो इन्द्र ने इन्द्राणी को ही देखा हो। कैकमी का सौन्दर्य अतुलनीय था—'वर्तुल स्तन, सुन्दर नितम्ब तथा नीलोत्पल सी आँखे'।

सु-णियम्बिणि परिचक्कलिय-थणि। इन्दीवरच्छि पकय-वयणि ॥[3]

परिचय पूछने पर कैकसी ने रत्नाश्रव को सपूर्ण वृत्तान्त बताया और कहा कि पिता ने उसका विवाह रत्नाश्रव से कर दिया है। कैकसी के मुख से यह सब वृत्तान्त सुनकर रत्नाश्रव ने कैकसी से विवाह कर लिया

कोक्काविउ सयलु वि वन्धुजणु। सहुँ कण्णएँ किउ पाणिग्गहणु ॥[4]

और इस प्रकार कन्या कैकसी वधू बन गई। स्वयभूदेव ने इसके रूप-चित्रण मे मौलिकता की अनूठी उद्भावना की है।

अनामा कन्याएँ—कथा-विकास के क्रम मे स्वयभूदेव ने अनेक कन्याओ के उल्लेख यत्र-तत्र बिना नाम लिए हुए भी 'पउमचरिउ' मे किए हैं।

(१) राजा मरु को अपने अधीन बना कर रावण ने उसकी **कन्या** से विवाह कर लिया।[5]

(२) मधुपुर के राजा मधु की **कन्या** से भी रावण ने विवाह कर लिया।[6]

(३) रावण द्वारा इन्द्र पर आक्रमण करने पर, इन्द्र के दूत ने रावण से

---

[1] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ५४१।
[2] पर्व-७।५३, ५४ तथा ६७।
[3] पउमचरिउ, ६।२।२।
[4] वही, ६।२।८।
[5] वही, १५।६।१।
[6] वही, १५।६।५।

सन्धि-प्रस्ताव में कहा कि इन्द्र की रूप मे सबसे अच्छी रूपवती कन्या से विवाह कर लका की विजय यात्रा करें ।[1]

(४) शशिवर्धन नामक राजा की १८ चन्द्रमुखी, कमलनयनी, कोकिलकण्ठी कन्याएँ थी । इनमे से १० भरत-शत्रुघ्न को तथा ८ लक्ष्मण को विवाह मे दे दी गईं ।[2]

(५) द्रोण की सुन्दरी कन्या लक्ष्मण को विवाह मे दी गई ।[3]

(६) राजा वज्रकर्ण तथा सिंहोदर ने कुमार लक्ष्मण से विनय करते हुए कहा—नव-कुवलय-दल से दीर्घ नयनो वाली, हाथी की गति तथा चन्द्रमा समान मुख वाली, उच्च ललाट पर सुन्दर तिलक से युक्त, सौभाग्य-भोग-गुण की भण्डार-रूपा, विभ्रम तथा ऋद्धि युक्त देह वाली, क्षीण-कटि एव पुष्ट उरोजो वाली, अभिनव रूप, लावण्य, वर्ण से सम्पन्न इन तीन सौ कन्याओ को आप ग्रहण कीजिए ।

अहिणव-रूवहुँ लायण्ण-वण्ण-सपुण्णहुँ ।
लइ भो लक्खण वर तिण्णि सयइँ तुहुँ कण्णहुँ ।।[4]

लक्ष्मण की अस्वीकृति पर सभी कन्याओ का मन खिन्न हो गया उन्हे पाला मार गया । इस समस्त स्थिति को देखते हुए, इन सभी को लक्ष्मण ने पत्नी रूप मे स्वीकार कर लिया ।

(७) राम को सीता-वियोग मे दु खी जानकर सुग्रीव ने अपनी तेरह रूपवती, सुन्दर कन्याएँ उन्हे देने का प्रस्ताव किया, जिसे राम ने नही माना ।

त णिसुणेंवि वलएवें वुच्चइ ।
आयहुँ मज्झे ण एक्क वि रुच्चइ ।।
जइ वि रम्भ अह होइ तिलोत्तिम ।
सीयहें पासिउ अण्ण ण उत्तिम ।।[5]

(८) सेतु और समुद्र की पाँच कन्याएँ—सत्यश्री, कमलाक्षी, विशाला, रत्नचूला तथा गुणमाला लक्ष्मण को अर्पित की गईं ।[6]

उपर्युक्त कन्या-चित्रण नितान्त स्थूल है और कथा विकास मे सहायक हुआ है, यही इसका महत्त्व है ।

पुष्परागा—विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे इस पात्र का नाम 'पद्मरागा' है, जो सुग्रीव की कन्या है । इसका विवाह हनुमान् से होता है ।[7]

स्वयभू ने इसे पुष्परागा या पकजरागा कहा है । सुग्रीव ने अपनी इस कन्या को हनुमान् को विवाह मे दिया था

---

[1] पउमचरिउ, १६।१०।६ ।
[2] वही, २१।१४।१-४ ।
[3] वही, २१।१४।४ ।
[4] वही, २६।३।१३ (पउमचरिय, पर्व, ३३।१३९ पर समान उल्लेख है) ।
[5] वही, ४४।११।७-८ (वही, पर्व, ४७।५३-५५ पर समान उल्लेख है) ।
[6] वही, ५६।१३।१-४ ।
[7] उद्देश ८५ ।

पुज्जिउ पवण-पुत्तु दहगीवे । दिज्जइ पउअराय सुग्गीवें ॥[1]

अन्यत्र एक स्थान पर इसका नाम पकजरागा भी कहा गया है

सा पकयराय अभगयहों । सुग्गीवहों सुअ सस अगयहों ॥[2]

जितपद्मा—'पउमचरिय' मे यह नारी-पात्र क्षेमाजलीपुर के राजा शत्रुदमन तथा पत्नी कनकाभा की कन्या है । इसे 'विष-कन्या' कहा गया है, जिसके विवाह से पूर्व शक्ति-प्रहार झेलना होगा, यह शर्त लगी हुई है ।

सो भणइ सत्तुदमणो, राया भज्जा य तस्स कणयाभा ।
जियपउमा वि य धूया, विसकन्ना सा इह नयरे ॥
जो सहइ सत्ति पहर, इमस्स रायस्स कढिण कर मुक्क ।
तस्सेसा जिय पउमा, देह च्चिय कि तुमे न सुय ॥[3]

लक्ष्मण ने शक्ति-प्रहार सहकर जितपद्मा का वरण किया ।

स्वयभूदेव ने इस कन्या के रूप-चित्रण मे कुछ नवीनता उत्पन्न की है । उन्होने इसका परिचय इस प्रकार कराया है—क्षेमाजली नगर के राजा अरिदमन की कन्या जितपद्मा ने अनेक भट-समूहो का सहार करा दिया था, और अभी भी कुमारी ही बनी हुई थी । जो उससे विवाह करने आया, मर गया और इसीलिए हड्डियो के ढेर यत्र-तत्र पड़े हुए हैं ।

अरिदमण-धीय जियपउम-णाम । भड-थड-सघारणि जिह दुणाम ॥
सा अज्ज वि अच्छइ वर-कुमारि । पच्चक्ख णाइँ आइए कु-मारि ॥
तहें कारणें जो जो मरइ जोहु । सो घिप्पइ त हड्डइरि एहु ॥[4]

दुर्निवार लक्ष्मण ने जब यह सब सुना, तो पराक्रमपूर्वक अरिदमन के नगर मे प्रवेश करके राजा से शक्ति-प्रहार करने को कहा । अरिदमन ने एक-एक करके पाँच शक्तियाँ छोडी, जिन्हे लक्ष्मण ने शौर्यपूर्वक पकड लिया ।

एत्थन्तरें कण्हे जय-जस-तण्हे धरिय सत्ति दाहिण-करेण ।
सकेयहों ढुक्की थाणहों चुक्की णावइ पर-तिय पर-णरेण ॥[5]

जितपद्मा ने लक्ष्मण के शौर्य की सूचना सुनी और हर्षपूर्वक उसने लक्ष्मण को पति रूप मे वरण कर लिया । अरिदमन ने आदरपूर्वक अपनी कन्या लक्ष्मण को दे दी । तत्पश्चात् राम को आदर सहित नगर मे बुलाया गया और विधिपूर्वक जितपद्मा का विवाह लक्ष्मण के साथ सम्पन्न हुआ

जियपउम स-विब्भम पउम-णयण । पउमच्छि पफुल्लिय-पउम-वयण ॥
पउमहों पय-पउमेंहिँ पडिय कण्ण । तेण वि सु-पसत्थासीस दिण्ण ॥[6]

---

[1] पउमचरिउ, २०।१२।८ ।
[2] वही, ४५।५।६ ।
[3] उद्देश ३८।२७–२८ ।
[4] पउमचरिउ, ३१।५।६–८ ।
[5] वही, ३१।११।६ ।
[6] वही, ३१।१६।५–६ ।

लक्ष्मण अत्यन्त विलासपूर्वक जितपद्मा का भोग करते रहे। कन्या जितपद्मा ससम्मान वधू बन गई।

इस पात्र के माध्यम से भी स्वयभू का सकेत इसी ओर है कि शौर्यवान्, बलशाली, पराक्रमी वर की कामना अपनी कन्या के लिए पिता किया करता था। वर के कुल-शील-गोत्र का पता आवश्यक रूप से करना पिता का कर्त्तव्य था।

विशल्या (अनंगसरा)—'वाल्मीकिरामायण' मे रावण की शक्ति से आहत लक्ष्मण को देखकर जब राम विलाप करने लगे, तब सुषेण के परामर्श पर 'विशल्याकरणी औषधि' लाने के लिए हनुमान् को भेजे जाने तथा औषधि आने पर लक्ष्मण के ठीक हो जाने का उल्लेख तीनो पाठो मे उपलब्ध है।[1]

विमलसूरि ने इस औषधि का 'पउमचरिय' मे मानवीकरण कर दिया है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर एक विद्याधर राम से कहता है कि द्रोणमेघ की कन्या विशल्या के स्नान-जल से ही लक्ष्मण स्वस्थ हो सकते हैं। तब हनुमान्, भामण्डल तथा अगद विशल्या को लाते हैं। स्वस्थ होकर लक्ष्मण विशल्या से विवाह करते हैं।[2]

स्वयभू ने जैन-परम्परा को ग्रहण करके भी अपनी नवीन उद्भावना करके पूर्व-*जन्म मे 'अनगसरा' के रूप मे विशल्या को लक्ष्मण की परिणीता पत्नी दिखाया है*—पूर्व विदेह मे पुडरीकिणी नगर के राजा त्रिभुवन आनन्द की उन्नत-पयोधरा, सौभाग्य की राशि तथा सौन्दर्य की निधि कन्या अनगसरा थी। यही अनगसरा मरने पर विशल्या बनी

एह वि मरेँवि अणगसर। उप्पण्ण विसल्ला-सुन्दरि ॥[3]

इसी विशल्या की कथा स्वयभू ने अपने 'पउमचरिउ' मे मौलिक रूप मे ग्रहण की। अपनी काव्यप्रतिभा से स्वयभूदेव ने विशल्या की कथा को अत्यन्त रुचिकर एव मनोरम बना दिया है।

जब लक्ष्मण को युद्ध के समय रावण द्वारा फेकी हुई शक्ति लग गई और राम लक्ष्मण को मूर्छित पडा देखकर विलाप करने लगे, तब किसी ने कहा

जोइहिँ वुच्चइ ससिमुहिहेँ। वरहिण-कलाव-धम्मेल्लहेँ।
जीवइ लक्खणु दासरहि। पर ण्हवण-जलेण विसल्लहेँ ॥[4]

चन्द्रमा के समान मुख वाली, धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली विशल्या के स्नान जल से दशरथ के पुत्र पराक्रमी लक्ष्मण जीवित हो सकते हैं।

उपस्थित समूह मे किसी ने बताया—राजा द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या के स्नान-जल से अनेक व्याधियाँ दूर हो गई। विशल्या का स्नान-जल अमृत समान है, यह तो राजा द्रोण ने स्वय कहा है आदि।

---

[1] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ५६५।
[2] पर्व ६४ तथा ६५।
[3] पउमचरिउ, ६८।१३।१०।
[4] वही, ६८।१।१०।

मम दुहियहें अमर-मणोहरिहें । इउ ण्हवणु विसल्ला-सुन्दरिहें ॥
विणु भन्तिएँ अमियहों अणुहरइ । जसु लग्गइ तासु वाहि हरइ ॥[1]

राजा द्रोण की कन्या विशल्या को यह सिद्धि कठोर तपस्या करने पर मिली है, यह महामुनि द्वारा बताया गया ।

सो मुणिवरु चउ-णाण-धरु । पणवेप्पिणु भरहे वुच्चइ ।
काइँ विसल्लएँ तउ कियउ । जें माणुसु वाहिएँ मुच्चइ ॥[2]

यहीं महर्षि द्वारा रहस्योद्घाटन किया गया कि विशल्या ने पूर्व-भव मे लक्ष्मण को पति रूप मे वरण किया था, इसीलिए इसका प्रभाव लक्ष्मण पर अब तक है ।

कैकेई स्वय जाकर विशल्या को उसके नगर से लाई ।[3] द्रोण ने सहसा कैकेई को देखकर हर्ष प्रकट किया और विशल्या को उसके साथ भेज दिया । कैकेई तो अपने घर आ गई और विशल्या वन मे ले जाई गई । विशल्या का विमान ज्यो-ज्यो समीप आ रहा था, प्रकाश फैलता जा रहा था ।[4] विशल्या के आते ही शक्ति लक्ष्मण के शरीर से निकल गई

ण विहाणु ण भाणु मणोहरीहें । उहु तेउ विसल्ला-सुन्दरीहें ॥
वल-जम्वव वे वि चवन्ति जाव । णीसरिय सरीरहों सत्ति ताव ॥[5]

राम सहित समस्त उपस्थित समूह ने विशल्या का अपूर्व अभिनन्दन किया । विशल्या को स्नान कराया गया और गध-जल राम को दिया गया । राम ने ज्यो ही इस गध-जल को लक्ष्मण के आहत शरीर पर छिडका, त्यो ही लक्ष्मण जीवित हो उठे

ता दुद्दम-दणु-णिद्दलण-दप्प । उव वयणु विसल्लहें तणउ वप्प ॥
जममुहहों जाएँ णीसारिओऽसि । लकहें विणासु पइसारिओऽसि ॥[6]

विशल्या अतीव सुन्दर, कमनीय तथा मनोहर लग रही थी । विशल्या का लक्ष्मण से पाणिग्रहण यज्ञ मत्रादि से सपन्न हुआ ।[7]

विशल्या का उक्त चित्रण स्वयभूदेव की विशिष्ट उपलब्धि है, जिससे कवि ने नारी-तप की शक्ति तथा पतिव्रत-धर्म की शक्ति का दिग्दर्शन सफलता से कराया है । विमलसूरि से स्वयभू बहुत आगे बढ गये हैं ।

---

[1] पउमचरिउ, ६८।४।६-७ ।
[2] वही, ६८।६।१० ।
[3] वही, ६९।१५।१-९ ।
[4] वही, ६९।१६।५-७ ।
[5] वही, ६९।१७।१-२ ।
[6] वही, ६९।२०।८-९ ।
[7] जाणेप्पिणु सव्वेंहिं रणगेंहिं । रुवासत्तउ महुमहणु ।
विण्णसु कियजलि-हत्थगेंहिं । 'करें कुमार पाणिग्गहणु' ॥
—पउमचरिउ, ६९।२१।१५

तरंगमती की तीन कन्याएँ—विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' में इन तीन कन्याओ के तप करने की कथा आई है। दधि-मुख द्वीप के ऊपर से लका जाते हुए हनुमान् ने दो मुनियो तथा तीन कन्याओ को वन मे जलते देखा और तुरन्त अपनी शक्ति से जल-वर्षा करके अग्नि शान्त कर दी। कन्याएँ हनुमान् के समीप आकर प्रशसा करने लगी, तब हनुमान् ने उनका परिचय पूछा। उन्होने स्वय को दधि-मुख नगर के राजा गधर्व की कन्या बताया और चन्द्रलेखा, विद्युत्प्रभा तथा तरगमाला नाम बताए। सहसगति को मारने वाले से हम विवाह करेंगी—यह सुनकर हनुमान् ने उन्हे राम के आगमन तथा राम द्वारा सहसगति के वध का समाचार सुनाया। इस पर कन्याओ के पिता ने उन्हे ले जाकर राम को विवाह मे दे दिया।[1]

स्वयभू ने इसी कथा का पल्लवन करते हुए दधि-मुख नगर के सम्राट दधि-मुख तथा पटरानी तरगमती को अनुपम सौन्दर्य तथा भोग का भण्डार कहा है। इसी तरग-मती की तीन सुन्दर कन्याएँ—चन्द्रलेखा, विद्युत्प्रभा तथा तरगमाला उत्पन्न हुई। इन तीनो पर 'अगारक' मुग्ध हो गया और प्रणय मे असफलता के कारण वह राजा दधि-मुख का विरोधी बन गया।

महामुनि कल्याणभूति ने पिता को बताया कि सहसगति को रण मे जीतने वाला तुम्हारी इन कन्याओ का पति होगा।[2]

महामुनि के मुख से यह सुनकर तीनो कन्याएँ तपश्चरण के निमित्त वन मे चली गई और विद्या-सिद्धि के लिए बैठ गई। उसी वन मे दो तपस्वी—भद्र तथा सुभद्र—भी तपस्या कर रहे थे।[3] किसी स्त्री-लपट ने 'अगारक' को तीनो कन्याओ के वन-गमन का समाचार दिया। वह रोष मे भरकर वन मे गया और 'मेरी नही तो अन्य की भी नही हो सकती' कहकर वन मे आग लगा दी और वन धू-धू कर जलने लगा।[4] हनुमान् ने जब आकाश मार्ग से मुनियो तथा कन्याओ को जलते देखा, तो वर्षा करके आग शान्त कर दी।[5] कन्याएँ प्रसन्न-चित्त मुनियो के समीप खड़े हुए हनुमत् की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा करने लगी। तब हनुमान् ने कन्या-वर्ग से परिचय पूछा और सब कुछ जानकर हनुमान् ने राम द्वारा 'सहसगति' के मरण की सूचना उन्हे देकर राम के पास भेजा।[6] राजा दधि-मुख ने अपनी तीनो कन्याओ को ले जाकर राम को समर्पित कर दिया

गम्पिणु भुवण-विणिग्गय-णाम हों। सुग्गीवें दरिसाविउ रामहों।
तेण वि कामिणि-थण-परिवड्डणु। दिण्णु स म भु एहिं अवरुण्डणु।।[7]

---

[1] पद्म ५१।१२–२० तथा २५–२६।

[2] पउमचरिउ, ४७।२।७–६।

[3] वही, ४७।४।८।

[4] वही, ४७।५।१–६।

[5] वही, ४७।७।१–६।

[6] वही, ४७।६।६–८।

[7] वही, ४७।१०।६।

स्वयंभूदेव द्वारा चित्रित नारी-पात्रो के कन्या रूप का अनुशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि उनकी दृष्टि कन्या के शील, मर्यादा, सुकुमारता, अबोधता तथा दृढ निश्चय जैसे गुणो की ओर रही है और इन सबका प्रकाशन उन्होंने यत्र-तत्र प्रयत्नपूर्वक किया भी है। समग्र रूप से देखने पर प्रतीत होता है कि स्वयंभूदेव कन्याओ के सौन्दर्य-चित्रण मे पर्याप्त रुचि रखते है और उन्होने स्थूल आंगिक चित्रण भी अनेक स्थलो पर रुचिपूर्वक किया है।

तुलसी सुकुमार कन्याएँ

प्रधान पात्र	गौण पात्र
१ सीता	१ माण्डवी २ उर्मिला ३ श्रुतकीर्ति
२ पार्वती	४ देवहूति ५ ताडका ६ विश्वमोहिनी

तुलसी ने नारी-पात्रो के कन्या रूप का यद्यपि कम ही चित्रांकन किया है, तथापि कन्या रूप उन्हे अरुचिकर रहा हो, ऐसा नही लगता।

प्रधान पात्र

सीता—सीता तुलसीदास की ऐसी अनुपम सर्जना है, जिसमे उन्होने पूर्ण स्त्रीत्व के आदर्श की प्राण-प्रतिष्ठा की है।[1] उन्हे जैन-परम्परा रुचिकर नही हुई और उन्होने 'भामण्डल प्रकरण' लिया ही नही।

सीता के जन्म के विषय मे अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। सीता के 'भूमिजा' होने का प्राचीनतम विवरण हमे 'वाल्मीकिरामायण' मे मिलता है। 'वाल्मीकिरामायण' (दाक्षिणात्य) मे अनेकानेक स्थलो पर सीता मिथिला की राजकन्या और जनक की पुत्री के रूप मे चित्रित हुई है।[2] 'रामोपाख्यान मे सीता का परिचय यह है —

विदेहराजो जनक सीता तस्यात्मजा विभो। (३, २५८, ९)

तुलसी ने सीता-जन्म की कथा के विवाद से बचते हुए, उन्हे जनकात्मजा स्वीकार किया है और जनक के सदन मे राज-निवास की गरिमा सहित सीता का प्रथम उल्लेख कन्या रूप मे इस प्रकार किया है

धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुन्दर सदन सोभा किमि कहि जाति ॥[3]

जनक-सुता के अनुरूप ही सुन्दर वर मिलने की कामना सभी को थी। तुलसी

---

[1] मानस की सीता के इन अद्भुत गुणो से यह कदाचित् सरलता से अनुमान किया जा सकता है कि कवि की दृष्टि मे पूर्ण स्त्रीत्व का आदर्श क्या है ?

—डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०४

[2] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ३६७।

[3] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा २१३।

ने एक सखी के माध्यम से इस कामना को प्रकट किया है :

जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी।[1]

अर्थात् ब्रह्मा ने ज्यों सीता को सँवार कर सुन्दर रचना की है, त्यो ही श्यामल वर को विचार कर रचा है।

राजा जनक के सादर आमत्रण पर मुनि विश्वामित्र के साथ राम तथा लक्ष्मण मिथिला मे सीता-स्वयवर देखने पधारे और उत्कण्ठावश गुरु आज्ञा से नगर भ्रमण को निकल पडे। युवतियाँ झरोखो से इस सुषमामय दृश्य को देख रही थी और परस्पर इन दोनो के रूप की प्रशसा कर रही थी। तुलसी ने एक युवती के मुख से कहला ही दिया

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥
जौ सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू॥[2]

किस कुशलता से कवि तुलसी सामाजिक धारणा को प्रदर्शित कर रहे हैं कि कन्या के अनुरूप ही वर होना चाहिए। बडी चतुराई से मन की बात तुलसी ने कह दी

कोउ कह जौ भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहाँ सदेहू॥[3]

दोनो भाई वाटिका मे पहुँच गए और पुष्प चयन करने लगे। तभी वहाँ गौरी-पूजन करने सीता आई, पूर्ण राजमर्यादा एव कन्योचित गरिमा के साथ

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
सग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥[4]

तभी एक सखी, जो राम-रूप-माधुरी का पान कर चुकी है, सीता को हर्ष विभोर होकर सब कहती है। सीता के मन मे सहज उत्कण्ठा जागृत हो गई—'सिय हियँ अति उतकण्ठा जानी'। सखी ने परिचय-सूत्र बढ़ाया, तो प्रेम का सहज अकुर फूटने-सा लगा सीता के अबोध मन मे

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥[5]

मनोवैज्ञानिक चित्राकन का सहज प्रमाण तुलसी ने दिया है यहाँ। सामाजिक मर्यादा को भला तुलसी क्यो भूल जाते ? सीता, राम के दर्शन के लिए 'पुरातन-प्रीति' के पावनतम धागे से बँधी हुई चल पडी, किन्तु कन्या की मर्यादा एव गरिमा-मयी शालीनता का निर्वाह करती हुई

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २२३।७।
[2] वही, २२२।१–२।
[3] वही, २२२।५–६।
[4] वही, २२८।२–३।
[5] वही, २२६।७।

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥[1]

राम ने भी सीता की शोभा देख मन ही मन उसे सराहा । लक्ष्मण को राम ने सीता का परिचय दिया—शालीनता से परिपूर्ण ।

तात जनकतनया यह सोई । धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं । करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं ॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥[2]

राम के हृदय मे सीता के प्रति प्रणय-भाव मुखरित हो गया और सीता के हृदय मे राम के प्रति 'पुरातन-प्रीति' जग गई है । कन्या सीता अब प्रेयसी सीता बन गई है ।

तुलसी ने मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक तत्त्व लेकर सीता के उपर्युक्त कन्या रूप को शाश्वत गरिमा प्रदान कर दी है ।

पार्वती—'रामचरितमानस' के मूल मे तुलसी ने पार्वती को रक्खा है । सम्पूर्ण कथा 'शिव-पार्वती-सम्वाद' के रूप मे है । पार्वती का सदा शिव की सगिनी 'सती' के रूप मे तुलसी के 'मानस' मे चरित्राकन हुआ है ।[3] पार्वती के दो जन्मो की कथा 'मानस' मे अकित हुई है—एक सशयात्मा सती के रूप मे, जो राम के 'ब्रह्मत्व' की परीक्षा लेती है सीता बनकर तथा दूसरे पर्वतराज की कन्या 'गौरी' के रूप मे, जब वह शिव प्राप्ति हेतु असीम दृढता से तप करती है ।

पार्वती का इस रूप मे विस्तृत चरित्र-चित्रण परम्परा से उपलब्ध नही होता । केवल 'अध्यात्मरामायण', जिसका तुलसी पर प्रभाव माना जाता है, मे समस्त रचना 'पार्वती-शकर-सम्वाद' के रूप मे दी गई है ।[4]

गौरी का चरित्राकन निश्चितत तुलसी की गरिमामयी उपलब्धि है । कन्या रूप मे तुलसी ने गौरी का अपूर्व चित्रण किया है । 'सती दक्षसुता' के रूप मे किए गए अपराध का पश्चात्ताप 'गौरी' के रूप मे जन्म लेकर किया गया । दोनो जन्मो का सूत्र तुलसी ने इस प्रकार जोडा है

सती मरत हरि सन बरु मागा । जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥[5]

इसी वर की परिणति स्वरूप 'हिमवान्' के घर 'सती उमा' ने पार्वती बन कर जन्म लिया

तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई । जनमी पारबती तनु पाई ॥
जब ते उमा सैल गृह जाईं । सकल सिद्धि सम्पति तहँ छाईं ॥[6]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २२९।८ तथा दोहा २२९ ।
[2] वही, २३१।१–३ ।
[3] रामानन्द शर्मा मानस की महिलाएँ, पृ० १७ ।
[4] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० १७१ ।
[5] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ६५।५ ।
[6] वही, ६५।६–७ ।

तुलसी ने कौशलपूर्वक 'उमा' को कन्या पार्वती बना दिया है।

हिमवान् की कन्या 'गौरी' रूप, गुण तथा सौन्दर्य में दिन-प्रति-दिन अद्भुत गति से विकास कर रही थी। एक दिन नारद वहाँ आ पधारे। पर्वतराज ने सत्कार किया देवर्षि का और मर्यादापूर्वक कन्या को बुलाकर उनके चरणो मे प्रणाम कराया। पिता ने सहज भाव से भविष्य-द्रष्टा देवर्षि से कन्या गौरी का भविष्य जानना चाहा, तो देवर्षि ने कहा

कह मुनि बिहसि गूढ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अम्बिका भवानी॥
सब लच्छन सम्पन्न कुमारी। होइहि सन्तत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि ते जसु पैहहिं पितु माता॥
होइहि पूज्य सकल जग माही। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नामु सुमिरि ससारा। त्रिय चढिहहि पतिव्रत असिधारा॥[1]

अपनी सु-कन्या का यह उज्ज्वल भविष्य सुनकर पिता हिमवान् का हर्ष सीमाएँ लाँघ चला होगा कि तभी एक दुविधा खडी कर दी देवर्षि ने। इतनी सौभाग्य-शालिनी कन्या—'एहि तें जसु पैहहि पितु माता' और 'त्रिय चढिहहिं पतिव्रत असिधारा',—किन्तु फिर भी एक अभाव, एक अवगुण को कन्या की भाग्य-रेखाएँ इगित कर रही थी

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब ससय छीना॥
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥[2]

यह रोमाचक दुर्भाग्य सुनकर माता-पिता सिहर उठे, किन्तु 'शिव' की चिरसगिनी, प्राण-प्रिया 'उमा' तो भविष्य के स्वप्न मे मग्न थी

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दम्पतिहि उमा हरषानी॥
× × × ×
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा॥[3]

यहाँ भी 'प्रीति-पुरातन' का अदृश्य धागा बँधा हुआ था, जो खीच रहा था पार्वती के मन-प्राणो को, किन्तु कन्या की सहज मर्यादा भला वह कैसे छोड देती ?

जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछँग बैठी पुनि जाई॥[4]

तुलसी ने सामाजिक मर्यादा का साथ नही छोडा। पार्वती के माता-पिता सोच मे पड गए इस अनिष्टकारी भविष्य को सुन कर, वे जानते थे—झूठि न होइ

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ६७।१–६।
[2] वही, ६७।७–८ तथा दोहा ६७।
[3] वही, ६८।१, ४।
[4] वही, ६८।६।

देवरिषि बानी। दोनो ने नारद से उपाय पूछा इस अदृष्ट दुर्भाग्य से अपनी अबोध आत्मजा को बचाने का, तो नारद ने कहा

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु सकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥[1]

नारद ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दो में अत्यन्त दुर्गम तथा कठिन मार्ग इस दुर्भाग्य से मुक्ति पाने का बताया गौरी के पिता हिमवान् को

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माही। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाही॥[2]

नारद यह मार्ग दिखाकर चले गए निज धाम और इधर कन्या के भविष्य की दुश्चिन्ता मे उलझे रह गए हिमवान् तथा उनकी पत्नी मैना। माँ ने कन्या को प्रसव-वेदना सहकर जन्म दिया है, योग्य वर मिलेगा, तो वह कन्या का विवाह करेगी अन्यथा प्राणप्रिय कन्या अविवाहित ही माँ के स्नेह की छाया मे रहेगी। कन्या के प्रति समाज की यह उच्च दृष्टि तुलसी ने सजोकर रक्खी है।[3]

मर्यादा की प्रतिमा पार्वती के पास जब माता मैना गई तप करने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से, तो सहज भाव से स्वय पार्वती ने मन की बात कह दी माँ से

सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि।
सुदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि॥

× × × ×

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥[4]

और दृढ-प्रतिज्ञ, निष्ठाशीला पार्वती माता-पिता को सान्त्वना देकर तपस्या करने के लिए अपार हर्ष मन मे लिए चल पडी।

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चली उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥[5]

हृदय मे जन्म-जन्म का अनुराग सजोए, दृढता की मुखर प्रतिमा तथा निष्ठा का आदर्श रूप, कन्या-रूप मे गौरव-मण्डिता, पार्वती तपस्या मे लीन हो गई। कन्या से भाव-रक्त पाकर उभर आया गौरी का प्रेयसी रूप।

कन्या रूप मे पार्वती तुलसी की अनूठी सर्जना है। भारतीय नारी की मर्यादा का ऐसा सुन्दर सास्कृतिक चित्रण अन्यत्र कहाँ मिलेगा ?[6]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ६९।३-४।

[2] वही, ७०।५-६।

[3] जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी॥ —वही, ७१।३-४

[4] वही, दोहा ७२ तथा ७३।१।

[5] वही, ७३।७-८।

[6] रामानन्द शर्मा मानस की महिलाएँ, पृ० ७२।

गौण पात्र

तुलसी ने रामकथा वस्तुत 'स्वान्त सुखाय' तथा आध्यात्मिक विकास का महत् उद्देश्य लेकर लिखी, अत पात्रो का जमघट उन्हें लगाना रुचिकर न लगा। कन्या रूप मे गौण नारी-पात्रो मे कुछ का तो तुलसी ने नामोल्लेख-मात्र ही किया है तथा कुछ का सक्षेप मे चरित्राकन कर दिया है।

माण्डवी—'वाल्मीकिरामायण' (सर्ग ६७–७३) मे धनुष-यज्ञ प्रसग मे कथा आई है कि राम धनुष चढाकर उसे तोडते हैं, जिस पर दशरथ को बुलाया जाता है तथा राम के अतिरिक्त लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न क्रमश उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति से विवाह करते हैं।[1]

तुलसी ने इस पात्र-परम्परा को वाल्मीकि के समान ही रक्खा है। धनुष-भग होने पर जनक ने वशिष्ठ की आज्ञा पाकर ब्याह के लिए सजी हुई कन्याओ को बुलाया

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
माण्डवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥[2]

प्रथम कुमारिका माण्डवी का पाणिग्रहण-सस्कार सम्राट् ने कुमार भरत के साथ कराया

कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥[3]

गुण, शील, सौन्दर्य से मण्डित होना कन्योचित आदर्श है तथा 'रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि' सामाजिकता का कुशल चित्राकन है। तुलसी की कला का भव्य रूप यहाँ पर अत्यन्त सफलतापूर्वक मुखरित हुआ है।

उर्मिला—तुलसी ने उर्मिला को जानकी की अनुजा माना है। अनन्तर 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त) मे यही परम्परा स्वीकार की है। उर्मिला का विवाह कुमार लक्ष्मण से सम्पन्न हुआ

जानकी लघु भगिनी सकल सुदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥[4]

सौन्दर्य-शिरोमणि उर्मिला वस्तुत आदर्श 'कन्यात्व' का गौरव ही तो है।

श्रुतकीर्ति—कुमार शत्रुघ्न को सुलोचनी, सुमुखी तथा समस्त गुणो की आगार श्रुतकीर्ति आदरपूर्वक दी गई

जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥[5]

---

1 डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ३५०।
2 रामचरितमानस, बालकाण्ड, ३२५।छन्द २।१–२।
3 वही, ३२५।छन्द २।३–४।
4 वही, ३२५।छन्द ३।१–२।
5 वही, ३२५।छन्द ३।३–४।

कन्योचित गुणो का आदर्श इन पात्रो मे तुलसी ने अकित किया है, जो उनकी अपनी मौलिक उद्‌भावना तथा भारतीय सस्कृति के प्रति आस्था का परिचायक है।

देवहूति—मनु एव शतरूपा की कन्या के रूप मे तुलसी ने देवहूति का नामोल्लेख किया है। देवहूति के गर्भ से ही साख्य-दर्शन के आचार्य कपिल का जन्म हुआ था

स्वायभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह ते भै नरसृष्टि अनूपा ॥

× × × ×

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥

आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ॥[1]

ताडका—'वाल्मीकिरामायण' मे इस आसुरी-पात्रा का नाम 'ताटका' है। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को अयोध्या से प्रस्थान करने पर मार्ग मे 'कामदहन', 'ताटका' तथा 'वामनावतार' की कथाएँ सुनाई। राम सिद्धाश्रम मे पहुँचने के पूर्व ही ताटका का वध करते है। राम के बाणो से बिद्ध ताटका भूमि पर गिर कर मर जाती है। 'अध्यात्मरामायण', 'पद्मपुराण' मे ताटका अनुपम दिव्य रूप धारण कर स्वर्ग चली जाती है।[2]

तुलसी ने ताडका को सुकेतु यक्ष की कन्या के रूप मे प्रस्तुत किया है। इसे इसके पुत्र सहित राम ने मारा

रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी ॥[3]

इस प्रसग का विस्तारपूर्वक उल्लेख 'रामचरितमानस' मे अनन्तर इस प्रकार हुआ है

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताडका क्रोध करि धाई ॥

एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥[4]

यहाँ पर तुलसी ने 'अध्यात्मरामायण' तथा 'पद्मपुराण' की परम्परा का ही पल्लवन किया है।

विश्वमोहिनी—यह विष्णु द्वारा कल्पित नारी-पात्र है, जो नारद का मोह भग करने हेतु निर्मित की गई। 'शिव महापुराण' मे यह कथा यो है—अम्बरीष कन्या श्रीमती को प्राप्त करने के लिए नारद ने विष्णु से हरि रूप माँगा। विष्णु ने उन्हे 'हरि' अर्थात् वानर रूप देकर स्वय श्रीमती का वरण कर लिया। शिव के दो गणो ने नारद का उपहास किया, वे शाप के कारण रावण-कुम्भकर्ण बन गए। विष्णु को नारद ने शाप दिया—तुम मनुष्य बनकर वानरो के साथ विरह का दुःख भोगोगे।[5]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १४२।१, ५ तथा ६।

[2] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ३४८–४९।

[3] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २४।४।

[4] वही, २०९।५–६।

[5] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० १३६।

तुलसी ने अम्बरीष की कन्या श्रीमती के स्थान पर विष्णु द्वारा माया-निर्मित श्रीनिवासपुर के राजा शीलनिधि की कन्या 'विश्वमोहिनी' का चित्रण किया है। विश्वमोहिनी का परिचय तुलसी ने इस प्रकार कराया है

बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी ॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा ॥

× × × ×

बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी ॥
सोइ हरिमाया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी ॥
करइ स्वयबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला ॥[1]

विष्णु की इस अनुपम सर्जना का सौन्दर्य मादक, अनुपम तथा असीम था, दर्शक स्वय को विस्मृत कर देते थे

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बडी बार लगि रहे निहारी ॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयँ हरष नहि प्रगट बखाने ॥[2]

राजकुमारी विश्वमोहिनी राजमर्यादा के साथ जयमाला लिए हसिनी की भाँति स्वयवर-मण्डप मे घूम रही थी

सखी सग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल ॥[3]

मन मे उत्कठा लिए, नारद उचक-उचक कर देखते है कन्या को, किन्तु कन्या ने नारद की ओर—'सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली' देखा तक नही और राजा वेश मे विराजमान विष्णु के कण्ठ मे जयमाला डाल कर उनका ही वरण कर लिया।

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला ॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा ॥[4]

तुलसीदास के नारी-पात्रो मे कन्यात्व का चित्रण सर्वत्र मर्यादित तथा आदर्श से मण्डित हुआ है। मर्यादावादी होने के कारण तुलसी ने अपनी कन्याओ के चरित्र को कही भी उथला नही होने दिया है, अपितु प्रत्येक पात्र मे, चाहे उसका चरित्र-चित्रण सक्षिप्त ही हुआ हो, पूर्ण भारतीय आदर्श की प्रतिष्ठा की है। तुलसी के नारी-पात्रो मे कन्या रूप अत्यन्त सूक्ष्म रूप से चित्रित होते हुए भी, परम्परित समस्त गुणो का समावेश उन्होने कन्याओ मे करा दिया है।

निष्कर्ष

सामान्यत स्वयभू तथा तुलसी के नारी-पात्रो मे 'कन्या रूप' मे समान नारी-

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १३०।१–२, ४–६।
[2] वही, १३१।१–२।
[3] वही, दोहा १३४।
[4] वही, १३५।३–४।

पात्र केवल मात्र सीता ही हैं, शेष असमान हैं। इस पर भी सर्वप्रमुख अन्तर है—स्वयभू के नारी-पात्रो का मूलत जैन-धर्मानुगामी होना तथा तुलसी के नारी-पात्रो का मूलत हिन्दू-धर्मानुगामी होना। यह अन्तर निश्चितत 'कवि-दृष्टिकोण' के तत्त्व का ही परिणाम है।

मनोवैज्ञानिक-तत्त्व की दृष्टि से इन दोनो कवियो की 'सुकुमार कन्याओ' के व्यक्तित्व मे मूल अन्तर यह प्रतीत होता है कि स्वयभू की कन्याओ मे 'इद' सर्वाधिक, 'अहम्' सामान्य तथा 'पराहम्' न्यूनतम रूप से प्रभावी रहता है। परिणामत वे बहिर्मुखी तथा स्थूल व्यक्तित्व रखती हैं। किन्तु तुलसी की कन्याएँ—प्रमुखत सीता, पार्वती—इसके विपरीत 'पराहम्' से सर्वाधिक, 'अहम्' से सामान्य तथा 'इद' से न्यूनतम प्रभाव ग्रहण करती हैं। परिणामत उनमे मर्यादा, आदर्श, नैतिक मूल्यो तथा आचारो की प्रतिष्ठा हुई है तथा उनका व्यक्तित्व अन्त मुखी बन गया है। पात्र के मनोभावो के सूक्ष्म चित्रण मे भी तुलसी असदिग्ध रूप मे स्वयभू से आगे बढ गये है।[1]

सामाजिक तथा सास्कृतिक तत्त्व की दृष्टि से दोनो कवियो ने नारी के 'कन्या-रूप' को गरिमामय माना है। 'स्वयवर' के उत्सव का आयोजन दोनो करते हैं। कन्या को सम्मान भी दोनो ने ही दिया, किन्तु कन्या को स्वयभू ने तुलसी की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता दी है, जबकि तुलसी ने 'मर्यादा का अकुश' कही भी हटने नही दिया।

देश-काल का प्रभाव दोनो कवियो पर ही समान रूप मे लक्ष्य किया जा सकता है। राजमर्यादा का पालन दोनो ही महाकवियो की 'सुकुमार कन्याएँ' करती हैं।

पौराणिक तत्त्व स्वयभू मे कम प्रभाव रखता है, किन्तु तुलसी मे यह प्रभाव विद्यमान है। 'पार्वती' केवल मात्र 'हिम-कन्या' ही नही है, अपितु तुलसी उन्हे 'उमा भवानी' आदि सम्बोधन देते हैं। 'नाम उमा अम्बिका भवानी'[2] कहकर उनका स्मरण करते है।

'पूज्य बुद्धि' जो स्वयभूदेव मे अपने पात्रो के प्रति नही रही है, 'पौराणिक तत्त्व' के कारण तुलसी मे विद्यमान रही है और यह अन्तर दोनो मे पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हो गया है। स्वयभूदेव ने अधिकाशत प्राकृत के प्रतिष्ठित एव विज्ञ कवि विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' की जैन-काव्य परम्परा को ग्रहण किया है, परिणामत उनकी पात्र-सृष्टि ही बदल गई, जबकि तुलसी ने 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' कहकर वैदिक-हिन्दू परम्परा को ग्रहण किया है।

---

[1] महाकाव्य का एक मात्र अभीप्सित होता है मानव का 'मनोमथन' और उसका उन्नयन। इसी एक केन्द्र-बिन्दु पर कवि-कर्म का कौशल चक्कर काटता रहता है। तुलसी का 'रामचरितमानस' इसका मनोज्ञ उदाहरण है। —रामानन्द शर्मा मानस की महिलाएँ, पृ० १०

[2] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ६७।२।

कन्या-पात्रो के चित्रण—सौन्दर्य एव आगिक चित्रण मे स्वयभू ने सकोच नही किया, परिणामत कही पिता अपनी कन्या के उभरे हुए स्तनो को देखकर उसके विवाह की चिन्ता करता है,[1] तो कही कवि स्वय कन्या के रूप का चित्रण स्थूल रूप से करता है—'इन्दीवरच्छि छण-चन्द-मुहिय' आदि कहकर। यह 'कवि-दृष्टिकोण' का तत्त्व ही है। तुलसीदास इस दृष्टि से अत्यन्त सीमित एव मर्यादित रहे हैं, कन्या-पात्रो का स्थूल अग-चित्रण उन्हे रुचिकर तथा प्रेय कही नही रहा है।

[1] पउमचरिउ, १८।३।४–७।

५

प्रेमिकाएँ

नारी-जीवन का आरम्भ कन्या रूप है तथा चरम उपलब्धि है मातृत्व, इन दोनो के मध्य एक सोपान है 'पत्नीत्व' का, जो नारी को पुरुष-तत्त्व से मिलने का सौभाग्य प्रदान करता है। पत्नीत्व से पूर्व भी नारी-जीवन का एक सोपान है, जिसमे भावना की पुण्य-सलिला बहा करती है और रोम-रोम पुलक से सिहर उठा करता है। उस सोपान का नाम है—'प्रणय'। प्रणय, वह रागात्मक स्थिति है मन की, जब देह पृथक् होकर भी प्राण एक हुआ करते है। यही वह प्रणय है, जिसके सूत्र मे बँधी सूर की गोपिकाएँ दौडी चली आती थी और 'गृह ब्यौहार थके, आरज पथ तजत न सक करी' की स्थिति आ जाती थी। यह वही प्रणय है, जिसमे प्राप्ति नही, समर्पण रहता है, पाना श्रेय नही, खो देना प्रिय लगता है।[1] जीवन मे आलोक बिखेरता है प्रणय।[2] हिंसक, खूंखार सिंह भी इस प्रणय के वशीभूत होकर, भोला बनकर अपनी प्रिया के समक्ष पूर्ण समर्पण कर देता है।

सृष्टि के आदि से ही पुरुष एव नारी के बीच सहज आकर्षण रहा है। इसी को आचार्यों ने 'रति-भाव' की सज्ञा दी और इसे शृगार रस का मूल मान लिया। आदिकवि का हृदय 'प्रणयी-युगल'—क्रौच तथा क्रौंची की प्रणय-रत अवस्था मे किसी व्याध द्वारा क्रौच को मार देने पर, क्रौची के करुण क्रन्दन मे ही तो द्रवित हो चला था और फूट पडे थे कविता के छन्द

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधी काममोहितम् ।।

---

[1] पागल रे ! वह मिलता है कब ।
उसको तो देते ही हैं सब । —जयशकर प्रसाद लहर, पृ० ३६

[2] प्रणय ! प्रेम ! जब सामने से आते हुए तीव्र आलोक की तरह आँखो में प्रकाश-पुज उँडेल देता है, तब सामने की सब वस्तुएँ और भी स्पष्ट हो जाती हैं।

—जयशकर प्रसाद ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३७

प्रणय वस्तुत जीवन की अन्यतम उपलब्धि है, जो जीवन को असीम की रागात्मक अनुभूति से परिपूरित करता है। प्रसाद का कथन इस सत्य की यथार्थ अभिव्यक्ति है—दो प्यार करने वाले हृदयो के बीच मे स्वर्गीय ज्योति का निवास है।[1] नारी जब प्रेम करती है, तो देवी बन जाती है और घृणा करती है, तो राक्षसी होती है।

नारी-हृदय मे प्रेम-भाव की जागृति स्वप्न-दर्शन, गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन तथा प्रत्यक्ष-दर्शन से होती है, ऐसा माना जाता रहा है। नारी अपना पूरक खोजने का प्रयास करती है और नर अपने पूरक को खोजता है, यही है नर-नारी का सहज आकर्षण।

आदिकाल से कवि इस प्रणयानुभूति को व्यजित करता आया है। इस रूप मे कवि का मन भावना के उच्चतम स्तर का स्पर्श करता है। कवियो ने 'प्रत्यक्ष-दर्शन' से पूर्व की स्थिति को 'पूर्वानुराग' कहा है, दर्शन हो जाने पर हृदयो का रागात्मक एकीकरण 'मिलन' की सज्ञा से अभिहित हुआ है और मिलनोपरान्त बिछुड जाना 'विप्रलभ' कहा गया है। प्रणय मे इनकी समग्रता रहती है, इसी से शृगार के दो पक्ष—सयोग तथा विप्रलभ माने गए है।

स्वयभूदेव तथा तुलसीदास ने अपने महाकाव्यो मे कतिपय नारी-पात्रो को 'प्रेयमी-रूप' मे भी चित्रित किया है।

स्वयभूदेव प्रेमिकाए

प्रधान पात्र	गौण पात्र
१ मन्दोदरी	कोई नही है।
२ कल्याणमाला	
३ अजना	

प्रधान पात्र

मन्दोदरी—इस नारी-पात्र का उल्लेख 'वाल्मीकिरामायण' के उत्तरकाण्ड (सर्ग १२) मे हुआ है, जिसके अनुसार रावण ने मृगया के समय मय को अपनी पुत्री मन्दोदरी के साथ वन मे टहलते हुए देखा। रावण का परिचय प्राप्त कर मय ने मन्दोदरी का विवाह रावण से कर दिया।[2] 'आनन्दरामायण' के अनुसार विष्णु ने अपने अग के चन्दन से सुन्दरी मन्दोदरी की सृष्टि करके मय के घर रक्खा था, तब रावण से उसका विवाह हुआ।[3]

विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे मय की कन्या है मन्दोदरी, जिसे यौवन-सपन्ना

[1] जयशकर प्रसाद ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४४।

[2] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ६३८।

[3] वही, पृ० ६३८।

देख मय ने मन्त्रियो से उसके विवाह की मन्त्रणा की और शक्ति-सम्पन्न रावण को मन्दोदरी विवाह मे देने का सकल्प किया

अह ते मएण भणिया, नयसत्थ वियारया महामन्ती ।
मज्झ किर परिणामो, दिज्जइ कन्ना दहमुहस्स ॥[1]

तदन्तर मय अपनी कन्या को लेकर दशमुख के नगर गया और विधिपूर्वक उसने उसका उससे पाणिग्रहण करा दिया ।

यद्यपि स्वयभू ने इस जैन-कथा-परम्परा को ग्रहण किया है, किन्तु अपनी काव्य-प्रतिभा से मन्दोदरी का प्रेयसी रूप मे चित्रण करके सर्वथा मौलिकता का परिचय दिया है ।

स्वयभू सर्वप्रथम मय के साथ आई सुन्दरी कन्या मन्दोदरी को रावण के भवन मे प्रवेश करते हुए चित्रित करते है

मन्दोवरि पवर-कुमारि लेवि । रावणहों जें भवणु पइट्ठ वे वि ॥[2]

महाप्रतापी रावण तभी चन्द्रहास खड्ग को सिद्ध करके, धरती-गगन कँपाता हुआ लौटा, तो मय तथा मन्दोदरी भयभीत हो गए, किन्तु पुत्री को अभय देकर मय ने चन्द्रनखा से इस सबका कारण पूछा, तो ज्ञात हुआ, यह सब कुमार रावण का प्रभाव है । सब यह जानकर पुलकित हो उठे ।

सम्भव है, मन्दोदरी के हृदय मे 'दहगीव-कुमारहों एँहु पहाउ'[3] सुनकर रावण के प्रति 'पूर्वानुराग' जागृत हो गया हो । कवि ने स्पष्ट तो नही किया, हाँ, सकेत अत्यन्त स्पष्ट दे दिया है

सहसत्ति दिट्ठु मन्दोवरिएँ दिट्ठिएँ चल-मउँहालएँ ।
दूरहों जें समाहउ वच्छयलें ण णीलुप्पल-मालएँ ॥[4]

अर्थात् सहसा कुमारिका मन्दोदरी ने अपनी चचल भौहोवाली चितवन से रावण को इस प्रकार देखा, मानो किसी ने दूर से नील-कमल की माला से वक्ष-स्थल पर आघात किया हो ।

चन्द्रनखा से 'गुण श्रवण' करके मन्दोदरी के हृदय मे जो प्रणय-भाव जगा होगा, वही तो नयनो की कोर से ढलकर बह चला होगा, जिसने शक्ति-सम्पन्न दशमुख को बेध डाला । बिहारी का स्मरण सहज है ।[5]

प्रणय की दृष्टि ने प्रणय को आमत्रण दे दिया और दशमुख ने सौन्दर्यागार मन्दोदरी को ऐसे देखा, मानो भ्रमर ने अभिनव कुसुममाला देख ली हो

---

[1] पउम ८।५ तथा २१ ।

[2] पउमचरिउ, १०।१।३ ।

[3] वही, १०।२।३ ।

[4] वही, १०।२।९ ।

[5] अनियारे, दीरघदृगनु, किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान ॥ —बिहारी रत्नाकर, दोहा ५८८

दीसइ तेण वि सहसत्ति वाल । ण भसले अहिणव-कुसुम-माल ।।[1]

अद्वितीय, अनुपमेय एव विलक्षण है स्वयभू की उत्प्रेक्षा—मानो भ्रमर ने अभिनव कुसुममाला को देखा हो। सहज प्रणयाकर्षण की अभिव्यक्ति के लिए नितान्त सहज प्रकृति का युगल—'भवरा और कली' कवि ने प्रस्तुत कर दिया।

रावण के हृदय मे मन्दोदरी के सौन्दर्य को अनिमेष देखने की प्रबल उत्कण्ठा सहज ही जगी होगी। स्वयभूदेव ने सिद्ध-हस्त कवि के रूप मे मुग्ध रावण का चित्राकन किया है—मन्दोदरी के पैरो के नूपुर ऐसे थे, मानो बन्दीगण मधुर पाठ कर रहे हो, मेखला मण्डित नितम्ब मानो कामदेव का आस्थान-मार्ग हो, रोमाबली मानो शोभित बाल सर्पिनी हो, मुख-कमल खिला हुआ था, श्यामल केशो से ढका हुआ ललाट मानो मेघो मे डूबा हुआ चन्द्र बिम्ब ही था। जिस अग पर दृष्टि जाती वही ठहर जाती, अन्यत्र कही नही जाती, जैसे रस-मुग्ध भ्रमरावली केतकी की ओर से मुड नही सकती।

तुल्यानुराग की स्थिति यही तो है। रावण को प्रणय-बाण से बिद्ध हुआ जानकर मारीच ने अपना मन्तव्य कहा

नहि अम्हइँ मय मारिच्च भाय। रावण विवाह-कज्जेण आय ।।
लइ तुज्झु जे जोग्गउ णारि-रयणु। उट्ठु ट्ठु देव करें पाणि-गहणु ।।[2]

प्रणय-विमोहित रावण ने सहर्ष इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और जयतूर्य, धवल मगल तथा समुज्ज्वल स्वर्णिम तोरणो के मध्य मन्दोदरी से उसने परिणय बधन स्वीकार कर लिया

त णिसुणेँवि तुट्ठे दहमुहेण। किउ तक्खणे पाणिग्गहणु तेण ।।
जय-तूरहिँ धवलहिं मगलेहि। कचण-तोरणे हिँ समुज्जलेहिँ ।।[3]

और प्रेयसी मन्दोदरी को उसका प्रिय 'पति रूप' मे मिल गया, मानो राजहसिनी को राजहस मिल गया हो

त वहु-वरु णयणाणन्दयरु विसइ सयपहु पट्टणु।
ण उत्तम-रायहस-मिहुणु पप्फुल्लिय-पकय-व(य)णु ।।[4]

कल्याणमाला—इस पात्र का उल्लेख विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' के पर्व ३४ मे हुआ है। पुरुष वेश मे 'कल्याणमाल' नामक राजकुमार बनी हुई, यह स्त्री लक्ष्मण को मिलती है, जो राम-सीता के लिए जल लेने सरोवर पर गए हुए है। लक्ष्मण से रामागमन सुनकर उन्हे निमन्त्रित करने के लिए कल्याणमाला ने अपना दूत भेजा। राम के सम्मुख उसने अपना स्त्री-रूप प्रकट किया और बताया कि 'कोई पुत्र पिता के यहाँ उत्पन्न न होने के कारण उसे नर-वेश मे राज्य करना पड रहा

[1] पउमचरिउ, १०।३।१।
[2] वही, १०।४।३–४।
[3] वही, १०।४।७–८।
[4] वही, १०।४।६।

है। उसके पिता को म्लेच्छ राजा ने कैद कर रक्खा है। कल्याणमालिनी ने अपने पिता को मुक्त कराने तथा अपने शोक को मिटाने की विनय राम से की। म्लेच्छ राजा ने राम के समक्ष पराजय मानकर राम की शरण ले ली और बालिखिल्य राजा को मुक्त कर दिया। पिता-पुत्री तथा माता मिल गए।[1]

स्वयभूदेव ने इस नारी-पात्र को परम्परा से ग्रहण करके मौलिक उद्भावनाओ के द्वारा सर्वथा अनूठा व्यक्तित्व दे दिया है।

कल्याणमाला छद्मवेश मे 'नलकूबर' राजा बनी हुई है। सरोवर पर जल लेने आए हुए कुमार लक्ष्मण को उसने प्रथम दृष्टि से देखा

कुव्वर-णाहेँण किउ मचारोहणु जावेँहिँ।
सूरु व चन्देँण लक्खिज्जइ लक्खणु तावेँहिँ॥[2]

कल्याणमाला (नलकूबर वेश मे) ने लक्ष्मण को मच पर चढकर ऐसे देखा, मानो 'चन्द्र' ने सूर्य को देखा हो।

अत्यन्त विलक्षण है कवि की उत्प्रेक्षा। चन्द्रगुण 'नारी' ने सूर्यगुण 'पुरुष' को देखा, सहज आकर्षण है दोनो का और सूर्य के तेज से प्रभावान् होता है चन्द्र। प्रणय का अकुर वन के उस एकान्त वातावरण मे फूटने लगा।

प्रथम दृष्टि मे प्रणय-भाव जग गया—सुलक्षण लक्ष्मण को देख उसे लगा—साक्षात् कामदेव अवतीर्ण हो गया हो, लक्ष्मण के असीम रूप-सौन्दर्य को देख राजा (कल्याणमाला) के मन मे हलचल मच गई और काम के बाण से बिद्ध वह काम की दसवी अवस्था मे पहुँच गया। 'पुरुषवेश' नारी के सहज भावुक हृदय को तो परिवर्तित नही कर सकता। कवि की मौलिकता का प्रथम चमत्कार यही है।

काम-बाण से आहत 'नलकूबर' के वेश मे कल्याणमाला ने दूतो के द्वारा कुमार लक्ष्मण को बुलाया। लक्ष्मण समीप आ रहे थे और प्रणयी-हृदय का उद्वेलन बढता जा रहा था

दिट्ठु कुमारु कुमारे एन्तउ। मयणु जेम जण-मण-मोहन्तउ॥
खणेँ कल्लाणमालु रोमचिउ। णड्डु जिह हरिस-विसाएँहिँ णच्चिउ॥[3]

अर्थात् अपनी कल्पना मे खोई हुई, कल्याणमाला रोमाचित थी, नट की भाँति हर्ष-विषाद मे मग्न-सी थी। कवि की उत्प्रेक्षा पुन दर्शनीय बन गई है। 'हर्ष' यो कि प्राणप्रिय आ गया है और 'विषाद' यो कि प्रणय-निवेदन कैसे करे ? छद्म वेश की बाधा कल्याणमाला के प्रणय-निवेदन मे बाधा बन गई है।

प्रणय-विभोरा कल्याणमाला ने लक्ष्मण को अर्धासन देकर बैठाया। दोनो सटकर बैठे हुए कन्या तथा वर से लग रहे थे

---

[1] विमलसूरि पउमचरिय, पव ३४।
[2] पउमचरिउ, २६।७।६।
[3] वही, २६।६।६-७।

वइठु जणद्दणु आलीढएँ मञ्चेँ खण्णएँ ।
णव-वरइत्तु व पच्छण्णु मिलिउ सहुँ कण्णएँ ॥[1]

सटे हुए सुन्दर मच पर कुमार लक्ष्मण ऐसे बैठ गये, मानो प्रच्छन्न कन्या के साथ मिलकर नया वर बैठा हो । स्वयभू ने तो कल्याणमाला के प्रणय को 'परिणय-सूत्र' मे यही से परिवर्तित मान लिया लगता है ।

लक्ष्मण तथा कल्याणमाला दोनो ही 'सूर्य-चन्द्र' की भाँति एक ही सुन्दर आसन पर विराजमान थे । दोनो मे सहज अन्तर था जोकि नर तथा नारी मे होता ही है ।[2]

कल्याणमाला ने अपने अत्यन्त समीप बैठे हुए लक्ष्मण को बार-बार तीक्ष्ण नयन-कटाक्षो से देखा
*

दणु-दुग्गाह-गाह-अवगाहे । पुणु पुणरुत्तेँहिँ कुव्वर-णाहे ॥
णयण-कडक्खिउ लक्खण-सरवरु । जो सुर-सुन्दरि-णलिणि-सुहकरु ॥[3]

अपने नारी-सुलभ ज्ञान से कल्याणमाला ने जान लिया कि लक्ष्मण क्षुधातुर है । उसने विनयपूर्वक लक्ष्मण से भोजन करने का आग्रह किया, तो लक्ष्मण ने वन-स्थित राम-सीता का वृत्तान्त कहा । यह सुनकर कल्याणमाला लक्ष्मण के साथ राम तथा सीता को इस प्रकार लेने चली, मानो हाथी के साथ हथिनी ही हो

लक्खण-वयणेँहिँ वलु कोक्किउ चलिउ स-कन्तउ ।
करिणि-विहूसिउ ण वण-गइन्दु मल्हन्तउ ॥[4]

उपर्युक्त पक्तियो मे 'स-कन्तउ' कहकर स्वयभू प्रणय की ओर कितना सार्थक तथा काव्यात्मक सकेत कर रहे हैं ।

राम जानकी सहित गिरि-कदरा से बाहर आए । वे वीर वेश मे सजे हुए थे । सब उन्हे देखकर पुलकित हुए । लक्ष्मण तथा कल्याणमाला ने राम को प्रणाम किया और भोजन से पूर्व जल-क्रीडा[5] का आग्रह किया ।

हरि-कल्लाणमाल दणु-दलणेँहिँ । पडिय वे वि वलएवहोँ चलणेँहिँ ॥
'अच्छहुँ ताव देव जल-कीलएँ । पच्छएँ भोयणु भुजहुँ लीलएँ' ॥[6]

अत्यन्त विलासपूर्वक मादक जल-क्रीडा सभी ने की, जिसकी मादकता और विलक्षणता अनिर्वचनीय है ।[7] कल्याणमाला ने स्नानोपरान्त राम-लक्ष्मण को नमस्कार कर उनका शरीर पोछा और उन्हे अपने भवन मे ले जाकर सुस्वादु भोजन

---

[1] पउमचरिउ, २६।६।६ ।
[2] वही, २६।१०।१-१२ ।
[3] वही, २६।११।१-२ ।
[4] वही, २६।१२।८ ।
[5] जलक्रीडा मे स्वयभू को आज भी कवि नही पा सकते । —वही, १४।१३।६
[6] वही, २६।१४।१-२ ।
[7] वही, १६।१५।१-६ ।

कराया। तदुपरान्त राम-लक्ष्मण-सीता को दिव्य-देवाग-वस्त्र दिये। स्वय नलकूबर बनी हुई कल्याणमाला ने अपना कवच उतार दिया, मानो साँप ने केंचुल ही उतार दी हो।[1]

एकान्त भवन मे कन्या कल्याणमाला ने जब स्वय को प्रकट किया, तो राम ने उससे नर वेश मे रहने का कारण पूछा। गलित-नेत्रा, गद्गद्-वाणी कन्या ने बताया—मेरे पिता वालिखिल्य को रुद्रभूति नामक दुर्जेय राजा ने बन्दी बना रक्खा है, इसी से मैं नर-वेश मे रहती हूँ कि कोई मुझे पहचान न सके।[2]

लक्ष्मण यह करुण-कथा सुन वीरत्व भाव से परिपूरित होकर बोल उठे—यदि मैं रुद्रभूति को समर मे न मार सका, तो राम-सीता की जय नही बोलूँगा।[3] अभय-दान तथा आश्वासन पाकर सदैव को कल्याणमाला ने नर-वेश त्याग दिया। रात को सब सो रहे थे कि राम-सीता-लक्ष्मण ताल-पत्र पर अपने नाम लिख कर चले गए।

प्रात काल कल्याणमाला ने उस ताल-पत्र को पढा और लक्ष्मण-गमन देख कर वह मूर्च्छित हो गई।

दुद्दम-दाणवेन्द-आयामाइँ । दिट्ठइँ लक्खण-रामहुँ णावइँ ॥
खणे॑ कल्लाणमाल मुच्छगय । णिवडिय केलि व खर-पवणाहय ॥[4]

प्रणय हुआ, मिलन हुआ, किन्तु एकागी और अब असह्य विछोह हो गया। कल्याणमाला विछोह से पागल हो गई

खणे॑ खणे॑ जोयइ चउदिसु लोयणे॑हिँ विमाले॑हिँ।
खणे॑ खणे॑ पहणइ सिर-कमलु स इ भु व-डाले॑हिँ ॥[5]

राम-लक्ष्मण विंध्याचल की ओर चले। तभी रुद्रभूति राजा, जिसने कल्याणमाला के पिता को बन्दी बना रक्खा था, मृगया के लिए उधर आया। सीता को देखकर उस काम-जजर शरीर वाले रुद्रभूति ने अपने सैनिको से सीता को बलपूवक छीन लाने को कहा।[6] रुद्रभूति के इस कुकृत्य के परिणामस्वरूप लक्ष्मण और रुद्रभूति का युद्ध हुआ। लक्ष्मण के लिए रुद्रभूति था ही क्या ? लक्ष्मण के पराक्रम को देख कर रुद्रभूति राम के चरणो मे प्राण-रक्षा के लिए आ पहुँचा। राम ने शरणागत रुद्रभूति को लक्ष्मण से प्राण-भिक्षा दिला दी। रुद्रभूति ने भी कल्याणमाला के पिता वालिखिल्य को मुक्त कर दिया। कल्याणमाला का प्रणय एकाकी रहा और मिलन तथा विछोह दोनो ही कवि ने उसमे दिखा दिए।

---

[1] पउमचरिउ, २६।१७।७ ८।
[2] वही, २६।१८।३–५।
[3] वही, २६।१९।६।
[4] वही, २६।२०।३–४।
[5] वही, २६।२०।६।
[6] वही, २७।३।९।

अजना—इस नारी-पात्र का उल्लेख तो 'वाल्मीकिरामायण' से ही है, तथापि स्वयभूदेव ने इसे विमलसूरि से परम्परा मे ही ग्रहण किया है।

सर्वप्रथम तो अजना के प्रेयसी रूप पर ही आपत्ति उठाई जा सकती है, क्योकि विवाह करके पवनजय ने उसका परित्याग कर दिया है। उसकी स्थिति की तुलना तो 'उर्मिला' से भी नही की जा सकती, क्योकि उर्मिला का परित्याग लक्ष्मण ने नही किया था, अपितु कठोर कर्त्तव्य-पालन की प्रक्रिया मे उर्मिला को कारुणिक वियोग सहन करना पडा।[1] उर्मिला लक्ष्मण की प्रिया तो सदैव रही, उसके 'रजन' ने 'नयन इधर मन भाए' कभी न कभी तो फेरे ही और प्रतीक रूप मे 'ये खजन आए' कहकर उर्मिला धन्य भी हो गई।

इधर अजना ने पवनजय की झलक देखी और प्रणय-भाव मन मे उपज आया पुण्य सलिला के नैसर्गिक स्रोत-समान। किन्तु दुर्भाग्य ! विवाह के मण्डप से उठकर 'प्रियतम की सेज' पर उसका कौमार्य स्वय को धन्य न बना सका और वह बिछोह की आग मे जलने लगी।

जिस प्रकार कल्याणमाला का प्रणय-निवेदन से पूर्व ही, प्रिय से बिछोह हो गया, कुछ ऐसी ही दशा 'अजना' की भी है, जो स्वयभू के भावुक-हृदयकवि की कुशलता का परिणाम ही है।

अजना अपने राजप्रासाद मे मुग्ध बनी बैठी है कि उसकी सखी वसन्तमाला ने उसे पवनजय-सा पति पाने पर सौभाग्यशालिनी कहा

'सहलउ तउ माणुस-जम्मु माएँ। भत्तारु पहजणु लद्ध जाएँ'॥[2]

अन्तरग सखी के इस कथन पर अजना का मौन रहना विशेष प्रयोजन से है। स्वयभू ने प्रणयी-हृदया अजना की सखी के मन्तव्य से मौन-स्वीकृति दिखाई है—हाँ, सखी, धन्य हे मेरा जीवन। यही ध्वनि निकल रही है अजना के इस मौन से।

विडम्बना देखिए कि तभी अजना की दूसरी सखी दुर्मुखा दुष्टवेशा मिश्र-केशी 'विद्युत्प्रभ' को पवनजय से श्रेष्ठ कह देती है, जिसे समीप खडा हुआ पवनजय सुनकर क्रोध से भर जाता है और उसका मित्र प्रहसित उसे शान्त करके घर ले आता है। मुग्धा अजना की कल्पना को भी इस दुर्भाग्यपूण घटना का पता नही और वह स्वय मे खोई हुई है। महाकवि कालिदास ने भी तो प्रणय-मुग्धा 'शकुन्तला' का यही रूप अकित किया है।[3]

दु ख से उन्मन कुमार पवनजय ने विवाह तो किया, किन्तु परित्याग का दण्ड नितान्त निर्दोष अपनी मुग्धा पत्नी अजना को दे दिया। एक ही राजप्रासाद मे नव-

---

[1] मानस-मदिर मे सती, पति की प्रतिमा थाप।
जलती-सी उस विरह मे, बनी आरती आप ! —मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० २६८

[2] पउमचरिउ, १८।७।२।

[3] प्रियवदा—(विलोक्य) अणूसूए, पेक्ख दाव। वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअ सही। भत्तुगदाए चिन्दाए अत्ताण पि ण एसा विभावेदि। किं उण आअन्तुअ।
—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थ अक

विवाहित, नव-यौवन तथा सौन्दर्य-सपन्न युगल रहता है, किन्तु सर्वथा एकाकी, असम्पृक्त होकर

थिउ वारह वरिसइँ परिहरेवि । णवि सुअइ आलवइ मुइणवे(?)वि ।।[1]

वियोग, कितने समीप रहकर कितना गहरा विछोह । भावना को स्वयभू ने साकार कर दिया है । अजना छीजने लगी, विरह ज्वाला से दग्ध उसके हृदय को अश्रुधारा भी शान्त नही कर पा रही थी । उसका लावण्य रेतीला मरु-थल बन गया, प्रणय-रस से भरे नयन जेठ माह का सूखा आकाश बन गए, मृत्यु समीप थी, जीवन दूर

वारे वि ण जाइ ण (?) जेम जेम । खिज्जइ झिज्जइ पुणु तेम तेम ।।
डज्झन्तउ उरु विरहाणलेण । ण वुज्झावइ असुअ-जलेण ।।

× × × ×

गउ रुहिर णवर थिउ अहणु अत्थि । णउ णावइ जीविउ अत्थि णत्थि ।।[2]

तभी दशानन रावण ने वरुण पर चढाई कर दी और पवनजय को सहायतार्थ अपनी ओर से युद्ध करने के लिए बुलाया । पवनजय युद्ध-वेश मे सजकर चला, तो दशन की भूखी अजना मगल-कलश लेकर द्वार पर आ खडी हुई, किन्तु दुत्कार दिया उसे पवनजय ने—दुष्ट स्त्री, हट जा ।

त पेक्खेँवि तेण वि ण किउ खेउ । णीसरिउ स-साहणु वाउ-वेउ ।।
थिय अजण कलसु लएवि वारेँ । णिब्भच्छिय 'ओसरु दुट्ठ दारेँ' ।।[3]

अजना ने आँसू बहाते हुए कहा—तुम ही मेरा जीवन हो, तुम बिन जीवन व्यर्थ है ।[4] किन्तु पवनजय ने उसकी ओर ध्यान नही दिया, चला गया । उपेक्षा एव विछोह की सम्मिलित आग मे जल रही है निर्दोष अजना ।

अजना के करुणासिक्त शब्दो की गुज कानो मे लिए—'तुम्हारे रहते ही मेरा जीवन है, तुम्हारे जाने पर वह भी साथ चला जाएगा', कुमार पवनजय ने मान-सरोवर पर डेरा डाला । प्रकृति ने अपना जाल फैलाया । सूर्यास्त हो गया, कमल मुकुलित होने लगे और मधुकरियाँ प्रिय-वियोग मे विलाप करने लगी । चकवी भी चकवे के बिना काम-पीडित हो उठी । कभी चोच मारती, पख फडफडाती, चिल्लाती, चीखती और दौडती-सी वह विरह से पीडित थी ।[5]

क्रौंची का करुण-क्रदन सुनकर जब आदिकवि का हृदय छन्द बनकर फूट चला था,[6] तो क्या पवनजय पाषाण बना रहता ? अजना के शब्द गूंज उठे होगे उसके

---

[1] पउमचरिउ, १८।६।२ ।
[2] वही, १८।६।३, ४ तथा ७ ।
[3] वही, १८।१०।७–८ ।
[4] वही, १८।१०।६ ।
[5] वही, १८।११।२–५ ।
[6] वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान ।
उमडकर आँखो से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान ।। —सुमित्रानन्दन पन्त

कानो मे—'अच्छन्तो अच्छिउ जीउ महु' '। प्रकृति ने विचलित कर ही दिया भावुक पवनजय को।[1] पवनजय का हृदय अजना के प्रति उसकी कठोरता के लिए उसे धिक्कार रहा था

त णिएँ वि जाउ तहो ँ कलुण-भाउ। 'मइँ सरिसउ अण्णु ण को वि पाउ ॥
ण कयाइ वि जोइउ णिय-कलत्तु। अच्छइ मयणग्गि-पलित्त-पत्तु ॥
परिअत्ते ँ वि समाणिउ ण जाम। रणे ँ वरुणहो ँ जुज्झु ण देहि ताम' ॥[2]

पवनजय सोचने लगा—मुझ जैसा पापी कोई नही। अपनी काम-पीडिता पत्नी को कोई भी मेरी तरह नही छोडता। अब मैं अपनी पत्नी को पाकर जब तक उसे सम्मान नही देता, वरुण से युद्ध नही करूँगा।

पवनजय ने मित्र प्रहसित को अपनी हार्दिक कामना कही, तो दोनो आकाश-मार्ग से उडकर अजना के पास चल दिए। दोनो अजना के भवन जा पहुँचे। पवनजय छिपकर बैठ गया और प्रहसित अन्तपुर मे अजना के पास पहुँचा। प्रणाम करके उसने कहा—'देवी! आप सफल-मनोरथ हुई, मैं पवन कुमार को लेकर आया हूँ।' हर्षातिरेक मे अजना की दशा कवि ने वसन्तमाला के द्वारा व्यजित कराई है

त णिसुणे ँवि भणइ वसन्तमाल। थोरसु-सित्त-थण-अन्तराल ॥
भव-भव-सचिय-दुह-भायणाएँ। एवड्डु पुण्णु जइ अजणाएँ ॥[3]

—जन्म जन्मान्तरो से दुख सचित करने वाली अजना का इतना भारी पुण्य।

इतने मे हर्षविभोर पवनजय स्वय आ पहुँचा और मधुर वाणी मे विनयालाप कर उसने अजना को अतीव आनन्द, सुख और सौभाग्य दिया। हाथ मे हाथ लेकर दोनो प्रणय-सेज पर शोभित होकर रमण मे तत्पर हो गए। प्रणय-वेग से परस्पर आलिंगन मे बँध गए दोनो और एक प्राण हो गए।[4] प्रेयसी रूप मे अभागिन अजना सौभाग्यवती वधू बन गई।

तुलसीदास प्रेमिकाएँ

प्रधान पात्र	गौण पात्र
१ सीता २ पार्वती	कोई नही है।

---

[1] One impulse from a vernal wood,
May teach you more of man,
Of moral evil and of good,
Than all the sages can
—(Ed) Matthew Arnold *Poems of Wordsworth*, p 138

[2] पउमचरिउ, १८।१।६–८।

[3] वही, १८।१२।४–५।

[4] वही, २६।१२।७–६।

तुलसी ने नारी के प्रेयसी रूप का चित्रण यद्यपि कम किया है, तथापि शालीनता, मर्यादा, आदर्श तथा सुरुचि के कारण तुलसी का 'प्रणय-चित्रण' साहित्यानुरागियो के लिए शाश्वत आकर्षण का केन्द्र बन गया है। नारी का उदात्त प्रणय-भाव ही तो तुलसी का दिशा-नियामक बना था,[1] तब क्यो न नारी का उदात्त चित्राकन तुलसी करते ?

पुष्प-वाटिका मे 'राम-सीता-प्रणय-चित्रण' हिन्दी साहित्य की ही नही, विश्व साहित्य की श्रेष्ठतम उपलब्धि कहा जा सकता है। सत्य-शिव-सुन्दरम् की ऐसी प्राण-प्रतिष्ठा सहज ही अन्यत्र किसी कवि के शृगार-चित्रण मे उपलब्ध नही हो पाती।

तुलसी के नारी-पात्रो मे मीता एव पार्वती ही प्रेमिका रूप मे आई है।

प्रधान पात्र

सीता—जनक की पौष्य-पुत्री के रूप मे तुलसी ने वाल्मीकि से सीता की परम्परा ग्रहण की है, किन्तु पुष्प-वाटिका मे स्वयवर से पूव 'राम-सीता' का मनोवैज्ञानिक प्रणय-चित्रण तुलसी की सवथा मौलिक उद्भावना ह।[2]

सीता गौरी-पूजन हेतु पुष्प-वाटिका मे आई हे। सखी ने 'राम' को देखकर गुण-कथन किया है, तो प्रणय का अकुर फूटा ह सीता के हृदय मे

> तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
> चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥[3]

उधर 'ककन किकिनी नूपुर धुनि सुनि' राम ने भी देखा और लगा— मानहुँ मदन दुदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही'।

अनुपम सौन्दर्य-राशि मीता के चन्द्र-मुख का राम क नयन-चकोरो न अपलक देखा

> अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
> भए बिलोचन चारु अचचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगचल॥[4]

राम ने पूणशालीनता एव आदर्श के साथ अपने हृदय मे प्रणय-भाव की स्थिति

---

[1] तीखे तीर खाकर घायल हरिण की भाँति, तुलसीदास ने अपनी प्राण-प्रिया 'रत्नावली' से मुह मोड लिया था जरूर, पर यह भी निस्सकोच कहा जाएगा कि वह निरुपमा, नयनाभिराम, काव्य-कोमला नारी उनकी आत्मा मे अचल आसन जमाए रह गई।

—रामानन्द शर्मा मानस की महिलाएँ, पृ० ११

[2] तुलसीदास ने सीता-विवाह तथा वनगमन आदि का विस्तारपूर्वक वणन करते हुए उसके स्वभाव के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओ पर प्रकाश डाला है, जबकि स्वयभू ने इसका केवल इने-गिने शब्दो मे उल्लेख किया।

—डॉ० गजानन साठे पउमचरिउ और रामचरितमानस, अध्याय ५

[3] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २२६।७–८।

[4] वही, २३०।३–४।

को स्वीकार किया है

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ।।
सो सबु कारन जान बिधाता । फरकहि सुभद अंग सुनु भ्राता ।।[1]

उधर 'लोचन ललचाने' सीता को प्रिय सखी ने 'प्रीति-पुरातन' के आधार सौन्दर्यागार राम की छवि दिखा दी

लता ओट तब सखिन्ह लखाए । स्यामल गौर किसोर सुहाए ।।
देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ।।[2]

अत्यन्त विलक्षण है तुलसी का शब्द-विन्यास ! 'हरषे जनु निज निधि पहचाने'—कहकर महाकवि ने गिरा को केवल सार्थक ही नही किया, अपितु धन्य भी कर दिया है । सीता मुग्ध हो गई और भूल गई तन-मन की सुधि •

थके नयन रघुपति छबि देखे । पलकन्हिहूँ परिहरी निमेषे ।।
अधिक सनेहँ देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।।[3]

सीता के पूर्वानुराग का हृदयस्पर्शी चित्रण तुलसी की काव्य-प्रतिभा का चमत्कार ही है । मर्यादा का पोषक कवि सीता की कामना जानता है, क्योंकि 'निज अनुरूप सुभग बरु मागा' का स्मरण उसे है । अत उसने सीता का भावपूर्ण चित्र अंकित कर दिया है

लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ।।
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी । कहि न सकहि कछु मन सकुचानी ।।[4]

राम को अपने हृदय मे सुप्रतिष्ठित कर लिया प्रिया सीता ने और नयन-द्वार बन्द कर लिए । प्रणय की रीति यही है ।[5] तुलसी-सा कुशल शिल्पी भला कैसे इसे सरलता से भूलता ? तभी किसी 'सयानी' सखी ने हाथ पकड़कर सीता को झकझोरा

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूपकिसोर देखि किन लेहू ।।[6]

सीता की लज्जा, कौमार्य, मर्यादा सभी तो बीच मे बाधक है, किन्तु प्रणय इसी लज्जा मे खिलने वाला शाश्वत मधुर पुष्प है । तुलसी ने किस कुशलता से सीता का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन किया—यह दर्शनीय है

सकुचि सीयँ तब नयन उघारे । सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे ।।
नख सिख देखि राम कै सोभा । सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा ।।[7]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २३१।३–४ ।
[2] वही, २३२।३–४ ।
[3] वही, २३२।५–६ ।
[4] वही, २३२।७–८ ।
[5] नैना अन्तर आव तू, ज्यों हौ नैन झपेउ । ना हौ देखौ और कौ, ना तुझ देखन देउ ।—कबीर
[6] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २३४।२ ।
[7] वही २३४।३–४ ।

सीता के मन का भोला, निश्छल प्रणय ! शकाओ से घिर गया सीता का मन। 'क्या सुकुमार हाथ धनुष तोडने मे समर्थ होगे ? हाय दैव ! पिता ने क्यो यह कठोर प्रण कर लिया ?'—यही है प्रणयी-हृदय की भावुकता का सजीव तथा हृदयस्पर्शी चित्रण। तुलसी का कवित्व चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है।

सखियो ने सीता को प्रेम के वशीभूत जानकर मनोवैज्ञानिक भय अनुभव किया—'अब क्या होगा ?' तभी एक सखी ने कहा—'चलो, देर हो गई है, कल फिर इसी समय आएँगे।'[1] और यह कहकर सखी हँसी। प्रश्न है—'क्यो हँसी सखी ?' उत्तर मिलेगा कवि तुलसी की व्यजना से, जो अभिधा-लक्षणा के पीछे से कह रही है—'सखी ! आज इतना ही, शेष कल। मैने जोर से बोलकर कहा है, अवश्य ही इन कुमारो ने भी सुन लिया होगा।' कवि-सम्राट् तुलसी ! तुम्हारी काव्य-प्रतिभा धन्य है।

कुल-कन्या की मर्यादा और उन्मुक्त प्रणय का सहज मानसिक अन्त सघर्ष सीता के हृदय मे हो रहा था। एक ओर कन्या की मर्यादा थी

गूढ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलबु मातु भय मानी ॥
धरि बडि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितु बस जाने ॥[2]

और दूसरी ओर था 'मुँह जोर तुरग'—सा प्रणय भाव

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढइ प्रीति न थोरि ॥[3]

केवल पुनरुक्ति प्रकाश अलकार का ही चमत्कार नही है यहाँ, अपितु 'बहोरि बहोरि' कहकर कवि ने सहज उत्कण्ठा का मनोभाव प्रत्यक्ष कर दिया है। मनोविज्ञान का सफल साहित्यिक प्रयोग तुलसी ने यहाँ किया है।

चरण बढ रहे थे सीता के, किन्तु हृदय बढना नही चाहता था। सुकुमार राम का अपूर्व रूप, उन्हे प्राप्त करने की तीव्र लालसा और कठोर शिव-धनुष तोडने वाले से सीता का विवाह करने का जनक जी का प्रण। सघर्ष था मन मे और सीता लौट रही थी अपने घर, मन मे राम की सलोनी मूर्ति सँजोए हुए

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति ॥[4]

अत्यन्त श्रद्धा भाव से सीता ने शिव-प्रिया गौरी के समक्ष सब कुछ कह दिया, 'कुछ न कहकर' और प्रणय की सफलता माँगी सीता ने

मोर मनोरथु जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के ॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारण तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही ॥[5]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २३४।५–६।

[2] वही, २३४।७–८।

[3] वही, दोहा २३४।

[4] वही, २३५।१।

[5] वही, २३६।३–४।

और भावना को आशीष मिल गया। 'पूजिहि मन कामना तुम्हारी'—गौरी का वचन था। सीता के हर्ष का पारावार नही था, बाएँ अग फडक रहे थे

जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मजुल मगल मूल बाम अग फरकन लगे ॥[1]

सजे हुए स्वयवर-मण्डप मे राम-लक्ष्मण विराजमान हैं। सीता की दृष्टि सबसे पृथक् रूप मे राम को देख रही है

रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहि कथनीया ॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ ॥[2]

राम के प्रति सीता के हृदय का अनन्य प्रणय-भाव निराला तथा अनिर्वचनीय है, क्योकि वह हृदय की सात्त्विक अनुभूति है, जो शब्दातीत है। उसे कोई कवि कहे भी, तो भला कैसे कहे? सीता का सौन्दर्य भी अनुपम तथा असीम है, शब्दातीत है, अनुपमेय है—'सिय सोभा नहि जाइ बखानी' यही कहकर कवि ने सम्यक् चित्रण कर दिया है।

सीता को सजाकर, गीत गाती हुई, सखियाँ स्वयवर मण्डप मे ले चली

पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला ॥[3]

और राम को देखकर सीता—'चकित चित रामहि चाहा'—राम को अपलक देखने लगी। तभी मर्यादा का ध्यान उन्हे सयत कर गया

गुरुजन लाज समाजु बड देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥[4]

आगत समस्त राज-समाज धनुष नही तोड सका और अन्तत राम धनुष तोडने को उठे। धनुष उनके हाथो मे है, किन्तु इधर सीता का प्रणयी-हृदय देवो से मनौतियाँ माँग रहा है।[5]

प्रणयिनी सीता का मन अत्यधिक आतुर और परिपूर्ण है अन्त सघर्ष से

नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहि कछु लाभु न हानी ॥[6]

लाज का कठिन बधन, राज-कन्या की मर्यादा सीता को रोक रही है कुछ कहने से

गिरा अलिनि मुख पकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना ॥[7]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, सोरठा २३६।
[2] वही, २४२।६–७।
[3] वही, २४८।६।
[4] वही, दोहा २४८।
[5] वही, २५७।४–६।
[6] वही, २५८।१–२।
[7] वही, २५९।१–२।

यही है तुलसीदास की मौलिक उद्भावना, जिसने उन्हे और उनकी प्रणयिनी सीता को विश्व-वन्द्य बना दिया है। इसी मर्यादा तथा शालीनता ने सीता के चरित्र को वह गरिमा प्रदान कर दी है, जिसको भारतीय सस्कृति सदैव लेकर आगे बढती रही है।

अन्तत राम ने—दोउ चापखड महि डारे—धनुष भग कर ही दिया। सर्वत्र आनन्द का सागर उमड पडा और 'सियँ जयमाल राम उर मेली'।

प्रणयिनी सीता की 'प्रीति-पुरातन' सफल हुई और सीता अब राम की आदर्श वधू के रूप मे प्रतिष्ठित हैं। राम के साथ उनका सौन्दर्य अलौकिक हो गया है

सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिगारु मनहुँ एक ठोरी ॥[1]

पार्वती—'पार्वती' परम्परा से पौराणिक नारी-पात्र के रूप मे ही चित्रित की जाती रही हे। शिव की शक्ति, वामा, अर्धांगिनी रूपो मे पार्वती का चित्रण हम पाते है। तुलसी ने अपनी नवोन्मेषकारिणी, विलक्षण काव्य-प्रतिभा से पार्वती के चरित्र मे नारी के उच्चस्तरीय गुण—दृढता, पातिव्रत्य, निष्ठा, स्नेह आदि के प्रकाशन के साथ-साथ निम्न स्तरीय अवगुण—सदेह, हठ तथा अहवादिता का प्रकाशन भी किया है, किन्तु तुलसी का आदर्शोन्मुख कवि-दृष्टिकोण उदात्त की विजय दिखाकर भारतीय चेतना का मार्ग-दर्शन करता रहा है।

पार्वती के हृदय मे शिव के प्रति अनुराग का बीज नारद के द्वारा बो दिया गया है, वही अब पल्लवित होकर उनके चरित्र को गरिमा प्रदान कर रहा है।

महर्षि नारद के द्वारा निर्देशित तप-साधना के कठिन मार्ग पर पार्वती चल पडी, मन मे अपने वर का स्मरण करके

सती मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥[2]

भारतीय कन्या का आदर्श लेकर पार्वती निष्ठापूर्वक तप-साधना मे लीन हो गई। पूर्वानुराग का उदात्त रूप है यह

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाई बिपिन लागी तपु करना ॥[3]

प्रिय का सतत् ध्यान ही प्रणय की कसौटी है। प्रणय असीम शक्ति का स्रोत है, जो बडी से बडी बाधा के हिमालय को लाँघ देने की शक्ति क्षण भर मे ही दे देता है। पार्वती—सुकुमार, राज-कन्या, सुखो मे पोषित बाला, सहसा समस्त भोगो को विस्मृत कर बैठी

अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मनु लागा ॥[4]

तुलसी शब्द-सिद्ध कवि हैं। अनुराग का प्रयोग नितान्त सार्थक है, और 'बिसरी देह

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २६५।७।
[2] वही, ६५।५।
[3] वही, ७४।१।
[4] वही, ७४।२-३।

तपहिं मनु लागा' से इसी अनुराग की दृढता, मानो स्वय मुखर हो उठी है ।

पार्वती ने अत्यन्त कठिन तप किया पूर्वजन्म के पाप का पश्चात्ताप करने के लिए और अन्तत उनकी दृढता तथा निष्ठा सफल हुई

देखि उमहि तप खीन सरीरा । ब्रह्म गिरा भै गगन गभीरा ।।
भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि ।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ।।[1]

इस मन-चीती वाणी को सुनकर तप से क्षीण पार्वती का मन हर्षातिरेक से नाच उठा

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरषानी ।।[2]

पार्वती का यह प्रणयाकर्षण एकागी नही है । 'तुल्यानुराग' का आदर्श यहाँ तुलसी ने रक्खा है

जब ते सती जाइ तनु त्यागा । तब ते सिव मन भयउ बिरागा ।।[3]

शिव के मन मे उत्पन्न इसी 'बिरागा' की निवृत्ति के लिए पार्वती ने निष्ठा-पूर्वक यह कठिन तप किया । स्वय उनके प्रिय शिव से आराध्य राम ने पार्वती को सादर विवाह कर ले आने का आग्रह किया—जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागे देहु ।

शिव ने अभी अपने हृदय मे पार्वती की दृढता और निष्ठा की परीक्षा करने का निश्चय किया और सप्तर्षि को पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने भेज दिया ।[4] मुनियो के द्वारा तप-साधना का कारण पूछे जाने पर पार्वती ने सहज भाव से कह दिया

देखहु मुनि अबिबेकु हमारा । चाहिअ सदा सिवहि भरतारा ।।[5]

अब तो निष्ठा ने 'विनय' को भी ला दिया है पार्वती के व्यक्तित्व मे । 'अबिबेकु' कहकर क्या व्यजना से 'विवेकमयी' नही बन गई पार्वती ? सप्तर्षि ने बहुविध परीक्षा ली, पर्वत-पुत्री अपनी निष्ठापूर्ण तपस्या मे अविचलित ही रही । नारद जो मार्ग-दर्शक गुरु थे न ? उनमे निष्ठा क्यो कर न होती ? पार्वती का मन जिसमे रम गया, अब उसी मे रमा रहेगा । अनन्य प्रणय-भाव है पार्वती का

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम ।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ।।[6]

यही है भारतीय नारी का सर्वोच्च आदर्श, उसकी गरिमा का मूलाधार तथा प्रणय की अनन्यता एव सफलता का अनुपम दिग्दर्शन, जो पार्वती की तप-निष्ठा से यहाँ ध्वनित हुआ है ।

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ७४।८ तथा दोहा ७४ ।
[2] वही, ७५।५ ।
[3] वही, ७५।७ ।
[4] वही, दोहा ७७ ।
[5] वही, ७८।७ ।
[6] वही, दोहा ८० ।

अन्त मे पार्वती ने सप्तर्षि को अपना दृढ निश्चय सुनाकर निरुत्तर कर ही दिया। पार्वती के उत्तर मे शिव के प्रति उनका असीम अनुराग झलक रहा है।

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ सभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥[1]

धन्य हो गए सप्तर्षि इस अनन्या प्रिया का दर्शन करके, जिसमे साक्षात् निष्ठा ही मूर्तिमान् हो गई थी।

सप्तर्षि ने जानकर हिमवान् को भेजा और पिता अपनी प्रिय कन्या को घर ले आए। उधर सप्तर्षि ने शिव को पार्वती की प्रणय-निष्ठा का समाचार दिया, तो 'भए मगन सिव सुनत सनेहा'। समस्त देवताओ ने मिलकर शिव से प्रार्थना की

पारबती तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अगीकारा॥[2]

अन्तत शिव 'वर रूप मे सजकर' हिमवान् के द्वार पर पार्वती के प्रणय को धन्य कर उनका पाणिग्रहण करने आ ही गए। पार्वती की माता ने जब शिव का 'औघड रूप' देखा, तो भयभीत हो गई। कन्या पार्वती ने माँ को समझाया

करम लिखा जौ बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अका। मातु ब्यर्थ जनि लेहू कलका॥[3]

इस तर्कपूर्ण वाणी को सुन माता निरुत्तर हो गई। पार्वती का शृगार करके सखियाँ उन्हे लग्न-मण्डप मे ले आई और विधिपूर्वक पाणिग्रहण-सस्कार हो गया। और पार्वती का प्रणय, उनकी असीम निष्ठा, दृढता तथा अनन्यता के कारण अपना चरम प्रेय प्राप्त कर कृतकृत्य हुआ। पार्वती अब शिव की वधू बन गई। तुलसी ने पार्वती के चरित्र मे भारतीय नारी के गौरव को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी है, जिसका प्रतिपक्षी विश्व साहित्य मे सभवत कही नही मिलेगा। तुलसी की पार्वती वस्तुत नारीत्व की गरिमा हैं, शाश्वत शृगार हैं, अनुपम अलकार है तथा भारतीय सस्कृति की आगार है।[4]

निष्कर्ष

प्रमुखत स्वयभू ने प्रणय-भावना को इन्द्रियगत अर्थात् स्थूल रूप मे देखा है, जिससे उनके चित्रण मे लौकिक भावो का प्रकाशन सहज हो गया है, यथा—अजना-पवनजय-मिलन का स्थूल कामपरक चित्रण[5] स्वयभू ने किया है, कल्याणमाला का मासल-रूप चित्रण[6] तथा मन्दोदरी का आगिक-रूप-चित्रण[7] स्वयभू ने अत्यन्त

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ८१।५–६।
[2] वही, ८६।४।
[3] वही, ९७।७–८।
[4] वही, १०१।१–३।
[5] पउमचरिउ, २८।१२।७–९।
[6] वही, १६।१५।१–९।
[7] वही, १०।३।२–९।

कुशलता एव रुचि के साथ किया है। दूसरी ओर तुलसी ने प्रणय को अतीन्द्रिय-भाव मान कर उसमे सहज सयम, मर्यादा, गुरुता एव उदात्त मूल्यो को समाहित कर दिया है। 'सीता-राम-मिलन' प्रसग इस दृष्टि से सदैव स्मरणीय रहेगा।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर यही निष्कर्ष हम लेते हैं कि स्वयभू की प्रणयिनी नारियाँ बहिर्मुखी अधिक हैं, अन्त मुखी कम, किन्तु तुलसी की सीता एव पार्वती मूलत अन्त मुखी, उदात्त व्यक्तित्व की अधिस्वामिनी हैं। स्वयभू का प्रणय-भाव 'इद' से सर्वाधिक शासित है (काम की दस अवस्थाओ का विशद चित्रण)[1] जबकि स्वयभू की अपेक्षा तुलसी का प्रणय-भाव सदैव 'पराहम्' से शासित रहा है।[2] स्वयभू मनोभावो का सूक्ष्म-चित्रण उतना नही कर सके, जितना सहज तुलसी कर गए। सीता के मन मे व्याप्त भावनाओ के भीषण सघर्ष को, लालसा, उत्कण्ठा, उत्सुकता तथा चिन्ता आदि को तुलसी ने सूक्ष्म रूप से चित्रित किया है।

सामाजिक एव सास्कृतिक चेतना की दृष्टि से स्वयभू की प्रणयिनी नारियो का चरित्राकन यद्यपि सयत ही है, तथापि सामाजिक, मुख्यत पारिवारिक मर्यादाओ का जो हृदय-स्पर्शी चित्रण तुलसी ने कर दिया है, वह सर्वथा अनुपमेय ही है।

तुलसी का नारी के प्रति—विशेषत सीता एव पार्वती के प्रति पूज्य-भाव रहा है, जो उनकी सास्कृतिक चेतना का ही परिणाम है, इस क्षेत्र मे स्वयभू उनसे पीछे रह गए है।

देश-काल का सामान्य चित्रण दोनो मे हुआ है, किन्तु स्वयभू ने सिद्धहस्त कलाकार की भाँति प्रकृति के जो मनोहारी दृश्य शब्दाकित किए हैं, वे मात्र रमणीय ही नही, अपितु प्रभावोत्पादक भी हैं। प्रकृति का उद्दीपन रूप मे चित्रण[3] तथा जल-क्रीडा का मादक चित्रण[4] स्वयभू की सर्वथा अनूठी उपलब्धि हैं और तुलसी इस दृष्टि से उनकी समता करने मे सक्षम नही हैं। प्रकृति का चित्रण तुलसी मे साध्य नही, साधन रूप मे हो पाया है।

पौराणिक तत्त्व स्वयभू मे नही, तुलसी मे अवश्य है। स्वयभू के नारी-पात्र स्वतन्त्र चेतना वाले हैं, किन्तु तुलसी की सीता, पार्वती पौराणिक रूप वाली भी हैं—अत तुलसी उन्हे 'जगदबा'[5] तथा 'भवानी'[6] आदि कहने मे सकोच नही करते।

---

[1] पउमचरिउ, १८।५।१–६।

[2] थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
—रामचरितमानस, बालकाण्ड, २३२।५–७

[3] पउमचरिउ, १८।११।४–६।

[4] वही, २६।१५।१–६।

[5] सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥
—रामचरितमानस, बालकाण्ड, २४६।२

[6] मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदबा तव सुता भवानी॥ —वही, ९८।२

तुलसी 'अवतारवाद' के समर्थक-पोषक हैं, अत सीता को 'पार्वती' का आशीष दिलाना उन्हे भला लगा है।[1] स्वयभू मे स्वाभाविकत इस दृष्टि का अभाव ही मिलेगा। जैन-आगमो का यत्र-तत्र प्रभाव उन पर भी देखा जा सकता है।

कवि-दृष्टिकोण के आधार पर ही स्वयभू तथा तुलसी पृथक् सत्ता रखते हैं। समान राम-कथा होने पर भी प्रणयिनी नारी-पात्रो मे भिन्नता स्पष्टत कवि-दृष्टि का अन्तर निर्देशित करती है। स्वयभू जैन-धर्मानुयायी हैं, उनकी दृष्टि उसी के अनुरूप रहनी स्वाभाविक है और तुलसी हिन्दू-धर्म के प्रबल पोषक हैं—अत उनमे तदनुरूप नारी-परिवेश आना नितान्त स्वाभाविक है। कवि-दृष्टि ने ही तो तुलसी को विश्व-कवि का गौरव दिया है, जिसे स्वयभू प्राप्त नही कर सके हैं। निष्कर्षत स्वयभू यथार्थवादी दृष्टिकोण के कवि हैं, तो तुलसी में आदर्श तथा मर्यादा के पोषण का दृष्टिकोण प्रबल रहा है।

---

[1] बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥

—रामचरितमानस, बालकाण्ड, २३६।५

६

पत्नियाँ

नारीत्व का चरम अभिप्रेत है मातृत्व और मातृत्व का अनिवार्य सोपान है 'पत्नीत्व'। अनादिकाल से नर-नारी के मध्य यही आत्मिक आकर्षण रहा है, जिसने मानव-सृष्टि का सृजन किया है। नारी की पूर्णता है 'पुरुष तत्त्व' से सयुक्त होकर अपनी प्रजनन-शक्ति को सार्थक करने मे। मीमासा-शास्त्र मे इसी तत्त्व-दृष्टि का प्रतिपादन हुआ है कि 'स्त्रीधारा पुरुष-धारामयी होकर ही कैवल्य की अधिकारिणी होती है।'[1] इस निमित्त समाज मे विवाह-सस्कार का उदय हुआ। नर, नारी का पाणिग्रहण करके ही 'स्त्रीधारा' को 'पुधारामयी' बनाने का धार्मिक-नैतिक-मामाजिक अधिकार प्राप्त करता है।

मानवेतर प्राणियो मे ये दोनो धाराएँ—'स्त्री एव पुरुष-धारा'—प्राकृतिक नियमो से पूर्णत शासित होकर नियमित रूप से क्रमश वृद्धि पाती हैं। मानव की सज्ञा तक पहुँचकर दोनो ही—नर तथा नारी—पूर्णावयव हो जाते हैं। उनके अन्न-मय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोषो का पूर्ण विकास हो जाता है, साथ ही साथ उनमे प्राकृतिक नियमो पर बलात्कार करने की शक्ति भी आ जाती है। यही कारण है कि मानव समाज—नर एव नारी—मे प्रकृति के नियमो का उल्लघन करके अनर्गल, अनियन्त्रित रूप से यौनाचार, भोग एव मनमाना आहार-विहार करने की प्रवृत्ति बलवती हो जाती है और पतन की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।

वस्तुत विवाह का उद्देश्य स्त्रीधारा को पुरुषधारा से मिलाकर मुक्ति की अधि-कारिणी बनाना और साथ ही साथ दोनो की अनर्गल, अनियन्त्रित तथा अबाध पशु-

---

[1] स्त्रीधारा पुधारामयी कैवल्याधिकारिणी —कर्ममीमांसा-दर्शन, धर्मपाद, सूत्र—५६

प्रवृत्तियो को नियमित कर दोनों की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति कराना भी है ।[1]

वस्तुत 'सप्तपदी' बनकर ही नारी को गृहिणी का रूप मिलता है, जिसे नारी अपने जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि मानती है ।[2] विवाह मानव-जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सस्कार है, क्योकि वैवाहिक जीवन मे प्रवेश करते ही नर-नारी मे परिवार एव समाज के प्रति अपने दायित्वो का यथार्थ बोध होता है । ऐसे मानव-समाज की कल्पना भी नही की जा सकती, जिसमे विवाह का अस्तित्व ही न हो ।[3]

भारतीय सस्कृति मे आश्रम-व्यवस्था का प्रचलन जिस दृढ सामाजिकता का परिचायक है, वह 'गृहस्थाश्रम' से ही आ पाती है । वस्तुत 'ब्रह्मचर्याश्रम' तो मानव-जीवन की तैयारी है, 'गृहस्थाश्रम' मानव-जीवन की सार्थकता का केन्द्र-बिन्दु है, जहाँ से धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधना आरम्भ होती है, 'वानप्रस्थाश्रम', 'अर्थ तथा काम' को क्रमश छोडकर, 'धर्म' की ओर बढने का दिशा-बोध देता है और 'सन्यास आश्रम' मानव-जीवन के समस्त विरोधाभासो तथा विग्रहो को त्यागकर मोक्ष—'चरमानन्द'—प्राप्ति का मार्ग है ।

निश्चय ही गृहस्थ-धर्म विश्व-समाज की प्रगति का मूल है, जहाँ प्राप्ति मुख्य नही होती, त्याग सर्वोच्च होता है । दैहिक-मिलन के द्वारा आत्मिक-मिलन की ओर बढना ही गृहस्थ-धर्म की साधना है और इसमे पति एव पत्नी दोनो समान रूप से सहकर्मी-साधक होते हैं ।

विवाह यो तो नर एव नारी दोनो की ही जीवन-धारा को नवीन गति, दिशा एव मोड देता है, तथापि नारी-जीवन इससे विशेष प्रभावित होता है, क्योकि प्रजनन की नारी-शक्ति को सार्थकता प्राप्त होती है और वह 'जननी' की गरिमा प्राप्त करती है । 'मातृत्व' की अनिवार्य शर्त है नारी का पत्नी होना ।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समाज का मूल है नारी का पत्नीत्व । जो पत्नी नही, वह माँ भी नही, जबकि पत्नी होकर माँ बनना सर्वथा अनिवार्य नही । अत नारी-जीवन मे निश्चय ही 'पत्नीत्व' का सर्वोपरि महत्त्व है—दार्शनिक दृष्टि से भी और सामाजिक दृष्टि से भी ।

नारी अपने प्रत्येक रूप मे मानव-समाज का नियमन करती रही है, अत जीवन के महाकाव्य मे नारी का महत्त्वाकन सहज ही है ।[4] आदियुग के कवि से लेकर आज

---

[1] स्त्री के लिए पातिव्रत्य और पुरुष के लिए एकपत्नीव्रत-धर्म का पालन ही प्रशस्त मार्ग है ।
—कल्याण (हिन्दू-सस्कृति अक), पृ० ६१५ ।

[2] निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया । —मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० २२२

[3] डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमो मे नारी-जीवन, पृ० ३९ ।

[4] मानव-समाज के केन्द्रस्थल में निर्द्वन्द्व रूप से नारी का निवास है—नारी के अप्रतिम प्रेम-पालने मे झूलकर, उसी की मृदु-मन्द लोरियाँ सुनकर, उसी की स्नेह-उर्मिल आँखो में आँखें डालकर,

तक के प्रत्येक कवि ने नारी को 'नर' की अर्धांगिनी, प्रिया, पत्नी रूपो में चित्रित किया है। जीवन की अभिव्यक्ति कहा जाने वाला काव्य 'नारी' के 'पत्नीत्व' से क्योकर अछूता रहता ?

स्वयभू एव तुलसी ने अपने महाकाव्यो—'पउमचरिउ' तथा 'रामचरितमानस' मे 'पत्नीत्व' का सर्वाधिक चित्रण किया है। नारी के 'पत्नीत्व' को दिशा-बोध कराने वाले कतिपय मान्य नैतिक-सामाजिक नियम सदैव समाज मे रहे हैं, जिनके पालन करने या न करने के आधार पर नारी के पत्नी-रूप को विभाजित किया गया है, यथा—आदर्श पत्नी, मध्यम पत्नी तथा अधम पत्नी।

यह विभाजन परम्परागत मान्य नैतिक-सामाजिक मान्यताओ पर आधारित है, यथा—पातिव्रत्य, त्याग, निष्ठा, स्नेह आदि का पालन करना या न करना। पतिव्रता नारी को भारतीय प्रज्ञा ने सदैव सर्वोच्च सम्मान देकर सीता, सावित्री, दमयन्ती के आदर्श अपनी ललनाओ के लिए स्थापित किए है। भारतीय सस्कृति मे नारी के इस उदात्त रूप का महिमगान अत्यन्त विस्तारपूर्वक किया गया है, जिससे सम्पूर्ण सस्कृत-साहित्य अनुप्राणित हुआ है। इसी परम्परा मे युगद्रष्टा कवि कबीर का कथन है

पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारौ कोटि सुरूप॥

पतिव्रत-धर्म का पालन नारी का सर्वोच्च आदर्श भारतीय सस्कृति मे माना गया है, इसी का पालन करने से वह परम पूज्या तथा आदरणीया बनती है।

'स्कन्दपुराण' मे तो पर-पुरुष-गामिनी, प्रच्छन्न पतिव्रता, कुलटा नारी को अत्यन्त हेय मानते हुए, उसे जन्मान्तर मे विधवा होने का दण्ड भी दे दिया गया है

या नारी तु पति त्यक्त्वा मनोवाक्काय कर्मभि।
रह करोति वै जार गत्वा वा पुरुषान्तरम्॥
तेन कर्म विपाकेन सा नारी विधवा भवेत्॥[1]

'सतीत्व' नारी का आभूषण माना गया है। स्वयभू एव तुलसी के युग मे तो नारी का आदर्श 'पातिव्रत्य-पालन' ही रहा है, अत उसे छोड पाना न सभव ही है और न ही समीचीन है।[2] हमारी धारणा है कि कतिपय आदर्श तथा मूल्य स्वय मे शाश्वत अवश्य होते है, जो देश-काल से अप्रभावित रहते है। नारी के 'पतिव्रत-धर्म-पालन'

उसी की ममत्वपूर्ण चूम-पुचकार से चौंककर, उसी के प्रेमविह्वल वक्ष से चिपककर 'नर' सोल्लास नयनोन्मीलन करता आया है। फिर मानव का महाकाव्य—उसका रसार्णव—नारी की भ्रू-भगिमा पर ही क्यो न नाचता चले ? —रामानन्द शर्मा मानस की महिलाएँ, पृ० ११

[1] कल्याण (नारी अक)।

[2] नारी की स्वाभाविक सलज्जता, विनम्रता, विनयशीलता और गुरुजनो के प्रति सेवा-भावना, गृहस्थी के छोटे से छोटे कार्य को करने की चेष्टा एक पाश्चात्य समालोचक को हिन्दू-स्त्रीत्व की अधोगति के द्योतक हो सकते हैं—परन्तु एक सामान्य भारतीय मस्तिष्क के लिए इनका सम्बन्ध हिन्दू-परिवार के वास्तविक सुख और शान्ति से है। —डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०४

का आदर्श भी हमे शाश्वत प्रतीत होता है।

स्वयभू ने नारी-पात्रो के पत्नी-रूप का चित्रण करते हुए निश्चय ही अपने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक अनुभवो को आधार बनाया होगा।

स्वयभूदेव पत्नियाँ

	प्रधान पात्र	गौण पात्र	
(उत्तम)	१ सीता	१ अनगकुसुम	२ अमृतमती
	२ अपराजिता	३ कनकमाला	४ तरगमाला
	३ सुमित्रा	५ श्रीमाला	६ भानुमती
	४ सुप्रभा	७ विदग्धादेवी	८ कमलावती
	५ अजना	९ विजया	१० तनूदरा
	६ वनमाला	११ ध्रुवा	१२ श्रीसपदा
	७ लकासुन्दरी	१३ रत्नावली	१४ मानसुन्दरी
(मध्यम)	१ कैकेई	१५ कैकसी	१६ कौशकी
	२ मदोदरी	१७ केतुमती	१८ मनोवेगा
(अधम)	१ उपरभा	१९ पुष्परागा	२० कामलेखा
	२ चन्द्रनखा	२१ कनकप्रभा	२२ पुष्पावती
		२३ दुर्नयस्वामिनी	२४ अनुराधा
		२५ विशल्या	२६ सुप्रभा
		२७ सुतारा	

प्रधान पात्र

सीता—परम्परा से प्राप्त सीता के व्यक्तित्व मे हम एक निश्चयात्मक बुद्धि-वाली, निष्कपट, सरलहृदया, आत्म-सम्मान के भाव से सपन्न तथापि अतिशय स्नेहमयी, निरीह, महत्त्वाकाक्षा-रहित, विनीत, नियमशीला, सयमशीला कुलवधू का चित्र पाते हैं।[1] सीता मे आदर्श भारतीय कुलवधू का आदर्श पूर्णतया प्रस्फुटित हुआ है।[2] 'वाल्मीकिरामायण' मे आदिकवि ने 'एकपत्नीव्रत' तथा पतिव्रत-धर्म- पालन का उल्लेख किया है। सीता को पतिव्रता के रूप मे 'वाल्मीकिरामायण' मे चित्रित किया गया है

इह लोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ॥ (२, २९, १८)

सीता को आदिकवि ने प्रियतम-प्रिया तथा पति द्वारा सम्मानिता पत्नी के रूप मे अनेक स्थलो पर चित्रित किया है। सीता के हृदय मे राम के प्रति दृढ निष्ठा 'वाल्मीकिरामायण' मे चित्रित हुई है। सीता को राम का एक निष्ठप्रेम मिला, यह

[1] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०३।

[2] रामचन्द्रदेव तुलसी और तुकन, पृ० १३२।

आदि-काव्य के राम का चरित्र-चित्रण देखकर प्रतीत होता है ।[1]

पत्नी रूप मे सीता का अत्यन्त उदात्त चरित्र आदिकवि से ही परम्परित रूप मे चला आया है । जैन कवि विमलसूरि ने भी परोक्ष रूप से राम तथा सीता को जन्म-जन्मान्तर का युगल स्वीकार कर, सीता के आदर्श पत्नीत्व की ओर स्पष्ट सकेत किया है

जपन्ति एक्कमेक्क, विलक्खवयणा नराहिवा सव्वे ।
जा जस्स पुव्वविहिया, भज्जा सा तस्स उवणमइ ॥
रामेण तओ सीया, परिणीया सपयाएँ परमाएँ ।[2]

अर्थात् लज्जित मुख वाले राजा परस्पर कहने लगे कि जो जिसकी पूर्व कर्म द्वारा विहित भार्या होती है, वही उसे मिलती है । राम ने सीता के साथ परम वैभव से विवाह किया । अनन्तर भी विमलसूरि ने सीता को रामानुगामिनी, कुशल गृहपत्नी तथा कुलवधू के रूप मे चित्रित किया है

वइदेही वि य ससुर, पणमइ परमेण विणएण ॥
सव्वाण सासुयाण, काऊण चलण वन्दण सीया ।
सहियायण च नियय, आपुच्छिय निग्गया एत्तो ॥[3]

अर्थात् सीता ने भी ससुर को अत्यन्त आदर के साथ प्रणाम किया । सभी सासो के चरणो मे वन्दना करके तथा अपनी सखियो से अनुमति लेकर सीता भी (राम के साथ) वहाँ से निकली ।

सीता को जैन-काव्य-परम्परा मे राम की मूक-अनुगामिनी के रूप मे ही अधिकाशत चित्रित किया गया है । उनके चरित्र मे गतिशीलता का अभाव-सा यहाँ लगता है ।

स्वयभू ने इसी जैन-काव्य-परम्परा से सीता का चरित्र ग्रहण किया है, किन्तु अपनी भाव-प्रवणता तथा कुशल काव्य-प्रतिभा से उन्होने अनेक स्थलो पर सीता के चरित्र मे मौलिक उद्‌भावनाएँ भी की है ।

पत्नी रूप मे स्वयभू ने सीता का प्रथम परिचय 'वन-गमन-प्रसग' मे धैर्य-शीला, पति-परायणा तथा दृढ-व्रती पत्नी के रूप मे दिया है—इसी समय जाते हुए, नयनाभिराम राम ने सीता का मुख-कमल देखा, मानो चित्त ने चित्त को ही सचारित कर दिया हो । सीता भी (चित्त का सकेत पाकर) अपने भवन से वैसे ही निकल पडी, जैसे, हिमालय से गगा, छन्द से गायत्री, शब्द से विभक्ति निकलती है ।[4]

स्वयभू की उत्प्रेक्षा 'ण चित्तेण चित्तु सचालिउ' राम-सीता के 'एकात्म' होने

---

[1] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ३६४ ।
[2] पउमचरिय, पर्व २८।१३८–१३९ ।
[3] वही, पर्व ३१।१०३–१०४ ।
[4] पउमचरिउ, २३।६।१–४ ।

की व्यजना करती है और उनकी उपमाओ 'हिमालय से गगा जैसे, छन्द से गायत्री जैसे; शब्द से विभक्ति जैसे' ने तो सीता के चरित्र को अपूर्व सौन्दर्य ही दे डाला है। प्रस्तुत प्रसग एक ओर स्वयभू की कवित्व-शक्ति तथा कल्पना की उड़ान का परिचय दे रहा है, तो दूसरी ओर सीता के अन्त करण का परिचय भी।

स्वयभू सामाजिकता को नही भूले हैं। वन जाते हुए सीता अपराजिता और सुमित्रा के चरण छूकर और आज्ञा लेकर ही गई

हेट्ठा-मुह कम-कमलु णियच्छेंवि। अवराइय-सुमित्ति आउच्छेंवि ॥[1]

किस कुशलता से कवि ने दशरथ के घर मे विचार-वैषम्य को प्रदर्शित किया है—सीता ने केवल अपराजिता (कौशल्या) तथा सुमित्रा से आज्ञा ली—सम्भवत कैकेई तथा सुप्रभा (शत्रुघ्न माता) दूसरे पक्ष की हैं, जो राम-गमन के समय उपस्थित ही नही हैं। यहाँ कवि-दृष्टिकोण का तत्त्व ही प्रभावी रहा है।

स्वयभू ने वन को प्रस्थान करते हुए, मार्ग मे सीता के प्रति राम के लौकिक अनुराग का हल्का-सा, किन्तु अत्यन्त मर्मस्पर्शी सकेत कर दिया है—मार्ग मे राम ने कामोद्दीप्त पक्षी-युगल देखे, उन्हे देख राम ने सीता की ओर ताका और फिर 'हँसते हुए' बाजार मार्ग देखते हुए वे चल दिए।

त पेक्खेप्पिणु सुरय-महाहउ। सीयहें वयणु पजोयइ राहउ॥
पुणु वि हसन्तइँ केलि करन्तइँ। चलियइँ हट्ठ-मग्गु जोयन्तइँ ॥[2]

राम-लक्ष्मण-सीता नदी के तट पर आ पहुँचे, तो राम ने सेना लौटा दी। राम ने सीता को बाएँ हाथ पर चढाकर नदी पार कराई

पइसरन्ति तहिँ सलिलें भयकरें। रामहों चडिय सीय वामएँ करें॥
सिय अरविन्दहों उप्परि णावइ। णावइ णियय-कित्ति दरिसावइ॥
ण उज्जोउ करावइ गयणहों। णाइँ पदरिसइ धण दहवयणहों ॥[3]

अर्थात् राम ने भयकर जल मे प्रवेश किया। तब सीता उनके बाएँ हाथ पर ऐसे चढ गई, मानो लक्ष्मी कमल पर बैठकर अपनी कीर्ति प्रदर्शित कर रही हो, या आकाश को आलोकित कर रही हो या राम अपनी धन्या सीता रावण को दिखा रहे हो।

स्वयभू ने सीता का 'वामा' होना सार्थक कर दिया "चडिय सीय वामएँ करें" की अभिव्यजना करके। उत्प्रेक्षाओ के द्वारा एक ओर सीता का सौन्दर्य-चित्रण हुआ, तो दूसरी ओर भावी का सकेत 'पदरिसइ धण दहवयणहो' कहकर करा दिया गया है।

सीता के चरित्र की उज्ज्वलता को स्वयभू ने एक स्थल पर उत्प्रेक्षा के चमत्कार से प्रकट किया है, जो दर्शनीय बन गई है

---

[1] पउमचरिउ, २३।६।८।
[2] वही, २३।११।७–८।
[3] वही, २३।१४।५–७।

तहिँ पइसन्ती सीय लक्खण-राम-विहूसिय ।
विहिँ पक्खेहिँ समाण पुण्णिम णाइँ पदीसिय ।।[1]

अर्थात् लक्ष्मण तथा राम से विभूषित सीता वहाँ इस प्रकार प्रतिष्ठित हो रही थी, मानो दोनों समान पक्षों—शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष—के मध्य पूर्णिमा ही हो ।

विलक्षण काव्य-कल्पना है स्वयभू की । लक्ष्मण गौर वर्ण, अत शुक्लपक्ष, राम श्याम वर्ण, अत कृष्णपक्ष[2]—दोनो ही स्वय मे पूर्ण और दोनो के मध्य साकार पूर्णिमा 'सीता' । पूर्णिमा का उपमान सीता के निर्मल, पावन, पूत चरित्र की ओर कवि का सार्थक सकेत है ।

वन-गमन-प्रसग मे सीता का चित्रण स्वयभू ने राम की अनुगामिनी प्रिया के रूप मे ही किया है ।[3]

नारी-सुलभ भय का मनोभाव सीता मे स्वयभू ने चित्रित किया है । लक्ष्मण-सिहोदर युद्ध[4] के समय सीता अत्यन्त भयभीत है—इधर राम-पत्नी सीता शकित हो उठी, मानो भोली हरिणी ही भयभीत हो उठी हो । राम से बोली—'देखिए, देखिए, समुद्र-जल-सी गरजती शत्रुसेना आ रही है । निश्चल मत बैठिए, धनुष उठाइए । शायद लक्ष्मण का युद्ध मे अन्त हो गया है ।'[5]

सीता को कोमलागी तथा श्रम-विह्वला के रूप मे भी स्वयभू ने चित्रित किया है । लक्ष्मण से जल लाने को राम कहते हैं, क्योकि 'सीता दूर से चलकर आने के कारण प्यास से आकुल, हिमाहत कमलिनी-सी कान्तिहीन हो गई है'

दूरागमणे सीय तिसाइय । हिम-हय-णव-णलिणि व विच्छाइय ।।[6]

सीता को भयभीता पत्नी के रूप मे स्वयभू ने पुन चित्रित किया,[7] जिससे प्रतीत होता है कि कवि सीता को नितान्त लौकिक चरित्र मानता है । उसने सामान्य धरातल पर सीता को लाकर रख दिया है । सीता निस्सकोच भाव से प्रियतम राम से शीतल जल लाकर देने का आग्रह करती है

जलु कहि मि गवेसहो णिम्मलउ । ज तिस-हरु हिम-ससि-सीयलउ ।।[8]

राम-सीता के मध्य स्वाभाविक पति-पत्नी सुलभ हास-परिहास स्वयभू ने

---

[1] पउमचरिउ, २४।११।६ तथा ३२।३।१३ (बिजली से अचित मेघो की उत्प्रेक्षा) ।

[2] स्यामल गौर किसोर सुहाए । —रामचरितमानस, बालकाण्ड, २३२।३

[3] पउमचरिउ, २५।७।१ तथा २५।८।१–६ ।

[4] वही, २५।१७।१–६ ।

[5] वही, २५।२०।१–३ ।

[6] वही, २६।६।४ ।
तुलसीय पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दए मग मे डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ।। —कवितावली

[7] वही, २७।२।६–८ ।

[8] वही, २७।१२।३ ।

दिखाया है,[1] जो इन पात्रो के चरित्र के प्रति उनके दृष्टिकोण का परिचायक है। इसी क्रम मे एक स्थान पर तो स्वयभू ने सीता मे निरन्तर होने वाले हिंसापूर्ण युद्धो तथा इधर-उधर घूमते रहने के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया दिखाई है

तं णिसुणेवि सीय मणे कम्पिय। भीय-विसन्थुल एव पजम्पिय ॥
'अम्हहुँ देसे देसु भमन्तहुँ। कवणु पराहउ किर णासन्तहुँ ॥[2]

अर्थात् सीता मन मे कांप उठी—एक देश से दूसरे देश मे घूमते और मारे-मारे फिरते हुए हम लोगो पर कौन-सा पराभव आने वाला है।

निश्चय ही स्वयभू ने सीता को सामान्य नारी बना दिया है, जो रक्तपात और घुमक्कड जीवन से त्रस्त हो गई है।[3]

स्वयभू की कुशलता का एक अनुपम चित्र भी दर्शनीय है। राम-लक्ष्मण सगीत मे निपुण हैं। राम वीणा-वादन कर रहे हैं, लक्ष्मण शास्त्रीय-सगीत मे मग्न हो रहे है। दोनो की ताल पर सीता मनोरम नृत्य कर रही है, जिसमे नाट्य-शास्त्रोक्त सभी गुण विद्यमान है

ताल-विताल पणच्चइ जाणइ। णव रस अट्ठ भाव जा जाणइ ॥
दस दिट्ठिउ वावीस लयाइँ। भरहे भरह-गविट्ठइँ जाइँ ॥[4]

स्वयभू राज्याश्रित कवि थे, अत शास्त्रीय-सगीत एव नृत्य के ऐसे मनोहर आयोजन उनकी कल्पना मे अवश्य रहे होगे, जिनसे उन्होने अपनी 'मानवी-सीता' का अलकरण किया है। सीता को जैन-धर्मानुकूल शील-व्रत मे दीक्षित होते हुए भी स्वयभू ने दिखाया है,[5] जो उनकी धार्मिक दृष्टि का परिचायक है। यतियो का सीता द्वारा सत्कार तथा राम सहित उनकी चरण-वन्दना आदि सीता के गृहिणी रूप का स्पष्ट सकेत करते है।[6] सीता मे नारी-सुलभ करुणा, दया, ममता का सकेत जटायु के प्रति सीता के कथन से हो जाता है।[7] सुन्दरी रूप मे चन्द्रनखा का रुदन सुनकर सीता करुणा से आप्लावित हो जाती हैं और करुणार्द्र वाणी मे राम से कहती हैं—आर्य ! देखो तो वह लडकी क्यो रो रही है ? जान पडता है, इस पर भारी दुख है।

पभणइ जणय-सुय। 'वल पेक्खु कण्ण किह रोवइ।
ज कालन्तरिउ। त दुक्खु णाइँ उक्कोवइ' ॥[8]

---

[1] पउमचरिउ, ३०।३।७–६।
[2] वही, ३२।२।५–६।
[3] वही, ३६।५।१–५।
[4] वही, ३२।८।७–८।
[5] वही, ३४।६।४।
[6] वही, ३४।१२।५–६।
[7] वही, ३५।२।७।
[8] वही, ३६।११।६।

सीता को सामान्य नारी रूप मे स्वयभू ने कुशलतापूर्वक चित्रित किया है । उसे राम-लक्ष्मण द्वारा रक्षिता दिखाकर स्वयभू ने नारी को पुरुष से शक्ति मे कम माना है—राक्षस सेना का सहार करते हुए लक्ष्मण ने राम से कहा—देव ! आप सीता की रक्षा प्रयत्नपूर्वक करें, मेरी सहायता को तब आइए, जब मै सिंहनाद करूँ ।

तुहुँ सीय पयत्तें रक्खु देव । हउँ धरिम सेण्णु मिग-जूहु जेम ॥[1]

रावण को दूषण ने सीता के अपूर्व सौन्दर्य की सूचना दी, और ललचा दिया रावण को

णारि-रयणु णिरुवमु सोहग्गउ । अच्छइ रावण तुज्झु जें जोग्गउ ॥[2]

अर्थात् निरुपम, सुभग नारी रत्न, जो रावण ! तुम्हारे योग्य है ।

रावण तुरन्त चल पडा इस अनुपम नारी-रत्न को अपने अन्त पुर का शृगार बनाने की कामना मन मे सँजोए हुए ।

सीता के सौन्दर्य-चित्रण का प्रथम अवसर कवि ने रावण द्वारा उन्हे प्रथम बार देखने के समय चुना है । सीता के इस रूप-चित्रण मे कवित्व का कौशल निश्चय ही दर्शनीय हो गया है । सीता को रावण ने सहसा देखा—वह कवि की कथा की भाँति सुसधि, सुपय, सुवयण, सुशब्द तथा सुबद्ध थी । कलहसगामिनी, मथरागति सीता की कटि क्षीण थी, नितम्ब पुष्ट, कामदेव से अवतीर्ण रोमावली मानो चीटियो की कतार ही हो । अभिनव मुख-हीन पुष्ट स्तन ऐसे थे, मानो उर रूपी स्तभ को नष्ट करने वाले मदमस्त हाथी हो । प्रभावान् मुख मानो मानसरोवर मे विकसित कमल ही हो । उसकी पीठ पर वेणी ऐसी लहरा रही थी, मानो चन्दन-लता पर नागिन लिपट गई हो । त्रिभुवन मे सर्वोत्तम सब कुछ लेकर विधाता ने सीता को गढा था ।[3]

उक्त सौन्दर्य-चित्रण परम्परित होते हुए भी कवित्व-चमत्कार से पूर्ण है । रावण के द्वारा राम के माध्यम से सीता के आदर्श पत्नीत्व को स्वयभू ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है

धण्णउ एहु णरु । जसु एह णारि हियइच्छिय ।
जाव ण लइय मइँ । कउ अगहों ताव सुहच्छिय ॥[4]

प्रथम दर्शन मे ही सीता के सौन्दर्य का मादक प्रभाव रावण पर हुआ, वह काम की दसवी अवस्था तक पहुँच गया । तभी रावण ने प्रण किया—बलपूर्वक सीता का हरण करके दसो मुखो से उसका भोग करूँगा

दहमुहु 'दहमुहें हिँ । जाणइ किर मण्डएँ भुजमि' ।
अप्पउ सथवइ । 'ण ण सुर-लोयहों लज्जमि' ॥[5]

---

[1] पउमचरिउ, ३७।१३।२ ।

[2] वही, ३८।१।७ ।

[3] वही, ३८।३।२–६ ।

[4] वही, ३८।४।६ ।

[5] वही, ३८।५।१० ।

रावण ने अवलोकनी विद्या के प्रभाव से लक्ष्मण की राम से कही हुई 'सिंहनाद' की बात को जानकर, सिंहनाद किया, जिसे सुनकर राम सीता को छोड़कर लक्ष्मण की रक्षा करने के लिए चले गए और रावण ने सीता का हरण कर लिया ।[1]

रावण द्वारा अपहृता सीता करुण-क्रन्दन कर रही थी, जिसे सुनकर जटायु आया, किन्तु रावण के वार से आहत होकर गिर पड़ा ।[2] सीता का विलाप करुणा से पूरित अबला नारी का सजीव चित्र उपस्थित कर देता है । सीता ने स्वयं भी यथाशक्ति रावण से मुक्त होने का प्रयास किया, किन्तु असफल रहने पर वे अपने 'अबलापन' की बेबसी पर रो पड़ी ।[3] सीता रो रही थी

पुणु वि पलाउ करन्ति ण थक्कइ । 'कुढें लग्गउ लग्गउ जो सक्कइ ।।
हउँ पावेण एण अवगण्णेंवि । णिय तिहुअणु अ-मणूसउ मण्णेंवि' ।।[4]

अर्थात् प्रलाप करके सीता थक नहीं रही थी । जो सभव था, उससे रावण का सामना सीता ने किया । बार-बार सोच रही थी कि मुझे अबला पापिन समझकर ही यह अपमानपूर्वक ले जा रहा है ।

सीता का पतिव्रत धर्म सजग है । राम का स्मरण बार-बार रक्षार्थ सीता करती है ।[5] इस अवसर पर बहन की रक्षा करने भामण्डल आया, रावण से युद्ध किया, किन्तु पराजित हो गया । रावण सीता को ले चला ।

सीता की चारित्रिक दृढता का चित्रण स्वयभू ने यहाँ कुशलतापूर्वक किया है । भाँति-भाँति के नए प्रलोभन रावण ने सीता को दिए और सीता को आलिंगन मे बाँधना चाहा, तो सीता तीव्र भर्त्सना के स्वर मे बोली

दिवसेंहिँ थोवएँहिँ । तुहुँ रावण समरें जिणेवउ ।
अम्हहुँ वारियएँ । राम-सरेंहिँ आलिंगेवउ ।।[6]

अर्थात् मेरा आलिंगन करने वाले दुष्ट रावण ! शीघ्र-ही तुम राम के तीरो का आलिगन करोगे ।

सीता की दृढता का परिचय देने के लिए स्वयभू ने सर्वथा मौलिक उद्भावना की है । सीता ने रावण के नगर मे प्रवेश करने से मना कर दिया और अपने पति का कुशल समाचार सुनने तक अन्न-त्याग कर दिया ।

---

[1] पउमचरिउ, ३८।१२।१–६ ।

[2] वही, ३८।१३।१–६ ।

[3] यह आज समझ तो पायी हूँ मै दुर्बलता मे नारी हूँ,
अवयव की सुन्दर कोमलता लेकर मै सब से हारी हूँ ।
—जयशकर प्रसाद कामायनी, पृ० ११२

[4] पउमचरिउ, ३८।१५।१–२ ।

[5] वही, ३८।१५।८ ।

[6] वही, ३८।१८।९ ।

सीयएँ वुत्तु 'ण पइसमि पट्टणे' । अच्छमि एत्थु विउले णन्दणवणे ॥
जाव ण सुणमि वत्त भत्तारहों । ताव णिवित्ति मज्झु आहारहों" ॥[1]

'तुल्यानुराग' का पोषण स्वयभू ने भी किया है। राम व्यथित होकर, विक्षिप्त से सीता को लता-गुल्मो, गिरि-कन्दराओ तथा इधर-उधर झाड़ियों मे ढूंढने लगे ।[2] राम ने सीता को 'अलभ्य स्त्री रत्न' कहकर उसका विछोह असह्य कहा है ।[3]

सीता को स्वयभू ने 'सती नारी' का सम्मान दिया है। मदोदरी रावण के आग्रह पर सीता को मनाने आई है। यह मौलिक कल्पना भी कवि ने सीता के सतीत्व तथा दृढता का परिचय देने के लिए की है। मदोदरी ने रावण की गुण-गाथा सुनाकर सीता को रावण की पत्नी बनने का परामर्श दिया,[4] जिसे सुनते ही सतीत्व के दर्प से दीप्त सीता कठोर शब्दो मे बोल पड़ी—क्या कहती हो ? भद्र महिला के लिए यह उचित नही। क्या तुम रावण की दूती बन रही हो ? मेरा उपहास यो मत करो। जान पड़ता है कि तुम्हारी स्वय की परपुरुष मे इच्छा लगती है, इसीलिए मुझे ऐसी कुबुद्धि दे रही हो। तुम्हारा 'यार' मरे—मेरी तो अपने पति मे दृढ निष्ठा है।

स्वयभू ने सीता के इन शब्दो मे एक साथ अनेक मनोभाव सजोकर कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। 'उत्तिम-णारिहें एउ ण जुत्तउ' मे स्वाभाविक सम्मान का भाव है, 'दूअत्तणु किज्जइ' मे मानो मदोदरी के पटरानी पद की ओर सार्थक कटाक्ष है, 'एण णाइँ महु हासउ दिज्जइ' कहकर सीता ने अपने दुर्भाग्य की ओर करुण सकेत किया है, 'तुहुँ पर-पुरिस-पइद्धी' से जो तीव्र व्यग्य है, वह एक ओर सीता के मन की कडुवाहट, घृणा, घुटन और वियोग-कष्ट को व्यजित कर रहा है, तो दूसरी ओर सीता की चारित्रिक दृढता का स्पष्ट सकेत करता है और अन्त मे 'मत्थएँ पडउ वज्जु तहों जारहों'। हउँ पुणु भत्तिवन्त भत्तारहों" कहकर तो सीता ने मन्दोदरी को फटकार देने के साथ-साथ अपनी आदर्श पतिभक्ति की दृढता भी बता दी है।

सीता की दृढता मदोदरी को चुभ गई, उसने मृत्यु का भय दिया, तो सीता ने पुन दृढतापूर्वक फटकार दिया रावण की पट्ट महिषी को

केत्तिउ वारवार बोल्लिज्जइ । ज चिन्तिउ मणेण त किज्जइ ॥

× × × ×

एक्कु जि णिय-भत्तारु पहुच्चइ । जो जय-लच्छिएँ खणु वि ण मुच्चइ ॥[5]

अर्थात् बार-बार क्या कहती हो, मन मे जो हो, वह कर लो। मुझे अपना एक पति

---

1 पउमचरिउ, ३८।१६।६–७।
2 वही, ३६।१।५–६ तथा ३६।२।६।
3 वही, ३६।५।८–९ तथा ३६।१२।१–६।
4 वही, ४१।११।११।
5 वही, ४१।१३।२, ६।

चाहिये, जिसे विजयलक्ष्मी कभी नही छोडती ।

रावण जब प्रणय-निवेदन करने लगा, तो सीता ने करारा व्यग्य करते हुए उसे धिक्कारा—रावण ! मेरे सामने से हट । मेरे लिए तू पिता-तुल्य है ।

राहव-गेहिणिएँ । णिब्भच्छिउ णिसियर-राणउ ।
ओसरु दहवयण । तुहुँ अम्हहुँ जणय-समाणउ ।।[1]

यह सीता के सद्विवेक तथा दृढता का ही परिचय है । रावण द्वारा भयभीत एव पीडित करने पर सीता की दृढता उत्तरोत्तर बढती ही गई ।[2] सीता का राम के प्रति प्रेम निरन्तर बढता ही गया । सीता की स्वीकारोक्ति है

अज्जु वि जण-मण-णयणाणन्दहों । पासु णेहु मइँ राहवचन्दहों ।।[3]

विभीषण द्वारा समझाए जाने पर, रावण ने उसका अपमान किया और पुन सीता के पास आया । पुष्पक विमान मे बिठाकर सीता को नगर-शोभा दिखाने लगा और उससे महारानी बनने का आग्रह करने लगा ।[4] सीता ने रावण की उसी दृढ तथा दर्पदीप्त वाणी मे तीव्र भर्त्सना की और रावण के ऐश्वर्य को ठुकराकर अपने शील की महानता बता दी

सग्गेण वि काइँ । जहिँ चारित्तहों खण्डणउ ।
किं समलहणेण । महु पुणु सीलु जें मण्डणउ ।।[5]

अर्थात् उस सुवर्ण अथवा स्वर्ग से क्या, जहाँ चारित्र्य का खण्डन होता हो, यदि मै शील से विभूषित हूँ, तो मुझे और क्या चाहिये ?

शील-विभूषिता जानकी का यह रूप भारतीय नारी का सहज आदर्श रूप है, जिसे स्वयभू ने पूर्ण निष्ठा के साथ सँवारा है । रत्नकेशी द्वारा कवि ने बडी कुशलता से सीता के सतीत्व तथा शील को पूर्ण सिद्ध किया है

तहिँ तेहएँ वि कालें भय-भीयहें । केण वि सीलु ण खण्डिउ सीयहें ।
पर-पुरिसेंहिँ णउ चित्तु लइज्जइ । वालेंहिँ जिह वायरणु ण भिज्जइ ।।[6]

अर्थात् उस कठोर भयपूर्ण वातावरण मे भी किसी प्रकार सीता का शील खडित नही हुआ था, पर-पुरुष उनका चित्त नही पा सका, जैसे मूर्ख व्याकरण का भेद नही पा सकते ।

कितनी सार्थक उपमा कवि ने दी है । सीता को शाश्वत शीलवती, पतिव्रता पत्नी के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया है । राम ने सीता का 'पराभव' सर्वाधिक कष्ट-दायी माना है ।[7] इस अपमान का बदला रावण की मृत्यु ही होगी ।

---

1 पउमचरिउ, ४१।१४।६ ।
2 वही, ४१।१६।६ ।
3 वही, ४२।४।२ ।
4 वही, ४२।६।१–६ ।
5 वही, ४२।७।६ ।
6 वही, ४४।१०।१–२ ।
7 वही, ४४।१२।८ ।

सीता को राम ने हनुमान् के द्वारा जो सदेश भेजा है, वह भी परोक्षत सीता के उच्चस्थ शील एव पातिव्रत्य की स्वीकारोक्ति ही है—राम तुम्हारे वियोग मे क्षीण हो गए हैं

कुच्चइ सुन्दरि तुज्झ विओए । झीणु करी व करिणि-विच्छोए ।।
× × × ×
झीणु सु-पथु व जण-परिचत्तउ । रामचन्दु तिह पइँ सुमरन्तउ ।।[1]

हनुमान् ने जब सीता को प्रथम बार रावण के नन्दन-बन मे देखा, तो लगा—उन्मन सीता मानो दूज की चन्द्रलेखा ही हो—कितनी विलक्षण उत्प्रेक्षा की है कवि ने ।

तहोँ वणहोँ मज्झेँ हणुवन्तेँण । सीय णिहालिय दुम्मणिय ।।
ण गयण-मग्गेँ उम्मिल्लिय । चन्द-लेह वीयहेँ तणिय ।।[2]

सीता साकार रूप मे शीला थी, उनकी प्रशसा कवि कैसे करे ?[3] पति-वियोग ने उनकी कान्ति मात्र छीनी थी—शील और दृढता मानो बदले मे और दे गया था । सखियो मे बैठी पावन-हृदया सीता के लिए स्वयभू ने अनूठी उत्प्रेक्षा ढूंढ निकाली है, जहाँ व्यजना भी चरमोत्कर्ष पर जा पहुँची है । 'नदियो के मध्य मानो गगा नदी हैं सीता' ।

वणेँ अच्छन्ति दिट्ठ परमेसरि । सेस-सरीहिँ मज्झेँ ण सुर-सरि ।।[4]

सीता का पावन चरित्र वस्तुत गगा-सा ही पावन उपमान पाकर स्वय का महत्त्व प्रकाशन कर सकने मे समर्थ हो सका है ।

हनुमान् ने राम द्वारा प्रदत्त मुद्रिका ज्यो ही सीता की गोद मे गिराई, हर्षातिरेक से सीता अभिभूत हो गई और विरह-व्यथा से सूखे होठो पर मन्द मुस्कान आ गई । सहज भाव का सहज चित्राकन यहाँ स्वयभू ने किया है

पेक्खेँवि रामगुत्थलउ सरहसु हसिउ सुकोमलउ ।।[5]

स्वयभू ने प्रत्येक शब्द की आत्मा को जैसे छू लिया है । 'सरहसु हसिउ सुकोमलउ' के 'सुकोमलउ' मे जो व्यजना उभरी है, वह अनुपम है । करुणा जैसे होठो से जाना न चाहती हो, किन्तु 'सरहसु', भावातिरेक से मुस्कान, बरबस आ जाना चाहती हो । सीता मन्द-मन्द मुस्करा दी । सखियाँ इस मुस्कान का भेद भला क्या जानती ? मन्द बुद्धि सखियाँ आश्चर्य चकित थी । रावण को सदेश गया—सीता को हँसी आ गई है, आपका जीवन धन्य है ।[6]

---

[1] पउमचरिउ, ४५।१५।६, १३ ।
[2] वही, ४६।७।१० ।
[3] वही, ४६।८।१–१६ ।
[4] वही, ४६।६।५ ।
[5] वही, ४६।१०।१ ।
[6] वही, ४६।१०।१–८ ।

रावण ने मन्दोदरी सहित अन्तःपुर की रानियों को सीता की अभ्यर्थना करके उन्हें मना लाने के लिए भेजा। सीता का निष्कलक रूप चन्द्र-ज्योत्स्ना का सा उन समस्त रानियो को प्रतीत हुआ।[1] मन्दोदरी ने अत्यन्त प्रेम तथा सम्मानपूर्वक सीता को रावण की पटरानी बनने का आग्रहपूर्ण परामर्श दिया। सीता ने दृढ़ता से कहा कि रावण को सद्बुद्धि मिले, यही मैं चाहती हूँ। सीता ने अनेक प्रकार से अपना शुभ मन्तव्य रावण के प्रति प्रकट करते हुए अपनी चारित्रिक दृढता एव उदारता का परिचय दिया। रावण को सीता ने 'तृणवत्' मानते हुए राम की शरण जाने का आग्रह किया, अन्यथा राम द्वारा मृत्यु निश्चित बताई।[2] सीता मे अडिग दृढता तथा पतिभक्ति देखकर मन्दोदरी क्रुद्ध हो उठी, किन्तु सीता पूर्णत अचल थी।[3]

हनुमान् के माध्यम से स्वयभू ने सीता की हार्दिक प्रशसा की और उन्हें 'अबला' से 'सबला' बना दिया

> धीरु जें धीरउ होइ णियाणें वि। ढुक्कन्तएँ जीविय-अवसाणें वि॥
> तियहें होइ ज सीयहें साहसु। त तेहउ पुरिसहों वि ण ढड्ढसु॥[4]

अर्थात् जीवन के अवसान की वेला मे भी धीरा सीता मे ऐसा धैर्य! स्त्री होकर भी इनमे जितना साहस है, उतना पुरुषो मे भी नही है।

सीता के सम्मुख हनुमान् जब बैठ गए, तो सर्वप्रथम सीता ने पूछा—राम तो कुशल है न? लक्ष्मण की कुशलता शीघ्र कहो। सीता के मनोभाव का सहज प्रकाशन यहाँ हो रहा है।

हनुमान् ने सीता से उनके कधे पर बैठकर, लका से निकलकर राम के पास चलने का आग्रह किया, तो शील की अधिष्ठात्री सीता ने इसे 'कुलवधू' की मर्यादा के विरुद्ध बताकर जाना अस्वीकार कर दिया। यह स्वयभू की सर्वथा मौलिक उद्-भावना है, जिससे सीता की चारित्रिक दृढता का परिचय उन्होने कराया है

> सुन्दर णिय-घरु गय-गुण-वहुअहें (?)। एह ण णित्ति होइ कुल-वहुअहें॥
> गम्मइ वच्छ जइ वि णिय-कुलहरु। विणु भत्तारें गमणु असुन्दरु॥[5]

अर्थात् गुणहीन वधू इस प्रकार अपने घर जाए तो जाए, कुलवधू के लिए यह नीति ठीक नही। हे वत्स! अपने कुलगृह भी जाना हो, तो भी पति के बिना जाना उचित नही होता।

और तब सीता ने चूडामणि हनुमान् को देकर विदा किया। मार्मिक सन्देश भी दिया सीता ने, जिसका शब्द-शब्द राम मे उनकी दृढ निष्ठा को व्यजित कर रहा है।[6]

---

1 पउमचरिउ, ४६।१२।१–८।
2 वही, ४६।१४, १५।१–१०।
3 वही, ४६।१६।१–१०।
4 वही, ४६।१७।२–३।
5 वही, ५०।१२।५–६।
6 वही, ५०।१३।१–१०।

दुर्भाग्य ! हनुमान् को नाग-पाश से बाँधकर मेघनाद ले चला। हनुमान् को इस प्रकार बँधा हुआ देखकर सीता शोक-ग्रस्त हो, अपने मन मे सोचने लगी—तुम्हे छोडकर कौन मेरी कुशलवार्ता राम तक पहुँचा सकता है।

णव-णीलुप्पल-णयण-जुय सोए णिरु सतत्त।
'पवण-पुत्त पइँ विरहियउ कवणु पराणइ वत्त'॥[1]

रावण को हनुमान् ने बहुत समझाया, किन्तु निष्फल रहा। उसने सीता को समस्त भय-भीति से मुक्त देखा था—'जाणइ जाणिय सयल-जगें कह भय-भीए मुक्क'। सीता के प्रति हनुमान् की यह उक्ति सीता के चरित्र को प्रभा प्रदान कर रही है। हनुमान् की वाणी ने रावण को विचलित कर दिया, किन्तु वह सीता के सौन्दर्य मे अनुरक्त था, उसे मृत्यु स्वीकार थी, सीता को छोड देना स्वीकार नही था।[2] स्वयभू ने सीता की दृढता तथा रावण की उनमे असीम आसक्ति को समानान्तर रखकर सीता के चरित्र को महान् गौरव प्रदान कर दिया है। हनुमान् सीता का यही गरिमामय रूप देखकर लका से राम के पास लौट आए है।

हनुमान् द्वारा लाई गई चूडामणि को देखकर राम के हृदय मे सीता के प्रति अपार प्रेम-भाव जग गया। हनुमान् ने उन्हे सीता की दृढता, भक्ति, निष्ठा तथा सच्चरित्रता का जो परिचय दिया, वह स्वयभू द्वारा सीता के चरित्र का ही प्रताप-पूर्ण प्रतिपादन है। 'अनुदिन राम-नाम जपती हुई सीता जीवित है।'

जाणइ दिट्ठ देव जीवन्ती। अणुदिणु तुम्हहँ णामु लयन्ती॥[3]

विभीषण के माध्यम से भी स्वयभू ने सीता के आदर्श पत्नीत्व की ओर सकेत किया है। रावण से उसने कहा—स्वप्न की सम्पदा-सी यह सीता देवी न कभी तुम्हारी थी, न ही अब है और न आगे कभी होगी।

जाणइ सिविणा-रिद्धि जिह ण हुअ ण होइ ण होसइ तुज्झु॥[4]

पुराण, इतिहास साक्षी है—एक सीता के कारण राम-रावण का दुर्धर सघर्ष हुआ। सीता के पातिव्रत्य की रक्षा के लिए ही राम ने युद्ध किया

वइदेहिहें कारणें अतुल-वलइँ। अब्भिट्टइँ रामण-राम-वलइँ॥[5]

युद्ध मे लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर मूर्च्छा आ गई और स्वयभू ने यह अशुभ सूचना सीता को पहुँचाकर सर्वथा नवीन उद्भावना की है। सीता को जब लक्ष्मण-मूर्च्छा का दुर्भाग्यपूर्ण समाचार मिला,[6] तो वह सुनते ही मूर्च्छित हो गई और चेतना आते ही, रोती हुई कहने लगी—अरे दुर्भाग्य ! लक्ष्मण का अन्त हो गया और

---

[1] पउमचरिउ, ५४।१।१।
[2] वही, ५५।१।१–२१।
[3] वही, ५५।६।२।
[4] वही, ५७।४।८।
[5] वही, ६१।१।१।
[6] वही, ६७।५।१–८।

रावण जीवित है ? तुम्हारा हृदय क्यों नही फट जाता ?[1] स्वय को सीता ससार की सर्वाधिक अभागिनी स्त्री मानती है, यह है उसका करुणापूर्ण दुर्भाग्य

णिय-वन्धव-सयण-विहूणिय दुह-भायण परिचत्त-सिय ।
मइँ जेही दुक्खहँ भायण तिहुअणे का वि म होज्ज तिय ।।[2]

एक अन्य मौलिक उद्भावना द्वारा स्वयभू ने सीता का महत्त्वाकन किया है। मन्दोदरी ने रावण को राम से सन्धि कर लेने को कहा, तो रावण ने शर्त रक्खी—राम मेरा राज्य, रत्न, कोष मुझ से ले ले, और बदले मे, मुझे, तुम्हे और सीता देवी को बाहर जाने दे ।[3]

रावण की इस शर्त के माध्यम से स्वयभू ने सम्पूर्ण राज्य को भी सीता के समक्ष तुच्छ कर दिया है। स्वयभू ने सीता का महत्त्व कितना बढा दिया है, यह रावण के कथन से स्पष्ट हो जाता है। मन्दोदरी ने राम द्वारा इस शर्त को मानने मे आशका प्रकट की

पभणइ मन्दोवरि 'को जाणइ। जइ महि लेइ समप्पइ जाणइ ।।[4]

राम ने रावण की शर्त सुनकर दूत से कहा—रावण का राज्य, रत्न, कोष कुछ नही, हमे केवल सीता चाहिए ।[5]

रावण ने अन्तत सीता के सतीत्व को डिगाने के लिए माया का प्रयोग किया। वहुरूपिणी विद्या के प्रभाव से रावण ने सीता को भयभीत करना चाहा। मनोवैज्ञानिक भय से ग्रस्त हुई सीता उन आश्चर्यों को देख रही थी। त्रिजटा से रावण की शक्ति का प्रयोग सुनकर, सीता के मन मे स्वाभाविक-सी शका उठी—हे माँ ! जाने वह दुष्ट क्या करेगा ? क्या मेरा शील नष्ट कर देगा ?

'माएँ ण जाणहुँ काइँ करेसइ सीलु महारउ किं मइलेसइ' ।।[6]

रावण का पराक्रम तथा अद्भुत विद्याओ का प्रभाव देखकर सीता की निराशा गहन हो उठी। यहाँ स्वयभू ने मनोवैज्ञानिक चित्रण अत्यन्त कुशलता से किया है। सीता ने रावण को अपना दृढ निश्चय बता दिया

'दहमुह भुवण-विणिग्गय-णामे खणु मि ण जियमि मरन्ते रामे ।।
जेत्थु पईवु तेत्थु सिह णज्जइ जेत्थु अणगु तेत्थु रइ जुज्जइ ।।
× × × ×
जहिँ ससहरु तहिँ जोण्ह जहिँ परम-धम्मु तहिँ जीव-दय ।
जहिँ राहवु तहिँ सीय' सा एम भणेप्पिणु मुच्छ गय ।।[7]

---

[1] पउमचरिउ, ६७।७।६ ।
[2] वही, ६७।७।६ ।
[3] वही, ७०।४।१० ।
[4] वही, ७०।५।४ ।
[5] वही, ७०।७।१० ।
[6] वही, ७३।६।२ ।
[7] वही, ७३।११।६–७ तथा ६ ।

पुन मौलिकता का परिचय स्वयभू देते हैं । सीता की दृढता देखकर रावण प्रभावित हुआ और उसने अपने मन मे सीता राम को अर्पित करने का सकल्प कर लिया ।[1]

इस मौलिक परिकल्पना से स्वयभू ने सीता के सतीत्व को, उनके आदर्श पत्नीत्व को तथा निष्ठायुक्त पति-भक्ति को गरिमा प्रदान करने के साथ-साथ रावण के चरित्र को भी उच्चता प्रदान कर दी है। स्वयभू का रावण कलकित नही, सच्चरित्र की भाँति, वीरतापूर्वक, युद्ध करते हुए मरा ।[2] तब कवि ने एक ही सकेत मे सीता की पवित्रता को स्पष्ट कर दिया—रावण के मारे जाने पर सीता का सतीत्व निभ गया ।[3]

अब सीता के जीवन का सुख-विहान आया है । विभीषण सूर्योदय होने पर नन्दन-वन मे, जहाँ सीता बैठी थी, गया और वस्त्राभरण सीता के शृगारार्थ ले गया । सीता ने उन वस्त्राभूषणो को कचरे का ढेर कहकर तिरस्कृत कर दिया और कहा—कुलवधू का प्रसाधन तो शील होता है ।

मलु केवलु आयइँ सव्वइ मि जइ मणें मलिणु मणम्मणउ ।
णिय-पइहें मिलन्तिहें कुल-वहुहें सीलु जि होइ पसाहणउ ॥[4]

विभीषण ने सीता से पूछा—आप हनुमान् के साथ लका से क्यो नही गई ? सीता ने जो उत्तर इस प्रश्न का दिया, उसमे स्वयभू का कवि-कौशल ध्वनित हो रहा है—बिना पति के जाने वाली कुलवधू पर कुलधर भी कलक लगा देते है। पुरुषो के चित्त विष से पूर्ण होते हैं, न होते हुए भी, वे कलक देखने लगते है । दूसरो का तो वे विश्वास ही नही करते, यहाँ तक कि पुत्र, देवर, भाई और पिता का भी ।[5]

कितना नग्न यथार्थ स्वयभू ने सीता के मुख से कहला दिया है और साथ ही कर दिया है एक क्रूर सकेत, सीता के प्रति राम के हृदय मे पनपने वाले सन्देह के विष-वृक्ष की ओर ।

राम-लक्ष्मण लका मे आए और नन्दन-वन मे पहुँचकर सीता को देखा । कवि ने उत्प्रेक्षाओ की झडी लगाकर इस मिलन-पर्व को अविस्मरणीय बना दिया है—राम और लक्ष्मण ने सीता को ऐसे देखा, मानो दो महामेघ चन्द्रलेखा को देख रहे हो, मानो कमल-सरोवर शरद् लक्ष्मी को देख रहे हो, मानो दोनो पक्ष (शुक्ल तथा कृष्ण) पूर्णिमा को देख रहे हो, मानो हिमगिरि और समुद्र गगा को देख रहे हो, मानो सूर्य-चन्द्र आकाश की श्री को देख रहे हो सीता से मिलने मे राम को जितना सुख हुआ, उतना इन्द्र को इन्द्र पद पाकर भी शायद नही होगा ।[6]

---

1 पउमचरिउ, ७३।१३।९ ।
2 वही, ७५।२२।१० ।
3 वही, ७६।१।१ तथा ७ ।
4 वही, ७८।५।९ ।
5 वही, ७८।६।२–४ ।
6 वही, ७८।७।१–३ तथा ९ ।

लक्ष्मण ने मुक्त-कण्ठ से सीता के शील का सम्मान करते हुए 'उसे रघुकुल का सम्मान कहा।'

त देवि पसाए तउ तणेॅण कुलु धवलिउ जाएँ सइत्तणेॅण ।।[1]

लक्ष्मण की भाँति सुग्रीव आदि ने भी महासती सीता का सम्मानपूर्ण शब्दो मे अभिवादन किया। राम को सीता ने अपनी निष्ठा से पुन प्राप्त कर लिया।

सीता सहित राम ने लका से अयोध्या को प्रस्थान किया। मार्ग मे सीता को दर्शनीय स्थान राम ने दिखाए और जन्म-भूमि की दूर से वन्दना की। यहाँ स्वयभू ने सीता को 'बुद्धि स्वरूपा' कहा है।[2] साथ ही 'लक्ष्मी स्वरूपा' भी कहा है।[3]

राम, लक्ष्मण तथा सीता कौशल्या के पास पहुँचे, कौशल्या ने राम को आदेश दिया—सीता को पटरानी बनाओ।[4]

भरत ने भी राम से सीता को ही पटरानी बनाने का आग्रह किया।[5] स्वयभू ने सीता का पातिव्रत्य-प्रदर्शन तो करा दिया, किन्तु सर्वथा मौलिक रूप मे 'राम द्वारा सीता के त्याग का प्रसग' चित्रित करके, सीता के चरित्र को चरमोत्कर्ष प्रदान कर दिया है।

राम मे परिवर्तन आ रहा था एक मानसिक परिवर्तन ! राम जब अनुरक्त थे, तो वनवास स्वीकार किया, समुद्र लाँघा और रावण-वध किया, परन्तु अन्त मे वही राम विरक्त हो उठे और सीता का परित्याग कर दिया।

वणु सेविउ सायरु लघियउ णिहउ दसाणणु रत्तएँण।
अवसाण-कालेॅ पुणु राहवेॅण घल्लिय सीय विरत्तएँण ।।[6]

विरक्ति का भाव मन मे आने पर भी राम ने प्राण-प्रिया सीता का परित्याग 'लोकापवाद' के बहाने किया। 'मन के विरक्त होने पर सीता का परित्याग'—यही कारण स्वयभू ने सर्वोपरि माना है।

सीता एक दिन राम के पास गई, उन्हे अपना स्वप्न बताया[7], राम ने बताया—'तुम दो वीर पुत्रो को जन्म दोगी, जो मेरे मन को जीत लेगे।' सीता गर्भवती हो गई।[8] राम ने सीता से उनका 'दोहद' (गर्भवती की इच्छा) पूछा, तो सीता ने 'जिन भगवान्' की पूजा करने की इच्छा प्रकट की। राम ने नन्दन-वन मे सीता को पूजा के निमित्त भेजा।[9] उधर प्रजा राम के पास पहुँची और कहा—खोटी स्त्रियाँ खुले

---

[1] पउमचरिउ, ७८।८।५।
[2] वही, ७९–प्रारम्भ।
[3] वही, ७९।२।९।
[4] वही, ७९।६।७।
[5] वही, ७९।८।९।
[6] वही, ८१–प्रारम्भ।
[7] वही, ८१।१।५–६।
[8] वही, ८१।१।१०।
[9] वही, ८१।२।१–१०।

आम पर-पुरुषो से रमण करती हैं। पूछने पर कहती हैं—सीता बर्षों रावण के घर रही, क्या रावण ने उनका उपभोग नही किया होगा ?[1] प्रजा के मुख से सीता के प्रति यह दुर्भाग्यपूर्ण आक्षेप सुनकर राम हतप्रभ हो गए। उनके मन मे द्वन्द्व था। नारी के प्रति अत्यन्त क्षोभ भर गया उनके मन मे।[2] स्वयभू ने इस प्रसग मे अपने मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण की प्रतिभा का अत्यन्त प्रभावपूर्ण तथा स्पष्ट परिचय दे दिया है। राम के मन मे सीता के प्रति सहज विरक्ति उत्पन्न हुई दिखलाकर स्वयभू ने मौलिक उद्भावना की है।

सीता के साथ नेह की डोर से बँधे हुए राम विचलित हो उठे। एक ओर प्रजा का विरोध, दूसरी ओर सीता, एक ओर राज-दण्ड की मर्यादा, दूसरी ओर भावना का नाजुक धागा। राम सोच रहे थे—सीता यद्यपि घोर सकट मे भी अपने स्नेह-सूत्र मे बँधी रही और मेरा मन कहता है—'सीता महासती है।' किन्तु फिर भी इस प्रवाद को कौन मिटा सकता है कि सीता रावण के घर मे रही है।[3]

लक्ष्मण क्रोध से उबल पडा सीता के लिए यह प्रलापपूर्ण प्रवाद सुनकर। लक्ष्मण ने सीता के पूर्ण सतीत्व की घोषणा कर दी और निन्दा करने वाले के लिए स्वय को यम का दूत कह दिया

जा सुरवरेँहिँ पइव्वय वुच्चइ जाहेँ पसाए वसुमइ पच्चइ ॥
जाहेँ पहावे रहु-कुलु णन्दइ पलयहोँ पिसुणु जाउ जो णिन्दइ ॥
जाहेँ पाय-पसु वि वन्दिज्जइ ताहेँ कलकु केम लाइज्जइ ॥[4]

किन्तु सीता का दुर्भाग्य जीत गया। राम को सीता का नाम तक अच्छा नही लगता था। अत उन्होने लक्ष्मण से सीता को वन मे छोड आने का आग्रह किया। लक्ष्मण निरुत्तर, मौन रह गया।[5] सीता वन मे भेज दी गई।

स्वयभू का कवित्व मुखर हो उठा और उन्होने नगर की स्त्रियो से जो शब्द कहलाए, उनमे नारी-जीवन की करुण-कथा सुमुखर हो रही है, साथ ही परोक्ष रूप से सीता का चरित्र भी उत्कर्ष पा रहा है।

व्यजना अपने उत्कर्ष पर है—क्या करे उस मनुष्य जन्म को पाकर, जिसमे प्रिय-वियोग की परम्परा-सी बँध जाती है। इससे अच्छा तो यह है कि हम किसी वन की लता बन जाएँ, जिसका वृक्ष से वियोग तो नही होता।[6]

निर्दोष, निष्कलक सीता को उसके दुर्दैव ने महावन मे निर्वासित करा दिया।[7]

---

[1] पउमचरिउ, ८१।३।१० ।
[2] वही, ८१।५।१–८ ।
[3] वही, ८१।५।१० ।
[4] वही, ८१।६।७–९ ।
[5] वही, ८१।८।१–५ ।
[6] वही, ८१।८।८–१० ।
[7] वही, ८१।९।१० ।

स्वयभू ने इसे पूर्व-जन्म के कृत-कर्मों का प्रतिफल मान लिया।[1]

कर्त्तव्य-बंधन मे बँधे सारथी ने सीता को 'राम द्वारा उनके परित्याग' का कठोर सन्देश दे ही दिया और सीता सुनते ही मूच्छित होकर गिर पडी। सीता का जीवन दु:खो की खान बन गया। निष्ठा, दृढता, पवित्रता और अचल पतिभक्ति का यह क्रूर प्रतिफल। सीता का मन निराशा तथा वेदना से भर गया।

वरि तिण-सिह वरि वणे वेल्लडिय वरि सिल लोयहुँ पाण-पिय।
दूहव-दुरास-दुह-भायणिय णउ मइँ जेही का वि तिय॥[2]

अर्थात् तिनके की शिखा बन जाना अच्छा, बन की मुक्त लता बन जाना अच्छा, लोगो के लिए प्राण-प्रिय शिला बन जाना अच्छा, परन्तु कोई भी स्त्री, मेरे समान दुर्भाग्य, निराशा तथा दु:ख की पात्र न बने।

सीता ने सम्पूर्ण विश्व को, जल, थल, बन, तृण, सूर्य, वनस्पति, आकाश, पृथ्वी, वरुण, पवन और अग्नि आदि को ललकारकर अपने सतीत्व की घोषणा की।[3] तब सीता को धर्म-भाई वज्रजघ ने धैर्य दिया और डोली मे बैठाकर सादर अपने घर ले गया,[4] और वही सीता ने लवण तथा अकुश नामक दो पुत्रो को जन्म दिया।[5]

सीता को मातृत्व की गरिमा मिल गई और राम की वधू सीता अब उनके पुत्रो की माता भी बन गई।

स्वयभू ने पत्नी रूप मे सीता को अत्यन्त उदात्त तथा व्यापक गुणो की अधि-स्वामिनी बनाया है। जैन-दृष्टि के कारण वे सीता मे दैवी गुणो का समावेश तो नही कर सके है, किन्तु नारीत्व का चरमोत्कर्ष उन्होने 'मानवी' सीता के चरित्र मे दिखाया है, जो निश्चय ही स्वयभू के कवित्व की सर्वथा अनूठी उपलब्धि है। सीता गगा-सी पावन, शीलवती, निष्ठावती, आदर्श कुल-पत्नी है और उनके इसी उदात्त चरित्र का दिग्दर्शन 'पउमचरिउ' मे स्वयभू द्वारा हुआ है।

अपराजिता (कौशल्या)—स्वयभू कृत 'पउमचरिउ' मे राम (पद्म) की माता तथा दशरथ की पत्नी का नाम 'अपराजिता' माना गया है—रामचन्दु अपरज्जियहें।[6] कौशल्या नाम भी यथा-सुविधा प्रयोग कर लिया गया है। अपराजिता को यहाँ दशरथ की पटरानी का पद दिया है।

परम्परा से प्राप्त कौशल्या का पत्नी रूप विशेष सराहनीय नही रहा है। वह पति द्वारा उचित सम्मान से वचिता, क्षीणकाया, खिन्नमना, उपवासादिपरा, पर-क्षमाशीला, त्याग-शील तथा सौम्य दिखाई गई है।[7] 'वाल्मीकिरामायण' तथा अधि-

---

[1] पउमचरिउ, ८१।१०।१।
[2] वही, ८१।१२।१०।
[3] वही, ८१।१३।१–१०।
[4] वही, ८१।१५।१।
[5] वही, ८१।१५।४।
[6] वही, २१।४।६।
[7] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३००।

काश परवर्ती रामकथाओ के अनुसार दशरथ की तीन पटरानियों का उल्लेख है और उनके नाम क्रमश कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी ही रक्खे गए हैं।[1] 'आनन्दरामायण' मे दशरथ-कौशल्या विवाह का विस्तृत वर्णन किया गया, जिसमे कोशल नरेश की पुत्री कौशल्या है। दशरथ सुमित्रा, कैकेई तथा सात सौ अन्य स्त्रियो से भी विवाह करते हैं।[2]

जैन-रामकाव्य परम्परा मे विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' के अनुसार पद्म (राम) की माता का नाम अपराजिता था और वह अरुहस्थल के राजा सुकोशल तथा रानी अमृतप्रभा की पुत्री थी।[3] जैन-रामकथा की 'गुणभद्र-परम्परा' मे रचित 'उत्तर-पुराण' मे राम की माता का नाम सुबाला है।

स्वयभू ने विमलसूरि की परम्परा को अपनाया, किन्तु तीन के स्थान पर पट-रानियो की सख्या चार कर दी—राम उत्पन्न हुए अपराजिता से, लक्ष्मण सुमित्रा से, धुरन्धर भरत कैकेई से तथा शत्रुघ्न उत्पन्न हुए सुप्रभा से।[4]

स्वयभू ने दशरथ की पत्नी के रूप मे अपराजिता का चित्रण किया ही नही, केवल माता रूप मे उनको चित्रित किया है। डॉ० गजानन साठे का मत है—स्वयभू ने अपराजिता के चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन नही किया है, जबकि तुलसी ने कौशल्या के जीवन की अनेक घटनाओ का उल्लेख करते हुए उसके स्वभाव के अनेक पहलुओ पर प्रकाश डाला है।[5]

सम्भव है, स्वयभू को अपराजिता के मातृत्व-रूप ने प्रभावित किया हो, पत्नी-रूप ने नही।

सुमित्रा—परम्परा से सुमित्रा का चरित्र अधिक मुखर नही हो पाया है। सुमित्रा के साथ दशरथ के विवाह का 'वाल्मीकिरामायण' मे न तो कोई उल्लेख मिलता है और न सुमित्रा का परिचय ही वहाँ मिलता है।[6] सुमित्रा एक अत्यन्त उपेक्षित और दीन जीवन व्यतीत करती है।[7]

विमलसूरि के अनुसार सुमित्रा कमल सकुलपुर के राजा सुबन्धु तिलक की कैकेयी नामक पुत्री थी, दशरथ ने विवाह करके उसका नाम सुमित्रा बाद मे रक्खा था।[8]

स्वयभू ने सुमित्रा का भी पत्नी रूप मे बिलकुल चित्रण नही किया है। प्रथम

---

[1] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० २६५।
[2] वही, पृ० २६३।
[3] पद्म, २२।१०६–१०७।
[4] पउमचरिउ, २१।४।६।
[5] पउमचरिउ और रामचरितमानस, पृ० ३३।
[6] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० २६५।
[7] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०३।
[8] पउमचरिय, पर्व, १२।१०७–८।

उल्लेख ही लक्ष्मण की माता के रूप मे सुमित्रा का हुआ है ।[1]

सुप्रभा—कतिपय जैन-कथाओ मे दशरथ की पटरानियो की सख्या चार तक बढा दी गई, क्योकि पुत्र चार थे । रविषेण (पद्मचरितम्) के अनुसार चार रानियो मे शत्रुघ्न की माता 'सुप्रभा' थी ।[2] विमलसूरि मे सुप्रभा का उल्लेख नही है ।

स्वयभू ने सुप्रभा को लेकर नवीन उद्‌भावना की है । उसे दशरथ की प्रिया पत्नी के रूप मे चित्रित किया है । राजा दशरथ ने 'जिन' का अभिषेक करके दिव्य-गधोदक रानियो के पास भेजा । बूढा कचुकी (अन्त पुर का विश्वस्त सेवक) रानी सुप्रभा के पास उसे नही ले गया । इस अवसर पर स्वयभू ने सुप्रभा को मानिनी पत्नी के रूप मे चित्रित किया है ।

सुप्रभा को उदास देख दशरथ ने पूछा—हे नितम्बिनी ! खिन्न क्यो हो ? चित्रित दीवार-सा तुम्हारा मुख फीका क्यो पड गया है ?[3]

मानिनी सुप्रभा ने उत्तर दिया—देव ! मेरी कहानी सुनने से क्या ? मै भी औरो-सी प्रिय हुई होती, तो गधोदक मुझे भी मिलता ।[4]

इस सक्षिप्त, किन्तु काव्यात्मक चित्रण द्वारा स्वयभू ने सुप्रभा को सौन्दर्य-शालिनी, पति-प्रिया तथा मानिनी आदि गुण-सम्पन्ना पत्नी चित्रित किया है ।

अजना—स्वयभू ने अजना के माध्यम से निर्दोष-परित्यक्ता नारी का करुणापूर्ण चित्र अत्यन्त सजीव रूप मे प्रस्तुत किया है । निरन्तर उपेक्षा तथा बारह वर्षों के त्याग का कष्ट सहकर अजना का प्रणय सार्थक हुआ, जब वरुण से युद्ध के लिए गया हुआ पवनजय, चकवी की काम-पीडा[5] से द्रवित होकर उसके पास आया और उसके कौमार्य को उसने रति-सुख प्रदान किया ।[6]

रात्रि के अन्तिम प्रहर मे प्रवास पर जाते हुए पवनजय ने जब अपनी प्राण-प्रिया अजना से घोर उपेक्षा के लिए क्षमा प्रार्थना की, तो अजना का पत्नीत्व मौन रह गया । कितनी मर्मस्पर्शी व्यजना है

जन्तएण आउच्छिय ज परमेसरी ।
थिय विसण्ण हेट्ठामुह अजणसुन्दरी ।।[7]

जिसका प्रियतम निरन्तर उपेक्षा के पश्चात् इतना प्यार लुटा रहा हो, वह पत्नी भाव से अभिभूत कैसे न होती ? साथ ही नारीत्व की मर्यादा भी तो है । अजना मौन ही रही, किन्तु एक अदृश्य अनिष्ट-आशका उसके हृदय को दग्ध कर रही थी । उसने

---

1 पउमचरिउ, २१।४।६ ।
2 डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० २६५ ।
3 पउमचरिउ, २२।१।४ ।
4 वही, २२।१।६ ।
5 वही, १८।११।३–६ ।
6 वही, १८।१२।६ ।
7 वही, १६।१।१ ।

विनयपूर्वक कहा अपने प्राणपति से—मैं रजस्वला हूँ, यदि गर्भवती हो गई, तो क्या उत्तर दूंगी।

कर मउलिकरेप्पिणु विण्णवइ। 'रयसलहें गब्भु जइ सभवइ ॥
तो उत्तरु काइँ देमि जणहों। ण वि सुज्झइ एउ मज्झु मणहों' ॥[1]

अजना के इस कथन मे स्वयभू ने समाज की कठोर सामाजिक-मर्यादा का समावेश करने के साथ-साथ अजना के मुख से 'भावी-विडम्बना' जैसे कहला दी है।

कुमार पवनजय ने जाते समय प्रिया अजना को अभिज्ञान के निमित्त अपना कगन उतार कर दिया और मित्र प्रहसित के साथ लौट गया।

आशका सत्य हुई। अजना का प्रणय-मिलन सार्थक हुआ, वह गर्भवती हो गई। उसकी सास केतुमती ने गर्भ देखकर उसे बुलाया और पूछा—तूने यह पाप करके मेरे महेन्द्रकुल को कलकित कर दिया। दुर्धर्ष शत्रुओ का नाश करने वाले मेरे पुत्र का मुँह तूने काला कर दिया।[2]

अजना के सौभाग्य की साक्षी, उसकी सखी वसन्तमाला ने केतुमती को सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा।[3] अजना के मौन मे कवि ने सम्भवत कुलवधू की मर्यादा तथा उपेक्षिता होने के कारण स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक हीनता की व्यजना कराई है।

क्रोध से काँपती अजना की सास उठी और उन दोनो (अजना तथा वसन्तमाला) को कोडो से पीटा, बार-बार पीटा। क्रोध मे भरकर बोली—क्या यार के घर मे सोना नही हो सकता? उसी ने कडा गढवाकर दे दिया है। कटु शब्दो के प्रहार से भयभीत, निर्दोष अजना और वसन्तमाला चुप रह गई।[4]

स्वयभू ने सामाजिक जीवन मे नारी के नारकीय जीवन की ओर कितना यथार्थ-पूर्ण सकेत किया है,[5] जो करुणा से सिक्त होकर स्वयभू के कवित्व का उत्कर्ष बन गया है। अभागी प्रणयिनी अजना पत्नी रूप मे भी दुर्भाग्य के क्रूर चक्र से मुक्त नही हो सकी।

अजना की सास केतुमती ने एक क्रूर भट को बुलाकर कहा—शीघ्र इस दुष्ट कुलक्षणा को नगर से बाहर कही छोड आओ। इसने चन्द्र समान स्वच्छ मेरे कुल को दाग लगाया है।[6] रथ मे बिठाकर, केतुमती के आदेशानुसार नगर से दूर वन मे उस भट ने रोती हुई अजना को छोड दिया और करुणार्द्र शब्दो मे उसने कहा—माँ! मुझे क्षमा करना।

कवि स्वयभू! विलक्षण है तुम्हारा कवित्व! करुणा के नयन भी क्या रो नही

---

[1] पउमचरिउ, १६।१।२–३।

[2] वही, १६।१।७–८।

[3] वही, १६।१।१०।

[4] वही, १६।२।१–४।

[5] अधिकाश वधुओ को बिना अनुमति के कार्य करने पर सास या ससुर द्वारा दिया गया कठोर दण्ड भोगना पडता था। —डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमो मे नारी-जीवन, पृ० ७७

[6] पउमचरिउ, १६।२।५–८।

देगे, निर्दोष अजना की इस करुण कथा को सुनकर ? कवि की उत्प्रेक्षा ने इस करुणा को घनीभूत कर दिया है

क्रूर-बीरें परिअत्तएँ रवि अत्थन्तओ ।
अजणाएँ केरउ दुक्खु व असहन्तओ ॥[1]

अर्थात् क्रूर वीर के चले जाने पर सूरज भी डूब गया, मानो वह अजना के दुःख को सहन नही कर सका था ।

अग्निपुज सूर्य जिसकी करुण-गाथा नही सुन सका, उसका करुण क्रन्दन कौन सुनता ? नारी-जीवन शाश्वत करुण-कथा ही तो है ।[2]

वन की भीषण भयानकता और गर्भवती, एकाकी, असहाय नारी ! बडे कष्ट से रात बिताकर प्राची दिशा मे सूर्य उदित होते देखा अजना ने । किसी प्रकार अजना अपने पिता के नगर मे पहुँच गई और प्रतिहार ने उसके आगमन की सूचना राजा को दी—परमेश्वर ! मुमुखी, मृगनयनी अजना आई है ।[3]

हर्ष-विभोर पिता ने पुत्री के स्वागत की तैयारियाँ करने को कहा और सादर उसे लेने को चलने लगा । तभी उसने प्रतिहार से पूछा—कितने रथ-घोडे साथ है और कौन अजना के साथ आया है । स्वयभू की व्यजना उत्तर देती-सी लगती है—'अजना के साथ आया है, क्रूर दुर्भाग्य ।' किन्तु उत्तर दिया प्रतिहारी ने—देव ! न कोई साथ है, न ही सहायक सेना । इतना ही मुझे कहा है कि वसन्तमाला के साथ अजना आई है । वह उदास है, आँसुओ से स्तन-भाग गीला है, गर्भवती है ।[4]

राजा का मुख लज्जा से नीचा हो गया और उसने क्रोधपूर्वक आज्ञा दी—दुःशीला उसे मत आने दो, फौरन उसे नगर से बाहर निकाल दो ।[5] राजा के साधु-वचन, नीतिवान् मत्री ने कहा—राजन ! बिना परीक्षा किए कुछ करना उचित नही । सासे बहुत बुरा कर डालती है, वे महासती को भी दोष लगा देती है ।[6]

शकाशील पिता का प्रश्न था—पति युद्ध मे है, तो गर्भ कैसे रह गया ?[7]

पिता के यहाँ से भी अजना अपमानपूर्वक निकाल दी गई । अजना के रुदन मे मानो स्वयभू की करुणा ही रो पडी—हे देव ! मैने ऐसा क्या पाप किया, जो निधि दिखाकर तुमने दोनो नेत्र हर लिए ? वन मे विलाप करते अजना को देख कौन ऐसा था, जो द्रवित नही हुआ । स्वच्छन्द चरने वाले हिरनो ने भी घास चरना छोड दिया ।[8]

---

[1] पउमचरिउ, १९।३।१ ।

[2] नारी जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी ॥ — मैथिलीशरण गुप्त

[3] पउमचरिउ, १९।३।७ ।

[4] वही, १९।४।२–४ ।

[5] वही, १९।४।५ ।

[6] वही, १९।४।७–९ ।

[7] वही, १९।५।६ ।

[8] वही, १९।५।९–१० ।

शोक-विह्वला अजना रुदन करती बार-बार अपने जीवन को धिक्कार रही थी—मुझ जैसा दुःख का पात्र ससार मे कोई नही। सास ने निकाला, तो सही; पर हे माँ! तुम भी मुझे न रख सकी। निष्ठुर पिता! तुमने भी मुझे बाहर निकाल दिया?[1] गर्भवती अजना की कारुणिक दशा का बडा मार्मिक सकेत स्वयभू ने किया है

गब्भेसरि जउ जउ सचरइ। तउ तउ रुहिरहोँ छिल्लरु भरइ॥
तिम-भुक्ख-किलामिय चत्त-सुह। गय तेत्थु जेत्थु पलियक-गुह॥[2]

अर्थात् गर्भवती अजना जैसे-जैसे पाँव बढाती, वैसे ही रक्त उसके मुख से निकलता था। सुखहीना, भूखी, प्यासी, पीडिता अजना पर्यंक गुहा मे गई।

कर्मफल-सिद्धान्त मे अपनी आस्था व्यक्त करने के लिए स्वयभू ने एक सर्वथा मौलिक उद्भावना यहाँ की है। उस गुहा मे महामुनि अमृतगति ने अजना के दुःखो का मूल कारण 'पूर्व जन्म के कृत-कर्मों' को बताकर सुख पाने का आशीष दिया।[3] किसी विद्याधर ने अजना तथा वसन्तमाला को सरक्षण दिया और चैत्र मास की कृष्णाष्टमी को अजना ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया—अभागी अजना को मातृत्व मिल गया, वह अपने पुत्र की माँ बन गई।[4]

स्वयभू ने अजना के रूप मे नारी के सतीत्व निर्दोष तथा करुणासिक्त पत्नीत्व का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। सम्भवत स्वयभू करुण पात्रो की अवतारणा मे अधिक रुचि रखते रहे हो, यह सीता के परित्याग तथा अजना के परित्याग की करुण कथा को विस्तार से ग्रहण करने की उनकी प्रवृत्ति से स्पष्ट हो जाता है।

वनमाला—स्वयभू ने वनमाला को वीर-भोग्या पत्नी के रूप मे चित्रित किया है। अनन्तवीर्य से युद्ध मे विजयी होने के उपरान्त वीर-भाव से पुलकित वनमाला ने लक्ष्मण का अपनी भुजा रूपी डालो से आलिगन किया

हरि-बल पइठ जयन्तपुरेँ धण-कण-पउरेँ जय-मगल-तूर-वमालेँहिँ।
लक्खणु लक्खणवन्तियएँ णिय-पत्तियएँ अवगूढु स इ भु व-डालेँहिँ॥[5]

राम के साथ वनवास मे पहुँचकर एक दिन लक्ष्मण वनमाला से मिलने को आतुर हो उठे। लक्ष्मण और वनमाला—दोनो ही परमागम के लिए बेचैन हो रहे थे, परस्पर आसक्त वे एक-दूसरे पर अनुरक्त थे।

राम के साथ वन जाते समय प्राण-प्रिया वनमाला को लक्ष्मण ने कहा—हे हस-गामिनी, गजलीला-विलासिनी, चन्द्रमुखी, स्वनामधन्या वनमाले! मै दक्षिण देश

---

[1] पउमचरिउ, १९।६।१–४।
[2] वही, १९।६।५–६।
[3] वही, १९।७।२–५।
[4] वही, १९।९।५–६।
[5] वही, ३०।११।९।

आ रहा हूँ।[1] पति-गमन का समाचार सुन उन्मना वनमाला के नेत्रो से झडी लग गई, वह मौन हो, नीचा मुख कर रह गई

सुरवर-वरइत्ते णव-वरइत्ते ज आउच्छिय णियय धण।
ओहुल्लिय-वयणी पगलिय-णयणी थिय हेट्ठामुह विमण-मण ॥[2]

आँसुओ के साथ नयनो के काजल को धोती हुई वनमाला को लक्ष्मण ने समझाया—जन्म-मरण-वियोग आदि ससार मे अनिवार्य हैं। तुम मे निष्ठा रखते हुए मैं शीघ्र लौटूंगा।[3] इस प्रकार विछोह-पीडा की आशका से दग्ध वनमाला को समझाकर लक्ष्मण राम के साथ चले गए

वणमाल णियत्तेँवि भग्गमाण। गय लक्खण-राम सुपुज्जमाण ॥[4]

वनमाला के रूप मे पतिप्रिया सुन्दरी पत्नी का चित्राकन स्वयभू ने सक्षिप्त, किन्तु सजीव किया है।

लकासुन्दरी—वीर हनुमान् तथा लकासुन्दरी परस्पर अनुरक्त होकर परिणय-सूत्र मे बँध गए

सरु जोएँवि पवर-धणुद्धरीएँ परिओसे लकासुन्दरीएँ ॥
अवगूढु पवणि थिरथोर-वाहु परिहूअउ विज्जाहर-विवाहु ॥[5]

लकासुन्दरी तथा हनुमान् का युगल अत्यन्त शोभित हो रहा था। हनुमान् ने लकासुन्दरी के भवन मे प्रवेश किया और रात भर रति-सुख का आनन्द उठाया

रयणिहिँ माणेप्पिणु सुरय-सोक्खु सचल्लु विहाणएँ दुक्खु दुक्खु ॥[6]

स्वाभाविकत प्रात काल जब हनुमान् जाने लगा, तो प्रणय-मुग्धा, प्राणप्रिया, अनुरक्ता लकासुन्दरी से बिछुडने मे उसे कष्ट हो रहा था।[7]

हनुमान् के प्रति अनुरक्त, लकासुन्दरी पत्नी रूप मे हनुमान् के कुशल-क्षेम की कामना करे, यह स्वाभाविक ही है। उसने अपनी सखियो—इरा तथा अचिरा को हनुमान् का पता लगाने के लिए लका मे भेजा।[8] हनुमान् ने अधिकारपूर्वक इरा को लकासुन्दरी के यहाँ भेजकर सीता के लिए सुमधुर भोजन लाने को कहा।[9]

हनुमान् ने एक बार पुन सकट के समय लकासुन्दरी को बुलाया। राम जब सीता के सतीत्व पर लगे हुए कलक की परीक्षा करना चाहते थे, तो हनुमान् ने

---

[1] पउमचरिउ, ३१।१।६–८।
[2] वही, ३१।१।९।
[3] वही, ३१।२।१–९।
[4] वही, ३१।३।१।
[5] वही, ४८।१४।३–४।
[6] वही, ४८।१५।३।
[7] वही, ४८।१५।४–५।
[8] वही, ५०।१०।१।
[9] वही, ५०।११।१।

अपनी पत्नी लकासुन्दरी को उनके सतीत्व की साक्षी देने के लिए बुलाया। लका-सुन्दरी ने सीता के सतीत्व का प्रमाण दिया।[1] यह स्वयभू की अन्यतम मौलिक उद्-भावना एव सूझ का परिचायक है।

जब सीता ने अग्नि-प्रवेश किया, तो कवि ने लकासुन्दरी की कोमलता का सकेत बडे सहज भाव से किया

धाहाविउ वइदेहि-कए विहिँ लकासुन्दरि-तियडाएविहिँ ॥[2]

इस प्रकार लकासुन्दरी मे वीरत्व-भाव, प्रणय-भाव, भक्ति-भाव तथा करुणा का समावेश कराते हुए स्वयभू ने उसे पति-प्रिया पत्नी-रूप मे चित्रित किया है और अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय इस पात्र के माध्यम से दिया है।

मध्यम पत्नी

कैकेई—रामकथा की परम्परा मे कैकेई ऐसी नारी है, जिसका चरित्र कवियो के लिए मौलिक उद्भावना का केन्द्र रहा है। 'रघुकुल की अभागी रानी' के रूप मे कही उसे प्रायश्चित्त की अग्नि मे तपाकर कुन्दन बनाया गया है, तो कही उपेक्षित कर दिया गया है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने कैकेई के परम्परित रूप को लेकर कहा है—आदि-काव्य की कैकेई मे एक प्रकार से हम रावण का प्रतिरूप-सा पाते हैं, उसी के समान यह भी एक आदर्शवादी नही—वस्तुवादी, कल्पनावादी नही वरन् प्रत्यक्ष-वादी, निराशावादी नही वरन् आशावादी, अदृष्टवादी नही वरन् सकल्पवादी, सशयवादी नही वरन् निश्चयवादी और धार्मिक से भिन्न अधार्मिक 'प्रवृत्ति प्रमुख चरित्र' पाते है।[3] एक अन्य विद्वान् ने कैकेई के परम्परित रूप को इन शब्दो मे कहा है—कैकेई सपत्नी, कलह और ईर्ष्या की मूर्ति-सी प्रतीत होती है। उसमे स्वार्थ-लोलुपता, दया-हीनता, महत्त्वाकाक्षा, स्वेच्छा-परायणता आदि दुर्गुण स्वभावत वर्तमान है। रावण के समान उसमे भी प्रत्यक्षवादिता की प्रधानता है।[4]

विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे कैकेई को सुन्दरी तथा वीर पत्नी के रूप मे चित्रित किया गया है। स्वयवर मे पति चुन लेने के बाद, अन्य राजाओ के विरुद्ध युद्ध मे उसने दशरथ का रथ हाँककर सहायता की, जिसके उपलक्ष्य मे उसे एक वर दिया गया

भद्दे! मणस्य इट्ठ, ज मग्गसि त पणामेमि ॥
ज तइया सगामे, सारच्छ गुणेण तोसियो अहय ॥
तस्सुवयारस्स फल, मग्गसु मा ने चिरावेहि ॥[5]

---

[1] पउमचरिउ, ८३।४।१–६।
[2] वही, ८३।१२।७।
[3] तुलसीदास, पृ० ३०१।
[4] रामचन्द्र देव तुलसी और तुलन, पृ० १३५।
[5] पर्व, २४।३७–३८।

'पउमचरिय' मे कैकेई ने भरत का वैराग्य दूर करने हेतु उनके लिए राज्य माँगा था, राम के वनवास की बात नही कही थी। बल्कि पुत्र-वियोग से दु खी अपराजिता एव सुमित्रा के पास भरत को स्वय कैकई ने ही भेजा था।[1]

स्वयभू ने कैकेई मे जैन तथा हिन्दू परम्पराओ का समावेश कराते हुए उसे सर्वथा मौलिक चरित्र बनाया है। स्वयवर के पश्चात् हुए युद्ध मे कैकेई द्वारा दशरथ की सारथी बनने तथा सहायता करने से प्रसन्न होकर दशरथ ने उससे वर माँगने को कहा, कैकेई ने भविष्य मे कभी माँगने पर देने को कहा

'सुदरि मग्गु मग्गु ज रुच्चइ' सुहमइ-सुयएँ णवेप्पिणु वुच्चइ ॥
'दिण्णु देव पइँ मग्गमि जइयहुँ णियय-सच्चु पालिज्जइ तइयहुँ' ॥[2]

वीर पति की वीर पत्नी कैकेई ने धुरधर भरत को जन्म दिया—भरहु धुरन्धरु केक्कइहे॑।

अनायास एक दिन बूढे कुचकी की जर्जरावस्था देखकर राजा दशरथ को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होने राज्यादि 'राम के अर्पण' करके तप करने का निश्चय कर लिया।[3]

स्वयभू ने नारी-सुलभ ईर्ष्या कैकेई मे इस अवसर पर उत्पन्न करा दी। दशरथ ने जब राज्य राम को दिया, तो कैकेई अपने मन मे वैसे ही सतप्त हो उठी, जैसे ग्रीष्म मे धरती तपती है

दसरहु अण्ण-दिणे॑ किर रामहों॑ रज्जु समप्पइ।
केक्कय ताव मणे॑ उण्हालएँ धरणि व तप्पइ ॥[4]

सौन्दर्यशालिनी कैकेई का अनुराग इस समाचार को पाकर भग्न हो उठा। वह असीम सौन्दर्य की अधिस्वामिनी थी, प्रच्छन्न कामदेव की मल्लिका के समान थी।

महा-मोरपिच्छोह-सकास-केसा। अणगस्स भल्ली व पच्छण्ण-वेसा।[5]

कैकेई दशरथ के दरबार मे गई और उनसे वर माँगा—स्वामी यही समय है, आप मेरे पुत्र भरत को राज्यपाल बनाएँ।

वरो मग्गिओ 'णाह सो एस कालो मह णन्दणो ठाउ रज्जाणुपालो' ॥[6]

दशरथ ने कैकेई को कहा—यह बात अपराधपूर्ण है। और राम-लक्ष्मण को बुलाकर दशरथ ने कहा—यदि तुम मेरे पुत्र हो, तो इस आज्ञा को मानो। छत्र-सिहासन और धरती भरत को सौप दो।[7] राम ने स्वेच्छा से राज्य छोड दिया,

---

[1] पव ३२।३७–३८।
[2] पउमचरिउ, २१।४।४–५।
[3] वही, २२।३।१–९।
[4] वही, २२।७।९।
[5] वही, २२।८।५।
[6] वही, २२।८।७।
[7] वही, २२।८।९।

लक्ष्मण क्रुद्ध होकर उत्पात न करे, इसलिए राम ने स्वेच्छा से वनवास ले लिया ।[1]

पत्नी रूप मे कैकेई का इतना ही चित्रण स्वयभू ने किया है। इसमे ईर्ष्या एव स्वार्थ की प्रवृत्ति कवि ने प्रमुखत दिखाई है ।

मन्दोदरी—परम्परा से यह नारी-पात्र प्राय नगण्य ही रहा है ।[2] विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे मन्दोदरी के चरित्र मे सामान्य पत्नी के गुणो-अवगुणो का समावेश हुआ है । वह पति-हित मे सब कुछ करने को तत्पर है ।[3]

स्वयभू ने मदोदरी के चरित्र मे सामान्य राजमहिषी का चरित्र अकित किया है । अनेक स्थलो पर वह उच्च, आदर्श नारी है, तो अनेक स्थलो पर ईर्ष्या तथा क्रोध से भरकर सामान्य (मध्यम) नारी बन जाती है ।

पति को उचित मन्त्रणा देने वाली पत्नी के रूप मे स्वयभू ने मदोदरी को प्रस्तुत किया है । उसमे नीतिसम्मत विवेक है और तार्किक शक्ति से प्रभावित करने की शक्ति भी है ।

रावण बलपूर्वक किसी देवकन्या को हरण कर, जब लौटा, तो पता चला कि खर-दूषण उसकी बहन चन्द्रनखा को हरण करके ले गए है । क्रोध मे पागल-सा रावण उनके पीछे दौडा, तो मन्दोदरी ने रोक लिया, मानो 'गगा' ने बढकर वेगवती 'यमुना' के प्रवाह को रोका हो । तब मन्दोदरी ने रावण से कहा—परमेश्वर ! सोचिये तो सही । जैसी अपनी कन्या, क्या वैसी ही पराई बहन नही होती ? यदि वे आपकी आज्ञा मानकर कन्या को लौटा भी दे, तो उसे घर मे रखकर क्या लाभ ? मन्त्रियो को भेजकर उसका विवाह कर दीजिये ।[4]

मदोदरी के इस कथन मे कवि ने यदि एक ओर सामाजिक-नैतिक न्याय तथा मर्यादा का पोषण किया है, तो दूसरी ओर मदोदरी को विवेकशीला भी बना दिया है ।

जब बाली का अपमान करने के कारण रावण कैलास पर्वत के नीचे दब गया, तब मन्दोदरी ने उसकी प्राणरक्षा के लिए बाली से भीख तक माँगी

> मदोवरि पभणइ 'चारु-चित्त । अहो॑ वालि-भडारा करे॑ परित्त ॥
> लकेसहो॑ जाइ ण जीउ जाम । भत्तार-भिक्ख महु देहि ताम' ॥[5]

मदोदरी के इन शब्दो मे उसके आदर्श पत्नीत्व की प्रतिष्ठा हम पाते हैं । उसी के कारण रावण को मुक्ति मिल सकी ।

जब रावण सीता का अपहरण कर लका ले गया और सीता के मोह मे अधा हो गया, तब भी मदोदरी पत्नी-धर्म मे प्रवृत्त है । वह असीम सौन्दर्यशालिनी है । कवि

---

[1] पउमचरिउ, २२।६।६ ।

[2] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०६ ।

[3] पर्व, ५३।१३–१४ ।

[4] पउमचरिउ, १२।४।४–६ ।

[5] वही, १३।७।८–६ ।

ने उसके सौन्दर्य का विशद वर्णन किया है—रावण के पास मदोदरी ऐसे आई, मानो सिंह के पास सिंहनी आई हो। वह वन-हथिनी-सी गति वाली थी, कोकिला-सा मधुर आलाप करने वाली थी, हरिणी-सी विस्फारित नेत्रो वाली थी, चन्द्र-मुखी थी, हसिनी-सी मथर-गति वाली थी' अधिक कहने से क्या ? उसकी उपमा वह स्वय ही थी।[1]

रावण से यह सुनकर कि उसे इस बात का दु ख है कि 'सीता उसे नही चाहती',[2] मदोदरी ने हँसकर कहा—अरे जीव-सतापकारी रावण ! यह तुमने अत्यन्त अनुचित कहा, क्यो ससार मे अयश का डका बजवाते हो ? क्यो दोनो उच्च कुलो को कलकित करते हो ? नरक के नारकीयो से क्या तुम नही डरते, जो परधन और पर-स्त्री की कामना करते हो।[3]

मदोदरी के उपर्युक्त कथन मे स्वयभू ने अपनी मौलिक उद्भावना के द्वारा उसके विवेकशीला तथा हिताकाक्षिणी पत्नी के आदर्श स्वरूप को अत्यन्त गरिमा प्रदान कर दी है, किन्तु मदोदरी के चरित्र मे दृढता नही आ सकी। परिणामत मदोदरी ने रावण के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया—यद्यपि यह सब अशोभन, अनुचित है, किन्तु आप जो करेगे, वह शोभा ही देगा।

जइ वि असुन्दरउ ज पहु करेइ त छज्जइ ॥[4]

यह सुनकर रावण ने मदोदरी से कह दिया स्पष्ट शब्दो मे—यदि समस्त अन्त पुर को वैधव्य-व्यथा से बचाना चाहती हो, तो सीता के पास जाकर मेरा दौत्य-काय करो।[5] मन्दोदरी की निष्क्रिय पति-भक्ति का प्रभाव ! वह सहर्ष तत्पर हो गई यह कहकर—समस्त लोक दुखद हैं, तुम्हे छोड अन्य कुछ भी मुझे सुभग नही है। ऐरावत द्वारा अभिषिक्त, श्री-सेवित, मुझ महादेवी को आप जो आज्ञा देगे, वह मैं अवश्य करूँगी, क्योकि पति-हित अनुचित भी उचित होता है।[6]

यह है मदोदरी की पति-भक्ति, जो अपना मान-सम्मान सब न्योछावर कर, राजमहिषी होकर भी दूती बन रही है।[7]

जब दूती बनकर मन्दोदरी सीता के पास गई, तो सपत्नी की ईर्ष्या उसमे नही थी, अपितु स्वाभाविक स्नेह का भाव सीता के प्रति था।[8]

---

1 पउमचरिउ, ४१।४।१–४ तथा ६।

2 वही, ४१।५।६।

3 वही, ४१।६।२–४।

4 वही, ४१।७।६।

5 वही, ४१।८।६।

6 वही, ४१।६।२–४।

7 जैनागमो में पति की भावना की उपेक्षा कर स्वच्छन्द आचरण करने वाली पत्नी के संबध मे बहुत कम उल्लेख मिलते हैं।

—डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमो मे नारी जीवन, पृ० ६८

8 पउमचरिउ, ४१।१०।१–६।

मंदोदरी ने सीता से रावण के शौर्य, शक्ति, पराक्रम, वैभव तथा ऐश्वर्य का बखान किया और उसके सौन्दर्य की मुक्तकण्ठ से प्रशसा करते हुए रावण की रानी बन जाने का आग्रह किया

तहों लकेसरहों कुवलय-दल-दीहर-णयणहों ।
भुजहि सयल महि महएवि होहि दहवयणहों ॥[1]

कितना बड़ा त्याग है ! पति की इच्छापूर्ति के लिए मन्दोदरी महादेवी का अपना पद सीता को सहर्ष दे देने को प्रस्तुत है। स्वयभू की इस मौलिक उद्भावना ने मन्दोदरी के पत्नीत्व को गरिमामय बना दिया है।

सीता ने यह प्रस्ताव सुनकर मन्दोदरी का निकृष्टतम अपमान किया, परोक्षत उसे कुलटा कहकर

मन्दुड तुहुँ पर-पुरसि-पइट्ठी ते कज्जे महु देहि दुबुद्धि ॥[2]

पति के लिए राजमहिषी से दूती बनने वाली मन्दोदरी का 'राजत्व' तिलमिला उठा और क्रोध मे भरी हुई मन्दोदरी ने अपना महत्त्व सीता को बता दिया— महादेवी का पद नही चाहती तुम ? यदि लकेश्वर को तुम नही चाहती, तो तुम्हे आरे से तिल-तिल काटा जायेगा और निसाचरो को तुम्हारा माँस बाँटा जाएगा।

तो कन्दन्ति पइँ तिलु तिलु करवत्तेंहिँ कप्पइ ।
अण्णु मुहुत्तएँण णिसियरहँ विहजेंवि अप्पइ ॥[3]

यहाँ स्वयभू ने मन्दोदरी मे आत्माभिमान की झलक दिखाकर उसके चरित्र को सुमुखर कर दिया है।

हनुमान् द्वारा मुद्रिका प्राप्त कर जब सीता प्रसन्न हुई और दासियो ने रावण को सीता के प्रसन्न होने की सूचना दी, तो पुन रावण ने मन्दोदरी से प्रार्थना की कि 'सीता से प्रार्थना करो ताकि वह मुझे आलिंगन दे'।[4] घोरतम अपमान सह चुकने पर भी मन्दोदरी पुन सीता के पास रावण का प्रस्ताव लेकर गई।[5] यह उसकी एकान्त पतिभक्ति ही तो है, जो उसे अपना अधिकार तक सौंपने मे आपत्ति नही होती है। पुन सीता द्वारा रावण को अपशब्द कहे जाने पर मन्दोदरी अपनी राज-गरिमा का प्रदर्शन करती है ·

लीह लुहमि तुह तयणहों णामहों । जिह ण होहि रामणहों ण रामहों ॥[6]

अर्थात् तुम्हारे नाम की रेखा तक पोछ दी जाएगी, जिससे न तुम रावण की हो सको और न ही राम की। मन्दोदरी का रौद्र रूप स्वयभू ने यहाँ दिखाया है। यह

---

[1] पउमचरिउ, ४१।११।११।
[2] वही, ४१।१२।५।
[3] वही, ४१।१२।६।
[4] वही, ४६।११।१।
[5] वही, ४६।१३।२–१०।
[6] वही, ४६।१६।८।

राजमहिषी के रूप मे मन्दोदरी की कूटनीति ही है।

हनुमान् ने जब मन्दोदरी को अपमानपूर्वक ललकारा, तो दर्प से दीप्त, क्रोध से भरकर वह बोल उठी—खूब अच्छा पुरुष खोजा तुमने हनुमान् ? कुत्ता (राम) लेकर तुमने सिंह (रावण) छोड दिया, गधे (राम) को ग्रहण कर तुमने उत्तम अश्व (रावण) को छोड दिया ?[1]

यहाँ स्वयभू ने मन्दोदरी के हृदय मे सोई हुई 'राजमहिषी' को जगा दिया है, जो अभिमान तथा राज-दर्प से पूर्ण है। अत्यन्त सजीव चित्रण यहाँ मन्दोदरी का हुआ है। ईर्ष्या तथा द्वेष की मनोवैज्ञानिक स्थिति कवि ने प्रस्तुत की है, जब मन्दोदरी रावण से हनुमान् की चुगली करती है। अजना के विषय मे द्वेषपूर्ण तथा ईर्ष्यापूर्ण बाते कहकर उसने अपने मम पर लगी चोट रावण से कही—उपकार मानने के स्थान पर शत्रुओ से मिल गया है हनुमान्। जब अगूठी लेकर सीता के पास पहुँचा, तो मुझ पर भी गरज उठा।

ज आइउ अगुत्थलउ लेवि महु उट्ठिउ गलगज्जिउ करेवि ॥[2]

व्यजना का चमत्कार है—'मुझ पर भी गरज उठा' मे। ध्वनि देखिए—हनुमान् की यह मजाल कि मुझ पर, रावण की पटरानी पर, गरज सके।

यहाँ तक मन्दोदरी अपने विवेक को अन्ध-पति भक्ति के हाथो स्वेच्छा से पराजित कराती रही, किन्तु लक्ष्मण जब शक्ति लगने पर भी पुनर्जीवित हो उठा, तो उसका विवेक मचलकर जाग उठा। एक मानसिक सघर्ष होने लगा मन्दोदरी के हृदय मे। एक ओर राम की अजेय शक्ति, दूसरी ओर रावण की सीता मे चरम आसक्ति—परिणाम है, महासग्राम और वैधव्य की अथाह वेदना।

इस मानसिक सघर्ष से प्रेरणा प्राप्त करके मन्दोदरी ने विवेक तथा सद्भावना के स्वर मे रावण को समझाया—मर कर यदि जीवित होते रहे, तो लक्ष्मण की सेना अजेय हो जाएगी। कुछ अपनी लका का विचार करो। सीता को आज ही राम को लौटा दो।

जे मुआ वि जीवन्ति खण खणें दुज्जय हरि-बल होन्ति रणगणें ॥
देहि दसाणण सीय अज्ज वि लकाउरि रिज्झउ।
तोयदवाहण-वसु म राम-दवग्गिएँ डज्झउ ॥[3]

मन्दोदरी ने रावण को सद्-विवेक दिया, जिसकी सराहना नीति-निपुण मत्रियो ने मुक्तकण्ठ से की। रावण ने मन्दोदरी से कहा—हे मानिनी! तुम्हारी इच्छा का मै अपमान नही करता। सन्धि कर सकता हूँ राम से, यदि राज्य, रत्न, कोप लेकर मुझे, तुम्हे और सीता को बाहर जाने दे।[4]

---

[1] पउम चरिउ, ४६।१८।५-६।

[2] वही, ५१।१०।६।

[3] वही, ७०।१।६-१०।

[4] वही, ७०।४।६।

अत्यन्त निपुणता से कवि ने मन्दोदरी को पति-प्रिया का सम्मान दिला दिया है। अगद द्वारा मन्दोदरी को अपमानित किए जाने का समाचार सुनते ही रावण ने कहा—हे नितम्बिनी ! जिसने तुम्हारा अपमान किया है, उसका बस इतना ही जीवन शेष समझो।

किउ जेहिँ णियम्बिणि एउ कम्मु लइ वट्टइ तहोँ एत्तडउ जम्मु ॥[1]

मन्दोदरी को समस्त मन्त्रीगण एक बार पुन रावण को समझाने के लिए भेजते है। तब सुन्दरी मन्दोदरी रावण के पास जाती है और विनीत प्रार्थना करती हुई उससे कहती है—परमेश्वर ! आप क्यो मूर्ख बनते हैं ? मोहान्ध कूप मे गिरकर खोटी सीता के लिए नरक की महानदी मे मत गिरो। क्या चाहते हो, राजन् ! मैं लक्ष्मी, रति या अप्सरा बन जाऊँ।[2]

कितनी सहज व्यजना है मन्दोदरी के इस कथन मे। 'लक्ष्मी या रति या अप्सरा तो मैं भी बन सकती हूँ। क्या मै तुम्हे तृप्त नही कर सकती ?' वस्तुत मन्दोदरी का सुप्त तथा गर्वीला पत्नीत्व यहाँ जागा है और मन्दोदरी के चरित्र को उत्कर्ष उसने दिया है।

रावण जब अपनी वीरता का दम्भपूर्ण वर्णन करता ही रहा, तो क्रोध मे भरकर मन्दोदरी रावण से बोली—तुम्हारा दिमाग देवताओ ने आसमान पर चढा दिया है। इतना पराभव देखकर भी तुम सचेत नही हुए ? समय है, सीता को आज ही राम को लौटा सकते हो।[3] मन्दोदरी के मुख से अपने प्रति इस प्रकार के अपमानजनक कथन को सुनकर रावण आग-बबूला हो उठा और उसने मन्दोदरी को बहुत बुरा-भला कहा तथा उसके पत्नीत्व को भी दुत्कारा।[4]

मन्दोदरी के चरित्र का यह विकास नितान्त स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक है और स्वयभू की नितान्त मौलिक सृष्टि है।

रावण की मृत्यु पर मन्दोदरी का विलाप करुण रस का स्रोत बन गया है। यह उसके सतीत्व को गरिमा देने वाला है और रावण के प्रति मन्दोदरी के सात्त्विक प्रणय तथा दृढतम पति-भक्ति का सहज प्रकाशन है।[5]

विभीषण ने अत्यन्त आदरपूर्वक मन्दोदरी को राजमहिषी बनाने का प्रस्ताव किया, तो अन्त करण की समस्त वेदना तथा उच्चतम विवेक का प्रदर्शन कराते हुए मन्दोदरी ने अत्यन्त गम्भीर वाणी मे कहा—यह लक्ष्मी चचला कुमारी है। इसे क्या भोगूँ, जिसे स्वामी भोग चुके हैं। मै तो अब सब कुछ त्याग करके दीक्षा ग्रहण करूँगी।[6]

---

1 पउमचरिउ, ७२।१४।६।
2 वही, ७४।२।७–८।
3 वही, ७४।४।१–८।
4 वही, ७४।५।१–८।
5 वही, ७६।६, १० ११।१–६।
6 वही, ७७।१६।८–६।

मन्दोदरी के इस सद्विवेक तथा निष्ठा को देखकर राम ने उसे आशीष दिया—'तुम ससार में सर्वश्रेष्ठ बनो'। और मन्दोदरी ने ऐश्वर्य तथा भोग का त्याग करके सन्यास ले लिया। उसने जिन-व्रत की दीक्षा ग्रहण कर ली।[1]

स्वयभू ने मन्दोदरी मे नारीत्व के गुण-अवगुण दोनो समाहित करके उसका चरित्र अनूठा तथा विशिष्ट बना दिया है, उसे साहित्य मे चिरस्मरणीया बना देना कवि की सर्वथा अद्वितीय उपलब्धि है।

अधम पत्नी

उपरम्भा—विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे पर-पुरुष-अनुरक्ता इस नारी-पात्र की प्रथमत सृष्टि हुई है। नलकूबर राजा की उपरम्भा नामक पत्नी रावण मे अनुरक्त हो गई और दूती के द्वारा रावण से प्रणय-निवेदन कर दिया। रावण से रति-सुख की कामना मे उसने आशाली विद्या उसे दे दी, जिससे नलकूबर युद्ध मे बन्दी बना लिया गया। रावण ने उपरम्भा को समझाकर शील की रक्षा करने का सद्विवेक दिया और पुन उपरम्भा नलकूबर के साथ रहने लगी।[2]

स्वयभू ने इस नारी चरित्र को विमलसूरि से ग्रहण करके अपनी मौलिक उद्-भावनाओ से मण्डित किया है। नारी के असती-रूप, कामुक-रूप तथा कुलटा-रूप का जीवन्त प्रतीक उपरम्भा को स्वयभू ने बनाया है।

दुर्लंध्य नगर के वीर, पराक्रमी राजा नल-कूबर की सुन्दरी पत्नी है उपरम्भा। नल-कूबर के राज्य पर रावण ने आक्रमण कर दिया, किन्तु किसी भी प्रकार रावण की सेना नगर मे नही घुस सकी। रावण इससे चिन्तित है, कोई उपाय नही सूझ रहा है रावण को, जिससे नगर मे प्रवेश कर पाए।[3]

तभी नल-कूबर की पत्नी उपरम्भा रावण की परोक्ष प्रशसा सुनकर उसी प्रकार आसक्त हो उठी, जैसे मधुकरी गधवाम के पुष्प पर मुग्ध हो उठती है

अणुरत्त परोक्खए जें जसें ण। जिह महुअरि कुसुम-गध-वसें ण॥[4]

वासना के वेग मे बहती हुई उपरम्भा काम की दसवी अवस्था मे पहुँच गई। विरहाग्नि से दग्ध उसने अपनी सखी चित्रमाला से कहा—किसी तरह उससे मिला सको, तो मेरा जीवन सफल है।

जइ मेलावहि तो हलें सहि एत्तिउ फलु ससारहों॥[5]

सखी चित्रमाला सहर्ष उपरम्भा को रावण से मिलाने मे सहायक बनने को तैयार हो गई, तो कामावेश से दग्ध उपरम्भा ने कहलाया—यदि वह सुभग किसी

---

[1] पउमचरिउ, ७८।५।४।
[2] पच, १२।५३ से ७२ तक।
[3] पउमचरिउ, १५।११।१–४।
[4] वही, १५।११।६।
[5] वही, १५।११।६।

तरह मुझे न चाहे, तो आशाली विद्या उसे देकर कहना कि सेना के व्यूह को तोड़ने वाला इन्द्र का सुदर्शन चक्र भी मेरे पास है।[1]

पति-द्रोहिणी उपरम्भा की सखी ने रावण को कहा—हमारी स्वामिनी आपकी विरहाग्नि मे झुलस रही हैं। यदि आप उपरम्भा को चाहने लगें, तो सरलता से आपका सोचा हुआ सब सम्भव हो जाए। आशाली विद्या, सुदर्शन चक्र और नल-कूबर—सभी सिद्ध हो सकता है।[2]

कामावेश मे नारी का यह पतन ! स्वयभू अपने युग की एक सामाजिक बुराई की ओर कितना सार्थक और यथार्थ सकेत कर रहे हैं।[3]

रावण ने विभीषण से पूछा, तो उसने कहा—'ओह, उसकी इतनी हिम्मत ! ठीक भी है, स्त्री जो कर सकती है, वह पुरुष नही कर सकता।[4] तब विभीषण ने नीति की बात कही—कपट से झूठमूठ ही कह दो कि मैं उपरम्भा को चाहता हूँ। पुश्चली से झूठ बोलने मे दोष ही क्या ? विद्या प्राप्त कर लो, फिर उसे मत छूना।[5] रावण ने यही किया। उसने दूती का स्वागत-सत्कार करके आशाली विद्या माँगी। उपरम्भा की सखी ने विद्या रावण को दे दी। दूती के जाते ही रावण की सेना ने नलकूबर पर आक्रमण कर दिया और राजा बन्दी बनाया गया। रावण को नगर तथा चक्र मिल गया, किन्तु 'उसने उपरम्भा को नही चाहा।'

सहुँ पुरेँण सिद्धु त सुअरिसणु। उवरम्भ ण इच्छइ दहवयणु ॥[6]

सतीत्व खोकर उपरम्भा को आत्म-वचना तथा अपयश ही मिला। उसका नारीत्व कलकित हुआ और सदैव को वह अधम बन गई।

चन्द्रनखा—विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे चन्द्रनखा असती, कामुक तथा दुश्चरित्रा के रूप मे चित्रित हुई है। उनके अनुसार—राम-लक्ष्मण को देखकर वह मोहित हुई और ठुकराए जाने पर स्वय ही नाखूनो से अपने शरीर को विक्षत करके, बाल बिखेर कर तथा धूल-धूसरित होकर विलाप करने लगी, पति के पूछने पर शबूक-वध का समाचार सुनाकर कहा कि हत्यारो ने मेरा आलिगन किया, बलात्कार करना चाहा, किन्तु मैं किसी प्रकार बचकर आई हूँ।[7]

स्वयभू ने चन्द्रनखा के चरित्राकन में मनोवैज्ञानिक शैली अपनाकर उसे नितान्त

---

[1] पउमचरिउ, १५।१२।५–७।

[2] वही, १५।१२।६ तथा १३।१–२।

[3] जो पत्नी अपने पति के वध के लिए उत्सुक रहती थी, उसे वधकसमा कहा जाता था। ऐसी पत्नी दुष्ट चित्त एव पति के अहित की इच्छा से युक्त होती थी। साथ ही वह पति की उपेक्षा कर पर-पुरुष से सम्पर्क स्थापित किया करती थी।

—डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमो मे नारी-जीवन, पृ० ६३

[4] पउमचरिउ, १५।१३।५।

[5] वही, १५।१४।१–३।

[6] वही, १५।१५।८।

[7] पद्म, ४४।१–८।

मौलिक बना दिया है। स्वयभू ने उसे रावण की अनुजा के रूप मे सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है।[1] रावण एक दिन किसी सुरबाला का अपहरण करके लौटा, तो उसे सूचना दी गई—खरदूषण चन्द्रनखा का अपहरण कर ले गए हैं।

तुरमाणे केण वि वज्जरिउ। खर-दूसण-कण्णा-दुच्चरिउ ॥[2]

इसी कारण चन्द्रनखा का खर से विवाह कर दिया गया—वह माँ बन गई।

तेहिं विवाहु किउ खरु रज्जें थिउ अणुराहहें विज्ज-सहिउ।
वणें णिवसन्तियहें वय-वन्तियहें सुउ उप्पण्णु विराहिउ ॥[3]

राम-लक्ष्मण-सीता वन मे थे। एक दिन अनजाने लक्ष्मण ने तपस्या मे निरत चन्द्रनखा के पुत्र शम्बूक का सिर काट दिया।[4] राम ने लक्ष्मण को कहा—यह मामूली व्यक्ति नही था। निश्चय ही तुमने यम की दाढ उखाडी है।[5]

तभी रावण की सगी बहन, पाताल-लका के राजा खर की पत्नी और शम्बूक की माता चन्द्रनखा हर्ष मे मग्न वहाँ आई और पुत्र का कटा हुआ सिर देखकर तुरन्त मूर्छित हो, पृथ्वी पर गिर पडी। वह अत्यन्त कारुणिक विलाप कर रही थी, जिससे करुण रस का उद्रेक हो रहा था।[6]

पुत्र-वियोग से पीडित चन्द्रनखा करुण क्रन्दन कर रही थी—हे पुत्र! क्यो महा-निद्रा मे मग्न हो? मुझसे क्यो नही बोलते? मुझे अपना रूप दिखाओ, मुझसे मीठी बाते करो। आ पुत्र, मेरी गोद मे बैठ। मेरा दूध पी, मुझसे गले मिल।[7]

उसका मातृत्व बिलख रहा था—हे देवताओ! तुम मेरे लाल को नही बचा सके। तुम्हारा भी क्या दोष। दोष तो मेरा है, शायद मैंने पूर्व जन्म मे किसी को इसी प्रकार सताया है। सहसा नाटकीय परिवर्तन हुआ चन्द्रनखा मे और वह भयानक हो उठी। रौद्र भाव से पूर्ण वह बोल उठी—जिसने मेरे पुत्र की हत्या की है, उसके जीवन का हरण न करूँ, तो आग की लपटो मे प्रवेश कर लूँगी।

राम-लक्ष्मण को देखते ही पुन चन्द्रनखा मे नाटकीय परिवर्तन हुआ। पुत्र-वियोग के स्थान पर रति-वियोग आ गया और कामदेव उसे नचाने लगा

ज दिट्ठ वणन्तरें वे वि णर गउ पुत्त-विओउ कोउ णवर ॥
आयामिय विरह-महाभडें ण णच्चाविय मयरद्धय-णडें ण ॥[8]

कामावेग बढने लगा। पसीना छूट रहा था, कामाग्नि की वेदना बढ रही थी।

---

[1] पउमचरिउ, १०।१।५ तथा २।३-४।
[2] वही, १२।४।१।
[3] वही, १२।८।६।
[4] वही, ३६।४।१-६।
[5] वही, ३६।१।४-६।
[6] वही, ३६।७।१-२।
[7] वही, ३६।८।१-६।
[8] वही, ३६।११।१-२।

तब उसने मन मे सोचा—अच्छा ! अब मैं इस कुरूप को छिपाकर सुर-सुन्दरी का नया रूप ग्रहण कर लूँ, तब इस लता-भवन मे प्रवेश करूँ। इनमे से एक-न-एक तो मुझसे अवश्य विवाह करेगा।[1]

साक्षात् कामदेव का कौतुक बनकर, वह कुछ दूर बैठ, चन्द्रमुखी-सी बनी हुई, रोने लगी। सीता ने राम को उसका दुःख पूछने भेजा। राम ने उससे पूछा—क्यो रो रही हो ? तो चन्द्रनखा ने नाटक करते हुए कहा—मैं अनाथ हूँ। वन मे भटक गई हूँ, नही जानती कहाँ मेरा देश या प्रान्त है ? आप दोनो मे से कोई एक मेरा वरण कर ले।[2]

राम ने उसे लक्ष्मण के पास जाने को कहा। उन्हे चन्द्रनखा मे दुश्चरित्रा, कुलक्षणा तथा कुलटा नारी का रूप मिला—जो कामिनी कपट-चाटुकारी करती है, वह पतिघातिनी होती है। जो कुलवधू बार-बार शपथ करती है, वह सैकडो बुराइयाँ करने वाली है। जो कन्या होकर भी पर-पुरुष का वरण करती है, वह बडी होकर भी पर-पुरुष-गामिनी होगी।[3]

चन्द्रनखा की कामुकता ने उसके पत्नीत्व तथा नारीत्व को कलकित करा दिया है। लक्ष्मण ने सामुद्रिक शास्त्र के लक्षण बताकर कहा कि 'यह वधू कुलक्षणी है। यह निश्चय ही पुश्चली है, मैं इससे विवाह नही कर सकता'।[4]

किन्तु वासना से जलती हुई कुलटा चन्द्रनखा ने कहा—क्या मैं अपने स्वभाव पर लज्जित होऊँ ? कदापि नही। यदि सच्ची निशाचरी हूँ, तो अवश्य तुम्हारा भोग मैं करूँगी।

पभणइ चन्दणहि 'कि णियय सहावे लज्जमि।
जइ हउँ णिसियरिय तो पइ मि अज्जु स इँ भुजमि'॥[5]

कुलटा की निर्लज्जता का यथार्थ रूप यहाँ कवि ने प्रस्तुत कर दिया है। अपनी उपेक्षा देखकर वह पुन लज्जाहीन होकर गरज उठी—मरो ! तुम्हारी बलि मैं भूतो को दूँगी।

चन्दणहि अलज्जिय एम पगज्जिय 'मरु मरु भूयहुँ देमि वलि'।
णिय-रूवे वड्ढिय रण-रसे अड्ढिय रावण-रामहुँ णाइँ कलि॥[6]

रौद्र रूप मे गरजती वह बोली—जिस तरह मेरे पुत्र को मारकर तुमने खड्ग लिया है, वैसे ही तुम तीनो मारे और खाए जाओगे।

रोती बिलखती वह खर दूषण के पास पहुँची और उन्हे शम्बूक की मृत्यु का

---

1 पउमचरिउ, ३६।११।५–६।
2 वही, ३६।१२।१–७।
3 वही, ३६।१३।६–८।
4 वही, ३६।१५।१–१०।
5 वही, ३६।१५।११।
6 वही, ३७।प्रारम्भ।

समाचार दिया ।[1] शम्बूक के हत्यारे के विषय मे जब खर ने पूछा, तो पतिता चन्द्रनखा ने कहा—दो प्रचण्ड वीरो मे से एक ने शम्बूक को मारा है...देखिए, कैसे उसने मेरा वक्ष-स्थल विक्षत कर डाला है । मुझे वन मे पकड़कर किसी प्रकार वे मेरा भोग भर नही कर सके । मैं पुण्योदय से बच सकी हूँ ।[2]

स्वयभू के मन मे बैठा सचेत कवि इस कुलटा का यह अनाचार कैसे देख पाता ? उसने सयानी और जानकार दूसरी रानियो के माध्यम से चन्द्रनखा के निकृष्ट चरित्र की भर्त्सना करा दी है—चन्द्रनखा के वचन सुनकर, सयानी रानियाँ ताड गईं कि यह सब इसी स्थूल-स्तनी कुलटा का कर्म है ।[3]

तब चन्द्रनखा द्वारा उकसाया गया खर राम से युद्ध करने गया और लक्ष्मण के हाथो पराजित हुआ ।

चन्द्रनखा का चरित्र भी अधम पत्नी का चरित्र है, जो नारीत्व को कुकर्मों की काली स्याही से कलकित कर चुकी है । चन्द्रनखा ने पत्नीत्व को ही नही, उच्चतम मातृत्व को भी कलक लगाया है ।

गौण पात्र

अनगकुसुम—विमलसूरि ने इसे चन्द्रनखा की पुत्री तथा हनुमान् की विवाहिता पत्नी के रूप मे चित्रित किया है ।[4] स्वयभ् ने इसी परम्परा को ग्रहण किया है और हनुमान् से अनगकुसुम का विवाह होना दिखाया है

पुज्जिउ पवण-पुत्तु दहगीवे । दिज्जइ पउमराय सुग्गीवे ॥
खरें ण अणगकुसुम वय-पालिणि । ॥[5]

अन्यत्र भी खर द्वारा अपनी कन्या अनगकुसुम का विवाह हनुमान् से करने का उल्लेख हुआ है ।[6]

स्वयभू ने अनगकुसुम का हल्का-सा रूप-चित्रण उस प्रसग मे किया, जब सुग्रीव का दूत हनुमान् को राम की सहायतार्थ बुलाने गया । दूत ने देखा—एक ओर एक स्त्री बैठी थी । प्राणप्रिय उस स्त्री के हाथ मे वीणा थी । सुन्दर भुजाओ वाली, उसका नाम अनगकुसुम था ।[7]

दूत के मुख से लक्ष्मण का पराक्रम सुनकर स्वभावत अनगकुसुम डर गई,

---

[1] पउमचरिउ, ३७।४।६ ।

[2] वही, ३७।६।१–९ ।

[3] वही, ३७।७।१–२ ।

[4] पउमचरियं, पव, १९।३४ ।

[5] पउमचरिउ, २०।१२।८–९ ।

[6] वही, ४२।१२।६ ।

[7] वही, ४५।५।३–४ ।

उसका हृदय वक्ष हो गया; चेतना खो गई ।[1]

पिता तथा भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर अनगकुसुम मूर्छित हो गई और चेतना आने पर करुण विलाप करने लगी ।

सरहों भीय मुच्छगय पुणु वि पडीविया ।
चन्दणेण पव्वालिय पच्चुज्जीविया ॥[2]

इस सक्षिप्त चित्रण मे कवि ने अनंगकुसुम को पति-प्रिया, सगीत-कला-निपुणा, भयभीता तथा पितृ-भक्ता के रूप मे चित्रित किया है ।

अमृतमती—लवण तथा अकुश (सीता के पुत्र) के मामा वज्रजघ ने उनके विवाह के लिए पृथ्वीपुर के राजा पृथु के पास दूत भेजा । इसी राजा पृथु की रानी है अमृतमती और इनकी कन्या है कनकमाला ।[3]

पट्ठविय महन्ता तेण तासु । पिहिमी-पुरवरें पिहु-पहुहें पासु ॥
दे देहि अमयमइ-तणिय बाल । कमणीय-किसोयरि कणयमाल ॥[4]

कनकमाला—पृथ्वीपुर के राजा पृथु तथा रानी अमृतमती की अत्यन्त सुन्दरी कन्या[5] कनकमाला है, जिसका विवाह सीता के पुत्र लवण से हुआ

लइ लवण तुहारी कणयमाल ।[6]

तरगमाला—कनकमाला की बहन, जो लवण के अनुज अकुश को विवाह मे दी गई

.. . . मयणकुस तुहु मि तरगमाल ।
पइसारें वि पुरवरें किउ विवाहु । थिउ वज्जजघु जय-सिरि-सणाहु ॥[7]

श्रीमाला—आदित्य नगर के राजा विद्यामन्दर की रानी वेगमती की कन्या श्रीमाला है, जिसने स्वयवर मे राजा किष्किन्ध के गले मे माला डालकर पति रूप मे वरण किया है

किष्किन्धहों घल्लिय माल ताएँ । ण मेहेसरहों सुलोयणाएँ ॥[8]

श्रीमाला सुन्दरी है । उसके द्वारा स्वयवर मे किष्किन्ध का वरण करने पर युद्ध हो गया

अब्भिट्टु जुज्झु विज्जाहराहँ । सिरिमाला-कारणें दुद्धराहँ ॥[9]

---

[1] पउमचरिउ, ४५।६।१–१० ।
[2] वही, ४५।७।१ ।
[3] विमलसूरि पउमचरिय, पर्व, ६८।४ ।
[4] पउमचरिउ, ८२।२।१–२ ।
[5] वही, ८२।२।२ ।
[6] वही, ८२।५।४, विमलसूरि कृत पउमचरिय, पर्व, ६८।४ में यही उल्लेख है ।
[7] वही, ८२।५।४–५ ।
[8] वही, ७।४।१ ।
[9] वही, ७।५।२ ।

इस नारी-पात्र के माध्यम से स्वयभू ने अन्तर्जातीय विवाह की ओर सकेत किया है।[1]

भानुमती—रावण के भाई कुम्भकर्ण की पत्नी के रूप मे भानुमती का केवल नामोल्लेख हुआ है[2]

तेण वि पवुत्तु हे हंसगइ । कल्लएँ रण-णहयलें भाणुवइ ॥[3]

अर्थात् कुम्भकर्ण कह रहा था—हे हस गति ! कल युद्धाकाश मे मै सूर्य बनूंगा।

विदग्धादेवी—विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' के ही अनुसार स्वयभू ने विभीषण की चतुरा पत्नी के रूप मे विदग्धादेवी का उल्लेख किया। सक्षिप्त उल्लेख मे स्वयंभू ने विदग्धा को अतिथि-सत्कार मे निपुण गृह-पत्नी चित्रित किया है। राम-लक्ष्मण जब युद्ध-विजय करके लका मे प्रविष्ट हुए, तो विदग्धादेवी एक हजार सुन्दरियो के साथ दही, दूब, जल और अक्षत लेकर स्वागतार्थ पहुँची

सु-वियड्ढ वियड्ढाएवि लहु वर-जुवइहुँ दसहिँ सएहिँ सहुँ ॥
दहि-दोव-अलक्खय-गहिय-कर गय तहिँ जहिँ हलहर-चक्कहर ॥[4]

राम ने विदग्धादेवी के पत्नीत्व की सराहना करते हुए विभीषण से कहा—तुम्हारे घर मे राज्यश्री सदैव रहेगी, क्योंकि विदग्धा जैसी विज्ञ पत्नी तुम्हारी है।[5]

विदग्धादेवी के रूप मे स्वयभू ने भारतीय पत्नी के सास्कृतिक स्वरूप का सजीव चित्रण किया है और सात्त्विक पत्नी को ऐश्वर्य की प्रदाता माना है।

कमलावती—श्रीकण्ठ की पत्नी के रूप मे कमलावती का नामोल्लेख मात्र हुआ है। इसने श्रीकण्ठ से प्रणय-परिणय किया, जिस कारण युद्ध हुआ।[6]

विजया—इक्ष्वाकु कुल के राजा धरणीधर के वीर पुत्र जित शत्रु की पत्नी विजया है। यह अत्यन्त सुन्दरी तथा बेलफल के समान गोल स्तनो वाली है। इसी से अजित का जन्म हुआ।

तासु विजय महएवि मणोहर । परिणिय थिर-मालूर-पओहर ॥[7]

तनूदरा—यह सुर-सुन्दरी है, जिसको रावण अपहरण करके अपने नगर मे लाया। रावण की पत्नी, स्वयभू ने इसे कहा है। पउमचरिय मे इसका उल्लेख नही मिलता।

गउ एक्क-दिवसें सुर सुन्दरिहें । जा अवहरणेण तणूयरिहें ॥

× × × ×

---

1 जैनागमो मे अनुलोम विवाह की ही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।
—डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमो मे नारी-जीवन, पृ० ५८

2 विमलसूरि पउमचरिय, पव, ५।

3 पउमचरिउ, ६२।१२।२।

4 वही, ७८।१२।१–२।

5 वही, ७८।१३।८।

6 वही, ६।२।१–६।

7 वही, ५।१।४, पउमचरिय, पव, ५।५२–५३ मे यही उल्लेख है।

छुड़ छुड़ दहवयणु परितुट्ठ-मणु किर स-कलत्तउ आवइ ।[1]

ध्रुवा—बाली की पत्नी के रूप मे ध्रुवा का केवल नामोल्लेख हुआ :

जिम धुव जिम मन्दोवरि रडउ ।[2]

श्रीसम्पदा—कुम्भकर्ण की परिणीता पत्नी के रूप मे केवल नामोल्लेख हुआ है—कुम्भपुर मे कुम्भकर्ण ने श्रीसम्पदा से विवाह किया ।

एत्तहे॑ वि कुम्भपुरे॑ कुम्भयण्णु । परिणाविउ सिय-सपय पवण्णु ।।[3]

रत्नावली—विद्याधर कुमारी, नित्यालोक नगर की सुन्दरी रत्नावली का रावण से विवाहोल्लेख हुआ है

विज्जाहर-कुमारि रयणावलि णिच्चालोय-पुरवरे ।
परिणे॑वि वलइ जाम ता थम्भिउ पुप्फविमाणु अम्बरे ।।[4]

मानसुन्दरी—विजयार्ध-पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे स्थित रथनूपुर नामक नगर के राजा सहस्रार की मानसुन्दरी नामक पत्नी का उल्लेख हुआ है, जो पृथुल नितम्बिनी तथा पीन-पयोधरा सुन्दरी थी । इन्द्र नामक पुत्र की जननी थी ।

पिहुल-णियम्बिणि पीण-पओहरि । सहसारहो॑ पिय माणस-सुन्दरि ।।[5]

कैकसी—रत्नाश्रव की परिणीता पत्नी कैकसी है । पत्नी रूप मे कैकसी को कवि ने पति-प्रिया दिखाया है। रात मे स्वप्न देखकर कैकसी ने जब पति को बताया, तो रत्नाश्रव ने उसे मुस्कराते हुए कहा—तुम्हारे तीन पुत्र होगे । यह सुनकर रानी कैकसी के हर्ष की सीमा न रही ।

परिओसे कहि मि ण मन्ताहुँ । णव-सुरय-सोक्खु माणन्ताहुँ ।।[6]

इसी कैकसी के गर्भ से रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तथा चन्द्रनखा का जन्म हुआ ।

कौशकी—कैकसी की सगी बहन के रूप मे कौशकी का नामोल्लेख हुआ है । विश्वावसु की पत्नी तथा वैश्रवण की माता कौशकी है

कउसिकि जणेरि एयहो॑ तणिय । पहिलारी वहिणि महु त्तणिय ।।
वीसावसु विज्जाहरु जणणु । एँहु भाइ तुहारउ वइसवणु ।।[7]

केतुमती—आदित्यपुर के राजा प्रह्लादराज की पत्नी के रूप मे केतुमती का उल्लेख हुआ है । विमलसूरि कृत पउमचरिय मे इस नारी-पात्र का नाम 'कीर्तिमती' है ।[8] पवनजय की माता केतुमती है ।

---

[1] पउमचरिउ, १२।३।४, ६ ।
[2] वही, १२।६।५ ।
[3] वही, १०।७।४ ।
[4] वही, १३।१।१ ।
[5] वही, ८।१।२ , विमलसूरि कृत पउमचरिय, पर्व ७।२ पर यही उल्लेख हुआ है ।
[6] वही, ६।३।५ , पउमचरियं, पव, ७।५४ ।
[7] वही, ६।६।२–३ ।
[8] पव, १५।६ ।

एत्तहें वि ताव पल्हाय-राउ । सहुँ केउमइएँ रविपुरहो आउ ॥
स-विमाणु स-साहणु स-परिवारु । अण्णु वि तहिँ पवणजय-कुमारु ॥[1]

मनोवेगा—महेन्द्रनगर के राजा महेन्द्र की सुन्दरी पत्नी मनोवेगा है, जिसने अजना को जन्म दिया है ।

एत्तहें वि महिन्दु महिन्दु णामें । पुरवरें इच्छिय-अणुहुअ-कामें ॥
तहो हियवेय णामेण भज्ज । तहें दुहियजणसुन्दरी मणोज्ज ॥[2]

पउमचरिय मे इस नारी-पात्र का नाम 'हृदयसुन्दरी' है ।[3]

पुष्परागा (पकजरागा)—सुग्रीव-तारा की सुन्दरी कन्या, जो हनुमान् को विवाह मे दी गई, पुष्परागा है ।[4] विमलसूरि कृत पउमचरिय मे इसका नाम 'पद्मरागा' है ।[5] हनुमान् की पत्नी के रूप मे स्वयभू ने सक्षिप्त, किन्तु सजीव चित्रण मे इसे सुसस्कृत पत्नी होने का गौरव दिया है ।

जब सुग्रीव का दूत हनुमान् के यहाँ पहुँचा, तो उसने देखा—दूसरी ओर एक और स्त्री बैठी थी, जो अपने सुन्दर कर-कमलो से लक्ष्मी-सी दीख पडती थी । वह सुग्रीव-पुत्री पुष्परागा थी ।

सा पकयराय अभगयहो । सुग्गीवहो सुअ सस अगयहो ॥[6]

लक्ष्मण का शौर्य पराक्रम सुनकर खर-पुत्री अनगकुसुम भयभीत हो गई, किन्तु पकजरागा का मन अनुराग से भर गया, पुलक से भर गया, उसे सुखानुभूति हुई ।

त सुणेंवि अणगकुसुम डरिय । पकयरायाणुराय-भरिय ॥
एक्कहें ण वज्जासणि पडिय । अण्णेक्कहें रोमावलि चडिय ॥[7]

अनगकुसुम की तुलना मे पुष्परागा को रखकर स्वयभू ने मानो असद्-वृत्ति एव सद्-वृत्ति के मध्य सजीव तुलना की है । मौलिक उद्भावना कवि की यह है ।

कामलेखा—इसको वेश्या रूप मे दिखाया है, किन्तु राम द्वारा विद्युदग से कामलेखा का परिणय कराकर कवि ने वेश्या के सुधार की ओर सम्भवत सकेत किया है ।[8]

कनकप्रभा—यक्ष स्थान नगर के राजा अमृत सर की चरित्रहीना पत्नी के रूप मे स्वयभू ने कनकप्रभा (पद्मावती) का उल्लेख किया है । कनकप्रभा का वसुभूति

---

[1] पउमचरिउ, १८।४।१–२ ।
[2] वही, १८।३।४–५ ।
[3] पव १५।११ ।
[4] पउमचरिउ, २०।१२।८ ।
[5] पर्व, १९।३७–३९ ।
[6] पउमचरिउ, ४५।५।६ ।
[7] वही, ४५।६।२–३ ।
[8] वेश्याओ को समाज मे उचित स्थान प्राप्त नही था । उनका समाज में आना-जाना भी प्राय बन्द था । —डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमो मे नारी-जीवन, पृ० १६३
पउमचरिउ, २६।३।७–८, पउमचरिय, पव, ३३ ।

नामक ब्राह्मण से अनुचित सम्बन्ध था। एक दिन अमृत सर वसुभूति के साथ कहीं बाहर गया और ब्राह्मण ने अमृत सर की हत्या कर दी। वहाँ से लौटकर पति को मरा समझ, वह ब्राह्मण उसकी पत्नी के साथ आनन्दोपभोग करने लगा। कनकप्रभा ने अपने पुत्रों—उदित-मुदित की भी लाज नहीं रक्खी। ब्राह्मण कनकप्रभा का उपभोग करते हुए अधर-पान करने लगा

पल्लट्टइ पल्लटिउ भणेँवि । ते उइय-मुइय तिण-समु गणेँवि ।।
सो उवउवाएविएँ सहुँ जियइ । अभिओवमु अहर-पाणु पियइ ।।[1]

इस चरित्रहीना पत्नी का चित्रण स्वयभू ने समाज की पतितावस्था की ओर सकेत करने के लिए ही किया है।

पुष्पावती—चन्द्रमुख विद्याधर की पत्नी पुष्पावती है।* इसी को पति ने वन मे प्राप्त भामण्डल सौंप दिया था

घत्तिउ पिंगलेण अमरिन्दें । पुप्फवइहेँ अल्लविउ णरिन्दें ।।[2]

विमलसूरि कृत पउमचरिय मे इस पात्र का नाम 'अशुमती'[3] है, जो बाँझ है।

दुर्नयस्वामिनी—यह नारी-पात्र स्वयभू की सर्वथा अनूठी सृष्टि है, जो बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म के बीच तत्कालीन सघर्ष की ओर स्पष्ट सकेत करती है। यह पूर्व-जन्म मे दण्डपुर के राजा दण्डक (इस जन्म मे जटायु पक्षी) की पत्नी थी। राजा बौद्ध धर्मानुगामी था, किन्तु एक बार त्रिकालज्ञ मुनि द्वारा ज्ञानोपदेश सुनकर उसने जैन-धर्म स्वीकार कर लिया।[4] उसकी पत्नी दुर्नयस्वामिनी ने जब राजा द्वारा जैन-धर्म स्वीकार करने की बात सुनी, तो वह आग-बबूला हो गई

तो एत्थन्तरेँ जण-मण-भाविणि । कुइय खणद्धे दुण्णय-सामिणि ।।[5]

दुर्नयस्वामिनी ने अपने पुत्र मयवर्द्धन से कहा—राजा जिन-भक्त हो गया है, उसे बदलने का उपाय सोचो। सब पूँजी मन्दिर मे रख दो। राजा उसे खोजने जाएगा, तो चोर समझकर मुनियो को मरवा देगा।[6]

ऐसा करके रानी ने राजा को सूचित किया, तो राजा ने इस पर विश्वास ही नही किया। रानी ने परिवार वालो से मत्रणा करके षड्यन्त्र रचा कि 'किसी व्यक्ति को मुनि बनाकर रानी के निकट बैठा दिया जाए, तब अवश्य ही राजा क्रुद्ध होकर इन मुनिवरो को मरवा देगा।'[7]

किसी छद्म-वेशी मुनि के साथ बैठकर रानी अश्लील चेष्टाएँ करने लगी

---

[1] पउमचरिउ, ३३।२।६–७।
[2] वही, २१।५।८।
[3] पर्व, २६।८२।
[4] पउमचरिउ, ३५।७।३।
[5] वही, ३५।७।५।
[6] वही, ३५।७।६–७।
[7] वही, ३५।८।१० तथा ६।१।

तेण समाणउ जण-मण-भाविणि । लग्ग वियारेंहिं दुण्णय-सामिणि ।।[1]

राजा के पुत्र ने राजा को यह सब दिखाया, तो क्रुद्ध होकर उसने पाँच सौ मुनिवरो को बन्दी बनवा लिया ।[2] राजा ने मुनियो को यातनाएँ देकर प्रताडित किया । फलस्वरूप दण्डक राजा का नगर भस्मीभूत हो गया और राजा को यमलोक ले जाया गया । यम के आदेश से दुर्नयस्वामिनी छठे नरक मे डाल दी गई

पहु-आएसे दुण्णय-सामिणि । घत्तिय छट्ठिहिँ पुढविहिँ पाविणि ।
जहिँ दुक्खइँ अइ-घोर-रउद्दइँ । णवराउसु बावीस-समुद्दइँ ।।[3]

दुर्नयस्वामिनी का चरित्र पति-हन्ता पत्नी के साथ-साथ जैन-धर्म-विरोधिनी का भी है । इस पात्र के चरित्राकन मे स्वयभू का धार्मिक आग्रह अत्यन्त स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

अनुराधा—तमलकार नगर के राजा चन्द्रोदर की पत्नी अनुराधा से विराधित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।[4]

विशल्या—यह नारी-पात्र भी स्वयभू की मौलिक उद्भावना तथा उच्च काव्य-प्रतिभा का परिचायक बन गया है । यह लक्ष्मण की परिणिता पत्नी है, जो जन्म-जन्मान्तर से लक्ष्मण का वरण करती रही है । विशल्या का रूप-चित्रण स्वयभू ने अत्यन्त रुचिपूर्वक किया है ।

स्वयभू द्वारा किया गया विशल्या का रूप-चित्रण दर्शनीय है—चरण-तल रक्ताभ कमल, जघाएँ कदली-स्तम्भ, त्रिवली कामदेव-नगरी की खाइयाँ, रोमावली कामाग्नि का धुंआ, रक्ताभ हथेलियाँ चचल अशोक दल, मुख चन्द्र-बिम्ब, अधर पक्व बिम्बाफल, दन्तावली मालती की अधखिली कलियाँ, नेत्र कामदेव के बाण समान प्रतीत होते थे ।[5] ऐसी सुन्दरी विशल्या ने लक्ष्मण को कामासक्त कर लिया । विधि-विधान से दोनो का विवाह सम्पन्न हुआ

त सुणेंवि सुमित्तिहें णन्दणेण । किउ पाणि-ग्गहणु जणद्दणेण ।।
दहि-अक्खय-कलसहिँ दप्पणेहिँ । हवि-मण्डव-वेइय-मक्खणेहिँ ।।
रगावलि-हरियन्दण-छडेहिँ । कत्थइ स-विप्प-वन्दिण-णडेहिँ ।।[6]

स्वयभू द्वारा किया गया विवाहोत्सव का यह सास्कृतिक चित्रण यहाँ विशेष उल्लेखनीय तथा दर्शनीय बन गया है ।

सुप्रभा—देव सगीत नामक नगर के राजा शशिमण्डल की महादेवी सुप्रभा है । उसकी चाल हस समान है । इतना ही उल्लेख स्वयभू ने किया है ।

---

[1] पउमचरिउ, ३५।६।३ ।

[2] वही, ३५।६।७ ।

[3] वही, ३५।१२।६ ।

[4] वही, ४०।५।१० , पउमचरिय, पर्व, ६।२०।

[5] वही, ६६।२१।१-१४ ।

[6] वही, ६६।२२।६-८ ।

ससिमण्डलु अत्थि णराहिवइ । सुप्पह-महएवि मराल-गइ ॥[1]

सुग्रीव की बहन का नाम भी सुप्रभा है । इसका विवाह रावण से हुआ था ।[2]

सुतारा—स्वयभू ने 'तारा' की कथा मे मौलिकता का समावेश किया है । राजा सहस्रगति नकली सुग्रीव बनकर सुग्रीव की पत्नी सुतारा को हरण कर ले गया ।[3] तब सुग्रीव विराधित के माध्यम से राम की शरण मे आ गया । सुतारा के अपहरण की कथा सुनकर राम सुग्रीव की मदद को तत्पर हो गए ।[4] माया-सुग्रीव को मारकर राम ने सुग्रीव की पत्नी उसे पुन वापस दिला दी और वह पत्नी सहित राज्य-भोग करने लगा ।

सुग्रीव अपनी पत्नी सुतारा के प्रति अत्यन्त आसक्त है, जो परोक्षत सुतारा के रूप की प्रशसा ही कवि द्वारा की गई है

तारा-णयण-सरेंहिं जज्जरियउ । तुम्हारउ णाउ मि वीसरियउ ॥[5]

स्वयभू ने 'पउमचरिउ' मे अनेक स्थलो पर सुग्रीव का उल्लेख तारा के पति के रूप मे ही किया है[6] और इस विवाद से बचने का प्रयास किया है कि तारा सुग्रीव की परिणीता पत्नी थी अथवा नही । यही कथा महाकवि विमलसूरि ने भी दी है,[7] जिसे परम्परा मे स्वयभू ने ग्रहण करके चित्रित किया है और अपनी मौलिक उद्भावना के द्वारा सुतारा के चरित्र मे उदात्त पत्नीत्व की प्रतिष्ठा कराई है ।

निष्कर्ष

स्वयभू ने नारी के पत्नीत्व के आदर्श तथा अधम—दोनो ही पक्षो को लेकर अपनी नारी-विषयक उदात्त चेतना को स्पष्ट किया है । सीता, अजना आदि आदर्श पत्नीत्व की प्रतिनिधि नारियाँ हैं, उपरम्भा, चन्द्रनखा इसी प्रकार अधम पत्नीत्व की प्रतिनिधि कही जा सकती है । तात्कालिक युगीन परिवेश, सामाजिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक मान्यताएँ स्वयभू के नारी-चित्रण की दृढ पृष्ठ-भूमि रहे है । इस सदर्भ मे 'दुर्नयस्वामिनी' का चरित्राकन विशेष रूप से उल्लेखनीय बन गया है । नारी के पत्नीत्व की गरिमा को स्वयभू ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार करके प्रतिष्ठित भी किया है । आदर्श से उनकी नारियाँ दबी नही, बल्कि गरिमा-मण्डित हुई हैं और उनका सहज मानवीय यथार्थ रूप भी बना रहा है । 'पत्नीत्व' की सर्वोच्च प्रतिष्ठा स्वयभू ने कराई है, सम्भवत 'पत्नी' के चिर कृतज्ञ रहने की भावना ही इसके मूल मे है ।[8]

---

[1] पउमचरिउ, ६८।२।२ ।

[2] वही, १२।१२।१, पउमचरिय, पव, १० ।

[3] पउमचरिउ, ४३।आरम्भ ।

[4] वही, ४३।६।६ ।

[5] वही, ४४।४।६ ।

[6] वही, १२।१२।५–६, ६५।१०।१, ७५।५।१ तथा ७८।६।५ ।

[7] पउमचरिय, पव, ४७।११–५० ।

[8] स्वयभू की पत्नियो—आइच्चम्बा तथा सामिअब्बा, ने क्रमश अयोध्याकाण्ड तथा विद्याधर-काण्ड लिखवाए थे । —नाथूराम प्रेमी जैन-साहित्य और इतिहास, पृ० १९७

तुलसीदास पत्नियाँ

प्रधान पात्र			गौण पात्र			
(उत्तम)	१	सीता	१	अरुंधती	२	मांडवी
	२	कौशल्या	३	उर्मिला	४	श्रुतकीर्ति
	३	सुमित्रा	५	मैना	६.	सतरूपा
	४	पार्वती	७	अहल्या	८	सुनयना
(मध्यम)	१	कैकेई	९	अनुसूया	१०	तारा
	२	मदोदरी	११	सूर्पनखा	१२	रति

प्रधान पात्र

उत्तम पात्र

सीता—प्राय तुलसी ने अपने पात्र वाल्मीकि से ग्रहण किए हैं और उन्हे अपनी मौलिक उद्भावना से नवीन स्वरूप दिया है। परम्परागत रूप मे सीता 'महत्त्वाकांक्षा-रहित, विनीत, नियमशीला, सयमशीला कुलवधू' के रूप मे चित्रित की गई हैं,[1] किन्तु तुलसी ने सीता को नारीत्व के उत्कर्ष का प्रतिनिधि बना दिया है। सीता के सृजन मे तुलसी की दृष्टि भारतीय सस्कृति की ओर रही है, यह सकेत डॉ० शिव कुमार शुक्ल के शब्दो से मिलता है।[2] सीता का ऐसा उदात्त चित्रण, जैसा तुलसी ने किया है, सस्कृत ग्रन्थो मे नही मिलता। वस्तुत यह तुलसी की अपनी मौलिक और व्यावहारिक योजना का परिणाम है, जो उनकी सूक्ष्म तत्त्वदर्शिता और मनोवैज्ञानिकता का सफल निर्देशन करता है।[3]

आदर्श 'कन्यात्व' तथा उदात्त 'प्रणयत्व' की प्रतिष्ठा सीता मे कराने वाले तुलसी की सीता स्वयवर मे राम द्वारा धनुष-भग करने पर 'पत्नीत्व' से मण्डित हुई और रघुकुल की पुत्रवधू बनकर मिथिला से अयोध्या आ पहुँची।

राम के प्रति अपार नेह हृदय मे समेटे, प्रणय-प्रतिमा सीता अयोध्या आईं, तो रघुकुल की मर्यादा उनका आदर्श बन गई। पति-सहधर्मिणी के रूप मे उनका प्रथम दर्शन अवध मे तुलसी ने कराया। कुलगुरु वशिष्ठ राम को आशीष देने पधारे, तो राम द्वार पर उन्हे सम्मान देने आए, इस समय सीता का रूप आदर्श पत्नी का है।

गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी।।[4]

वधू का सुख समझ भी नही सकी सीता कि राम को वनवास की आज्ञा मिलने

---

[1] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०३।

[2] सीता मानस की नायिका हैं। राम के समान ही उनका चरित्र भी अलौकिक एव लौकिक भेद से द्विविध निरूपित हुआ है। अलौकिक रूप मे वें ब्रह्म की 'परमशक्ति', मायापति राम की माया और विष्णु राम की लक्ष्मी हैं। —रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० २८२

[3] वही, पृ० २८४।

[4] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ९।४।

का समाचार उन्होंने सुन लिया। वधू की गरिमा लिए सीता अपनी सास कौशल्या के पास आईं .

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ।।[1]

तुलसी के शब्द-विन्यास का चमत्कार दर्शनीय है। 'अकुलाइ' सीता सास के पास 'कुछ' जानने की उत्कण्ठा से आई होगी। 'सासु पद कमल जुग बंदि' मे सीता का वधूत्व उभर आया, किन्तु वधू सीता स्वय 'बडबोला' बनकर सास से कैसे सब कुछ पूछे ? बस—'बैठि सिरु नाइ'। व्यजना स्वय यहाँ मुखर हो उठी है।

इधर सीता का 'पत्नीत्व' कुछ निश्चय कर रहा है, विवेक की तुला पर अपनी दृढ़ता तोल रहा है।

बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता।।
चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना।।[2]

प्रस्तुत चित्र का प्राण हैं ये शब्द—'की तनु प्रान कि केवल प्राना'। सीता का तनमन-प्राण राम का है, राम के साथ रहेगा। तन छूट भी गया, तो प्राण साथ जाएँगे ही।

कौशल्या ने सीता को 'नयन पुतरि करि' प्रीत से रक्खा है और अब विधाता इस 'कलपबेलि' के 'फूलत फलत भयउ बिधि बामा'—विपरीत हो गया है। सीता ने तो 'पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा' कभी कठोर धरती पर पाँव भी नही रक्खा। वही साकार कोमलता की राशि सीता वन जाने की बात कर रही है।[3] कौशल्या ने सीता का मुख खुलने से पहले ही मर्यादा का दृढतम बधन कस दिया

जौं सिय भवन रहै कह अबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलबा।।
—यदि सीता घर रह जाए, तो पुत्र-वियोगिनी का अवलम्ब ही होगी।।

मर्यादा पुरुष राम ने 'आयसु मोर सासु सेवकाई' की बात कहकर 'ऐहि ते अधिक धरमु नहि दूजा' भी लक्ष्य करा दिया और समझाया—'दिवस जात नहिं लागिहि बारा'। साथ ही चेतावनी भी दे दी—'जौ हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा'। ऊँच-नीच बताकर सीता की सहज कोमलता पर राम ने परोक्ष कटाक्ष भी किया 'काननु कठिन भयकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी।' इतने सब कुछ के बाद समाज की मर्यादा भी बताई—'हसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू।'[4]

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा ५७।
[2] वही, ५८।२–४।
[3] वही, ५९।१–८।
[4] वही, ६३।४।

कितनी कठिन परीक्षा है सीता के पत्नीत्व की ? स्वय पति ही मर्यादा की दीवार खड़ी कर रहा है ? सीता का पातिव्रत्य मुखर हो उठा, किन्तु शालीनता तथा औदार्य के आभूषणो से मण्डित बना रहा।

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहि सरद चद निसि जैसें ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥[1]

वैदेही 'विकल' हो उठी इस विचार से कि 'तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।' क्यो ? क्या अपराध है सीता का ? क्या वह मौन रहकर अन्याय सह ले ?

बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी ॥
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड अबिनय मोरी ॥[2]

अद्वितीय है तुलसी की काव्यप्रतिभा। मर्यादा का बधन मर्यादा की कैंची से ही काटना श्रेयस है। अत्यन्त विनीत होकर सीता अपने 'स्व' का प्रकाशन करती हैं

दीन्हि प्रानपति मोहि सीख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥
मै पुनि समुझि दीखि मन माही। पिय बियोग सम दुखु जग नाही ॥[3]

कौशल्या नारी है, पत्नी है, अत वे तो स्वानुभूति से इस तथ्य का समर्थन करने को बाध्य होगी ही—'पिय बियोग सम दुखु जग नाही।' अब सीता ने राम की ओर रुख करके कहा

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥[4]

प्रणय का यह मार्मिक सकेत देकर सीता ने राम को सामाजिक व्यवहार का एक अकाट्य तर्क और भी दिया

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥[5]

अवयव की कोमलता पर राम द्वारा किए गए कटाक्ष का सम्यक् उत्तर अत्यन्त शालीनता तथा गरिमा के साथ सीता ने राम को दिया

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस ससारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जगु माही। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाही ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारे ॥[6]

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ६४।१–३।
[2] वही, ६४।४–५।
[3] वही, ६४।६–७।
[4] वही, दोहा ६४।
[5] वही, ६५।३–४।
[6] वही, ६५।५–८।

सीता के उक्त कथन में नारी का शाश्वत 'पत्नीत्व' साकार हो उठा है। तुलसी की मौलिकता का चिरन्तन प्रमाण बन गया है यह प्रसग। इसमे मनोवैज्ञानिक-सूक्ष्म-मनोभाव चित्रण, सामाजिक दृष्टि, सांस्कृतिक चेतना तथा औदात्य का उत्कर्ष सहज दर्शनीय बन गया है।

सीता का पत्नीत्व मर्यादा के इस पुनीत धर्म-युद्ध मे विजयी हुआ और राम ने उन्हे वन चलने की अनुमति प्रदान कर दी।[1] पति-प्राणा सीता का पत्नीत्व धन्य हो गया और 'वधूत्व' ने सास की चरण-वन्दना कर विदा ली

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥[2]

ससुर दशरथ ने भी वधू सीता को वन दिखाकर लौटा लाने का आदेश दिया। वधू के रूप मे तुलसी द्वारा उद्भावित सीता का यह रूप वस्तुत उदात्त है।[3]

सरयू पार करने से पूर्व पुन पिता का आग्रह सुनकर राम ने सीता को अयोध्या मे रहने का सद्परामर्श दिया, किन्तु सीता का जाग्रत्-मुखर पत्नीत्व डिग नही सका

प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चदु तजि जाई॥[4]

अनुपम प्रसग की सृष्टि तुलसी ने यहाँ की है सीता के चरित्र को गरिमा प्रदान करने के लिए। सुमत्र रघुकुल के वयोवृद्ध, विश्वस्त मत्री हैं, उन्हे सम्मान देना राज-धर्म तथा नारी-धर्म का आग्रह था। सीता ने विनीत होकर उनसे कहा

आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात॥[5]

सीता का एक-एक शब्द व्यजनापूर्ण है। 'आरति बस सनमुख भइउँ'—मर्यादा की व्यजना करता है, तो 'तात' शब्द मे सहज आत्मीयता, सम्मान, स्नेह सब कुछ समा गया है। 'आरजसुत' मे राज-गरिमा की प्रतिष्ठा हुई है।

सरयू पार करते ही सीता राम की पत्नी, गृहस्वामिनी का अधिकार पा गई। तुलसी ने मौलिक उद्भावना से सूक्ष्म-सकेत करके सीता के इस रूप का चित्रण कर दिया है। 'सरयू पार उतर गए, सकोच मे है राम कि केवट को उतराई कैसे दे? सीता ने जान लिया पति के मन का सकोच और गृहस्वामिनी के नाते अपनी मुद्रिका केवट को दे दी।'

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ६८।३–४।
[2] वही, ६६।३–४।
[3] वही, ८२।२–४, ६।
[4] वही, ६७।५–६।
[5] वही, दोहा ६७।

केवट उतरि दडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥[1]

यहीं तुलसी ने सीता को क्षेममयी के रूप मे चित्रित किया, जब सीता ने गगा से 'कहेउ कर जोरी' कि 'पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करौ जेहिं पूजा तोरी।'[2] गगा ने सीता को जो शुभाशीष दिया है, वह तुलसी की पूज्य बुद्धि का द्योतक है।[3] यही पूज्य बुद्धि कवि ने 'तापस-प्रसग' मे सीता के प्रति दिखाई है।[4]

वन-मार्ग मे तुलसी ने सीता का असीम सौन्दर्य अत्यन्त कुशलतापूर्वक अकित किया है। ग्राम-वधुओ ने सीता से स्वाभाविक आत्मीयतावश राम-लक्ष्मण का परिचय पूछा, तो सीता का नारीत्व सहज सकोच से भर गया। भारतीय पत्नी की सजीव झाँकी तुलसी ने सीता के रूप मे प्रस्तुत कर दी।[5]

काव्यात्मक उत्कर्ष यहाँ चरम पर पहुँच गया। व्यजना-शक्ति अपना चरमोत्कर्ष लिए है। माधुर्य-भाव की उत्कृष्टता अनुपम है। नारीत्व के मर्यादित रूप-चित्रण का ऐसा सजीव उदाहरण सभवत अन्यत्र दुर्लभ ही है।

सीता को ब्रह्म (राम) की शक्ति (माया) रूप मे कवि चित्रित करने से चूका नहीं, इस चित्रण मे वनगमन की झाँकी भी सजीव हो उठी है

आगे रामु लखनु बने पाछे। तापस बेष बिराजत काछे ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥[6]

सीता पति-प्रिया हैं, इसका सूक्ष्म सकेत तुलसी ने अत्यन्त कुशलता से किया है

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई ॥[7]

वन-प्रवास मे सीता को अत्यन्त सतुष्ट-मना पत्नी के रूप मे तुलसी ने चित्रित किया है।

सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा ॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम सगा। प्रिय परिवारु कुरग बिहगा ॥[8]

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, १०२।२–३।
[2] वही, १०३।३।
[3] वही, १०३।५–६।
[4] वही, ११० तथा १११।
[5] वही, ११७।२–६।
[6] वही, १२३।१–२।
[7] वही, १२४।३–४।
[8] वही, १४०।४–५।

तुलनीय निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया मे राज-भवन मनभाया।
—मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० २२२

सीता को अपने प्राणप्रिय पति का स्नेह तथा सम्मान दोनो ही सुलभ हैं

राम सखाँ तब नाव मगाई । प्रिया चढाइ चढे रघुराई ॥[1]

इस संक्षिप्त प्रसग मे तुलसी की सांस्कृतिक तथा सामाजिक जागरूकता का आभास सहज ही हो जाता है । भरत ने भी सीता को 'सुतीय' कहकर सम्मान दिया है ।[2]

सीता कर्मशीला हैं, यह सकेत तुलसी ने स्वाभाविक कथाक्रम मे कर दिया है

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए । कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए ॥
बट छायाँ बेदिका बनाई । सियँ निज पानि सरोज सुहाई ॥[3]

पारिवारिक स्नेह के धागे तुलसी ने अत्यन्त कुशलता से बाँधे हैं । भरत भ्रातृ-स्नेह के धागे से बँधकर, माताएँ मातृ-स्नेह के धागे से बँधकर, जनकजी पुत्री-स्नेह के धागे से बँधकर और अयोध्या के समस्त जन राम-स्नेह के धागे से बँधकर चित्र-कूट मे आ गए हैं । 'चित्रकूट-मिलन-प्रसग' भी तुलसी की मौलिक उद्भावना का परिचायक है । भरत ने जब सम्मानपूर्वक सीता की चरण-वन्दना की, तो सीता के भीतर छिपा हुआ निश्छल स्नेह का सागर सीमाएँ तोड बह चला

सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए । सिर कर कमल परसि बैठाए ॥
सीयँ असीस दीन्हि मन माही । मगन सनेहँ देह सुधि नाही ॥[4]

व्यजना का चमत्कार मनोभावो को जैसे साकार कर देने मे अपना सानी नही ढूंढ पा रहा है । सीता ने सभी आगतो का यथायोग्य ससम्मान अभिवादन किया । जब कौशल्या, सुमित्रा, कैकेई से मिली सीता, तो स्वाभाविकत हर नयन भीग गया होगा करुणा के पावन गगा जल से ।

जनकसुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना महि छाई ॥[5]

पारिवारिक मर्यादा का आदर्श तुलसी ने सीता मे चित्रित किया है । सीता के शक्ति-रूप को तुलसी ने सहज रूप से पुन उभार दिया, जब सीता अनेकरूपा होकर अपनी प्रत्येक सास से आदरपूर्वक मिली ।[6]

पुत्री चाहे विवाहिता ही हो, पिता के लिए सदा पुत्री ही होती है । जनक जब

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, १५१।३ ।

[2] वही, दोहा १९९ ।

[3] वही, २३७।७–८ ।

तुलनीय औरो के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरो पर खडी आप चलती हूँ ।
—मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० २२३

[4] वही, २४२।३–५ ।

[5] वही, २४६।७–८ ।

[6] वही, २५२।२–४ ।

सीता से मिले, तो आत्मीय स्नेह की सरिता उमड पडी, किन्तु मर्यादा से बँधी हुई सीता ने उस भावुकता की कठिन घडी मे कर्त्तव्य को विस्मृत नही किया

सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि ।
धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि ।।[1]

यहाँ तुलसी द्वारा प्रयुक्त 'धरनिसुताँ' सज्ञा कितनी सार्थक हो गई है । इसी धैर्य तथा विवेक को सीता मे देखकर विदेह जनक का पितृ-हृदय भावनाभिभूत होकर कह उठा

पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ । सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ ।।
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी । गवनु कीन्ह बिधि अड करोरी ।।[2]

इस प्रसग मे तुलसी ने सीता का आदर्श पत्नीत्व तो चित्रित किया ही, साथ ही नारीत्व की चरम प्रतिष्ठा भी यहाँ दर्शनीय हो गई है ।

राम-लक्ष्मण-सीता वन मे रह रहे थे और उस जगल मे उनका स्नेह सर्वत्र मगल कर रहा था । सीता का पत्नीत्व पति का एकनिष्ठ नेह पाकर कृतार्थ हो रहा था

एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज कर भूषन राम बनाए ।।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर । बैठे फटिक सिला पर सुन्दर ।।[3]

तुलसी की यह उद्भावना सर्वथा विलक्षण है । 'प्रिया का प्रिय द्वारा शृगार'— कितना सहज, सयमित तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण तुलसी ने किया है । तभी 'मूढ मदमति कारन कागा' सीता के 'चरन चोच हति भागा', तो तुरन्त रघुनायक ने 'सीक धनुष सायक' सधान कर उसे इस दुष्कृत्य का फल दे दिया । पत्नी-रक्षा के पति-दायित्व की ओर तुलसी ने कितना सार्थक सकेत किया है ।[4]

पातिव्रत्य की साकार प्रतिमा सती अनुसूइया ने सीता को सर्वोच्च पतिव्रता का सम्मान दिया है

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं ।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा ससार हित ।।[5]

इसके बाद राक्षसी सूर्पनखा अपने कलुषित मन्तव्य मे असफल होकर खर-दूषण के पास गई और उन्हे भडकाकर सेना सहित ले आई । सीता की रक्षा का भार लक्ष्मण पर छोडकर[6] राम उनसे लडे और विजयी हुए । तब वीर-भोग्या-पत्नी सीता ने उन्हे

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा २८६ ।
[2] वही, २८७।२-३ ।
[3] अरण्यकाण्ड, १।३-४ ।
[4] वही, १।७-८ ।
[5] वही, सोरठा ५(ख) ।
[6] वही, १८।११ ।

किस दृष्टि से देखा

सीता चितव स्याम मृदु गाता । परम प्रेम लोचन न अघाता ॥[1]

तुलसी ने मर्यादा के पोषक का दायित्व-निर्वाह करने के लिए सर्वथा अनूठी उद्भावना की है, जो कवि-दृष्टिकोण का परिचायक है। राम ने राक्षसो के उत्पात बढते देखकर सीता को 'अग्नि-प्रवेश' करा दिया और माया-सीता को अपने साथ रख लिया।[2] इस प्रसग द्वारा तुलसी ने 'राम द्वारा सीता के त्याग' की कथा को छोड देने का औचित्य सिद्ध कर दिया है। यह उनकी मौलिक उद्भावना ही है।

स्त्रियोचित कला-प्रियता का गुण सीता मे दिखाकर तुलसी ने 'नारी-मनोविज्ञान' की अपनी विज्ञता का परिचय दिया है।

सीता परम रुचिर मृग देखा । अग अग सुमनोहर बेषा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला । एहि मृग कर अति सुन्दर छाला ॥[3]

राम सीता को लक्ष्मण की रक्षा मे छोडकर मृग के पीछे गए, तो सहसा 'हा लक्ष्मण' का करुण स्वर सुनकर सीता भयभीत हो उठी—'जाहु बेगि सकट अति भ्राता'। लक्ष्मण ने सीता को समझाया कि राम पर सकट कैसा ? जिसकी 'भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई'—उस पर भला सकट कैसे आ सकता है ? सीता के मन मे नारी-सुलभ 'शका' ने जन्म लिया और उन्होने लक्ष्मण को मर्मान्तक वेदना से भरी कटु-वाणी कही।[4] इस कटु-वाणी को सुनकर लक्ष्मण 'मर्यादा-रेखा' खीचकर चले गए।

तब 'सून बीच दसकधर देखा' और तपस्वी वेश मे सीता के पास 'स्वान की नाई। इत उत चितइ' आया और 'नाना बिधि करि कथा सुनाई। राजनीति भय प्रीति दखाई ॥' सीता ने उसे धिक्कारा, तो 'रावन निज रूप देखावा' और सीता 'भई सभय जब नाम सुनावा।' भयभीता सीता ने धैर्य और साहस के साथ कहा—'आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढा।'[5]

क्रुद्ध रावण तब सीता को रथ मे बैठाकर, 'गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि', अपने नगर चल दिया।[6] पतिप्राणा सीता को सकट की उस घडी मे सर्वप्रथम अपने वीर पति का ही स्मरण हुआ। सीता करुणार्द्र स्वर मे बिलख रही थी

हा जग एक बीर रघुराया । केहि अपराध बिसारेहु दाया ॥
आरति हरन सरन सुखदायक । हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥[7]

---

[1] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, २१।३।

[2] तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौ लगि करौ निसाचर नासा ॥ —वही, २४।२

[3] वही, २७।३–४।

[4] वही, २८।३–४।

[5] वही, २८।७–१४।

[6] वही, दोहा २८।

[7] वही, २६।१–२।

घोर सकट के क्षणो मे भी सीता का विवेक जाग्रत् था। अपनी हठवादिता तथा शकाशील स्वभाव पर उन्हे पश्चात्ताप हो रहा था।

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा ॥[1]

प्रस्तुत प्रसग मे तुलसी ने अपनी कुशल तथा मौलिक उद्भावना के द्वारा सीता के हृदय से कलुष को निकाल फेंकने के साथ-साथ 'कर्मफल' के सिद्धान्त की पुष्टि भी कराई है।

विलाप करती हुई सीता की करुण वाणी गीधराज ने सुनी। यथाशक्ति रावण से जूझकर वह घायल होकर गिर पड़ा और रावण सीता को लका ले चला। तब प्रत्युत्पन्नमति सीता ने 'गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी' और तुरन्त 'कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी'। रावण ने सीता के दृढ विरोध के होते हुए भी उन्हे लका मे ले जाकर अशोक वन मे रक्खा। अनेक प्रयास किये रावण ने सीता के सतीत्व को भ्रष्ट करने के लिए, किन्तु 'हारि परा खल', तो आशावान् होकर ही अशोक वन मे रावण ने सीता को 'राखिसि जतन कराइ'।[2]

सीता का एकात्म पति-भाव जाग्रत् हो उठा और 'जेहि बिधि कपट कुरग सँग धाइ चले श्रीराम' वही मनोहर 'छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।'[3]

लौटकर राम अपनी प्रिया सीता को कुटिया मे न पाकर, विक्षिप्त से होकर, 'खग, मृग, मधुकर स्रेनी' से पूछने लगे कातर होकर, 'तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ?' खोज करते-करते राम-लक्ष्मण उस पर्वत पर पहुँच गए, जहाँ बैठे कपियो के पास सीता द्वारा फेकी हुई वस्त्रो की पोटली थी। राम ने तुरन्त वे वस्त्राभूषण माँगे और हृदय से उन्हे लगाकर सीता की याद मे राम शोकाकुल हो गए।

पुन अपनी मौलिक उद्भावना के द्वारा तुलसी ने सीता के प्रति राम के अनुराग को प्रकट किया है तथा साथ ही वर्षा ऋतु के सहज कामोद्दीपक रूप की ओर इगित किया है। 'वर्षा ऋतु' राम को सीता की याद करा रही है

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥[4]

और वर्षा ऋतु के पश्चात् निर्मल ऋतु भी आ पहुँची, किन्तु 'सुधि न तात सीता कै पाई' की स्थिति ने राम को विचलित कर दिया। तुल्यानुराग का यह मर्यादित चित्रण तुलसी के कवित्व की उत्कृष्टता का ही परिचायक है।

अशोक वन मे सीता का चरित्र तुलसी ने वियोगाग्नि मे तपा-तपाकर कुन्दन बना दिया है। सीता के वियोगिनी रूप का मर्मस्पर्शी चित्राकन तुलसी ने किया है।[5]

---

[1] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, २६।३।

[2] वही, २८।२५ तथा दोहा २६(क)।

[3] वही, दोहा २६(ख)।

[4] वही, किष्किंधाकाण्ड, १४।१।

[5] सीता के वियोगिनी रूप का जहाँ तक सम्बन्ध है, 'मानस' में उसका सर्वश्रेष्ठ चित्रण हुआ है।
—डॉ० शिवकुमार शुक्ल रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० २८३

अशोक बन मे सीता पतिव्रता, तप पूता, दृढ़-संकल्पा तथा पावन-हृदया नारी के रूप मे चित्रित की गई हैं। हनुमान् ने अशोक बन मे जब सीता का प्रथम दर्शन किया, तो वे साकार पतिव्रता की प्रतिमा सी हनुमान् को लगी

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥[1]

इसी समय रावण वहाँ आया और उसने 'साम दान भय भेद' दिखाकर सीता से प्रणय-निवेदन करते हुए कहा

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा ॥[2]

सीता ने असीम दृढता तथा मर्यादापूर्वक 'तृन धरि ओट' रावण को उत्तर दिया, 'सठ सूने हरि आनेहि मोही' और तब भी 'अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।' सीता का अन्तिम निर्णय था—राम या मृत्यु, दो मे से एक ही सीता को स्वीकार होगा।

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि कर सम दसकधर॥
सो भुज कठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा ॥[3]

रावण ने सीता को प्रताडित करना आरभ कर दिया। असह्य पति-वियोग से दग्ध होकर सीता ने विश्वस्ता अनुचरी त्रिजटा से कारुणिक निवेदन किया

तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई ॥[4]

सीता के इस अतिशय वियोग-चित्रण मे करुण रस की पावन गगा बह चली है।

तुलसी का विलक्षण कथा-सयोजन दर्शनीय है। हनुमान् की उपस्थिति मे रावण तथा सीता का जो वार्तालाप हुआ, वह जब विश्वस्ततम हनुमान् राम को जाकर सुनाएँगे, तो भी क्या राम सीता के प्रति अपने हृदय मे कोई शका ला सकेगे ? कदापि ऐसा सभव नही, क्योकि हनुमान् की 'नयन देखी-साक्षी' अकाट्य होगी।

हनुमान् ने राम की मुद्रिका सीता के पास डाल दी और सीता ने 'चकित चितव मुदरी पहिचानी'। तब स्वाभाविकत हर्ष-विषाद का द्वन्द्व, मानसिक अन्त सघर्ष सीता के हृदय मे उठ खडा हुआ

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया ते असि रचि नहि जाई ॥[5]

तभी रामदूत हनुमान् 'रामचन्द्र गुन बरनै लागा', जिन्हे सुनते ही 'सीता कर दुख भागा'। जब हनुमान् सीता के समीप पहुँचे, तो सीता 'फिरि बैठी मन बिसमय

---

[1] रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा ८।
[2] वही, ९।४–५।
[3] वही, १०।३–४।
[4] वही, १२।२–३।
[5] वही, १३।३।

भयऊ' । बिना विश्वास प्राप्त किए सीता कैसे पर-पुरुष को देख लें ? तब जिज्ञासा हुई 'नर बानरहि सग कहु कैसे', तब हनुमान् ने 'कही कथा भइ सगति जैसें' ।[1] तब 'कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास ।'[2]

विश्वास प्रीति का जनक होता है और हनुमान् को तो सीता ने 'जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास'—इसीलिए स्वाभाविक रूप से सीता के मन मे 'हरिजन जानि प्रीति अति गाढी' । प्रियतम की सुधि इस दूरान्तर प्रदेश मे हनुमान् ने सीता को दी, मानो—'बूडत बिरह जलधि हनुमाना । भयहु तात मो कहुँ जलजाना'—का वाक्य सार्थक हो गया ।[3] सीता ने हनुमान् को प्रियतम राम के लिए 'चूडामनि उतारि तब दयऊ' और 'कहेहु तात अस मोर प्रनामा' का निवेदन करते हुए अपनी रक्षा करने का दायित्व भी राम को स्मरण कराने के लिए हनुमान् को कहा

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु । बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ।।
मास दिवस महुँ नाथु न आवा । तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा ।।[4]

पतिव्रता सीता के हृदय की सपूर्ण व्यथा जैसे 'मोहि जिअत नहिं पावा' मे समाहित हो गई है । तुलसी ने इस प्रसग मे सीता को उच्चतम सम्मान दिया है ।

सीता को समझा-बुझाकर हनुमान् राम के पास लौट आए, तो राम की तीव्रतम उत्कण्ठा प्रश्न कर उठी हनुमान् से—'कहहु तात केहि भाँति जानकी' । प्रत्यक्षदर्शी, विश्वस्त हनुमान् के प्रत्येक शब्द से सीता की गुरुता और पति-भक्ति झाँक उठी

नाम पहारू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जन्त्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ।।[5]

कवित्व के उत्कर्ष के साथ-साथ मर्यादा की यह स्थापना तुलसी की नवोन्मेषकारिणी प्रतिभा का जीवन्त प्रमाण है ।

हनुमान् कहाँ तक सीता की व्यथा कहते ? जिस व्यथा को सुनकर व्यथा के नयनो मे सावन उमड पडे, उसे शब्द कैसे समा सकते हैं अपनी सीमा मे ।

सीता कै अति बिपति बिसाला । बिनहि कहे भलि दीनदयाला ।। [6]

और पराक्रमी हनुमान् ने राम से 'बेगि चलिअ प्रभु आनिअ' की विनय की, साथ ही सकेत कर दिया 'भुज बल खल दल जीति' । हनुमान् के इस कथन से एक ओर

---

[1] रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, १३।१–११ ।

[2] वही, दोहा १३ ।

[3] वही, दोहा १३ तथा १४।१–२ ।

[4] वही, २७।५–६ ।

[5] वही, दोहा ३० ।

तुलनीय अवधि-शिला का उर पर था गुरु भार,
तिल तिल काट रही थी दृग-जल-धार ।।
—मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० ३४१

[6] वही, ३१।६ ।

राम का पराक्रम ध्वनित होता है, तो दूसरी ओर सीता का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है, जिसे हनुमान् राक्षसो की शक्ति से बिनाश करके ही लाने की प्रार्थना राम से करते हैं ।

अगद ने भी रावण को 'सीता जगदबा' राम को लौटाने का सद्परामर्श दिया, किन्तु रावण की मति नहीं बदली । कुम्भकर्ण को रावण ने युद्ध मे सहायतार्थ बुलाया, तो 'सुनि दसकधर बचन तब कुभकरन बिलखान' और भर्त्सना करते हुए उसने रावण से कहा 'जगदबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान' ।[1] यह तुलसी की पूज्य बुद्धि ही है, जो सीता को जगदबा रूप मे देख रही है । कवि का अपना दृष्टिकोण सीता के चरित्र को गरिमामय बना रहा है । यही तुलसी का गौरवपूर्ण आदर्श है ।

अन्तत राम-रावण-युद्ध आरभ हो गया । नारी-सुलभ करुणा लिए सीता का मन भीषण रक्तपात देखकर विचलित और भयभीत हो उठा । उधर रावण के सिर तथा भुजाएँ कट-कट कर भी बढते जा रहे थे । सीता ने त्रिजटा से अपने मन की चिन्ता कही 'होइहि कहा कहसि किन माता ।'

पुन तुलसी ने नवीन उद्भावना की है, सीता का राम के मन मे उच्चतम महत्त्व दिखाने के लिए । सीता को त्रिजटा ने कहा

प्रभु ताते उर हतइ न तेही । एहि के हृदयँ बसति बैदेही ।।
एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है ।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है ।।[2]

अनन्य प्रेम की व्यजना कराने के साथ-साथ राम के 'ब्रह्मत्व' और लोक-कल्याण की ऐसी उत्कृष्ट प्रतिष्ठा करके तुलसी ने वस्तुत 'गिरा' को धन्य किया है ।

विरहाकुल सीता पति के इस अनन्य अनुराग को देखकर अपने दुर्भाग्य पर रोती नही, तो क्या करती ?

राम सुभाउ सुमिरि बैदेही । उपजी बिरह बिथा अति तेही ।।
निसिहि ससिहि निदति बहु भाँती । जुग सम भई सिराति न राती ।।
करति बिलाप मनहि मन भारी । राम बिरहँ जानकी दुखारी ।।[3]

राम ने रावण पर विजय प्राप्त की और हनुमान् यह शुभ सूचना लेकर सीता के पास गए । सीता ने सहज ही पूछा—'कहहु तात प्रभु कृपानिकेता । कुसल अनुज कपि सेन समेता' और जब हनुमान् से राम-विजय का समाचार सुना, तो दु खिनी सीता की दशा भावाभिभूत पतिव्रता की हो गई

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहि बानी समा ।।[4]

---

[1] रामचरितमानस, लकाकाण्ड, दोहा ६२ ।
[2] वही, ९९।१३ तथा छन्द ।
[3] वही, १००।२–४ ।
[4] वही, १०७ छन्द १–२ ।

सीता की हार्दिक पुलक का यह सजीव चित्र हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है।

राम की आज्ञा पाकर 'बहु प्रकार भूषन पहिराए' और 'सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए', उस पर 'हरषि चढ़ी बैदेही' राम के पास 'सुमिरि राम सुखधाम सनेही' चल दी।[1] राम ने सीता को अग्नि में रखकर 'अन्तरसाक्षी' लेते हुए असली सीता को प्रकट कराया—इसी प्रसग मे 'माया-सीता' के प्रति 'कहे कछुक दुर्बाद'। सीता 'पतिव्रत की शक्ति' स्मरण कर अग्नि मे प्रवेश कर गई

जौ मन बच क्रम मम उर माही। तजि रघुबीर आन गति नाही ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखड समाना ॥[2]

अग्नि मे प्रवेश करते ही सीता की 'माया आकृति तथा लौकिक अपवाद' भस्म हो गए।[3]

मर्यादा-पोषक तुलसी ने परम्परा से प्राप्त इस अग्नि-परीक्षा प्रसग को इतना गरिमामय बना दिया है कि सीता के चरित्र पर आक्षेप लगाने वाला स्वय को असहाय पाता है। तर्क तथा बुद्धि के साथ अलौकिकता का यह समन्वय वस्तुत अद्भुत है, अद्वितीय है, विलक्षण है।

पति-प्राणा सीता को लेकर राम अयोध्या लौटे। मार्ग मे गगा आई, तो 'तब सीताँ पूजी सुरसरी' और गगा ने पावनचरित्रा सीता को आशीष दिया—'सुन्दरि तव अहिवात अभगा।'[4] राम-सीता-लक्ष्मण अयोध्या पहुँच गए। भरत ने 'सीता चरन भरत सिरु नावा' और नारीत्व की साकार गरिमा सीता पुन कुलवधू बन गई

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही ॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता ॥[5]

सीता राम की पत्नी थी, रघुकुल की कुलवधू थी, स्वर्गीय सम्राट् दशरथ की पुत्रवधू थी और सबसे बढकर भारतीय नारी थी। उनका समग्र चित्र तुलसी ने अकित किया है।[6]

सीता का यह समग्र चित्रण तुलसी के नारी के प्रति उदात्त तथा उदार दृष्टि-कोण का परिचायक है और साथ ही सीता के आदर्श नारीत्व का भी। रामचन्द्र देव के शब्दो मे—सीता जगज्जननी है, साथ ही साथ आदर्श भारतीय कुलवधू का आदर्श भी उनमे पूणतया प्रस्फुटित हुआ है।[7] इसमे दो मत नही हो सकते कि मानस की

---

[1] रामचरितमानस, लकाकाण्ड, १०८।७–८।
[2] वही, १०९।७–८।
[3] वही, १०९, छन्द १।
[4] वही, १२१।८–९।
[5] उत्तरकाण्ड, ७।१–२।
[6] वही, २४।३–६।
[7] तुलसी और तुचन, पृ० १३२।

सीता पत्नीत्व का आदर्श हैं, और नारीत्व उनके चरित्र से अनुप्राणित हुआ है और पातिव्रत्य का शाश्वत आदर्श उनमे मूर्तिमान् ही हो उठा है।

कौशल्या—दशरथ-पत्नी कौशल्या का परम्परित रूप प्राय उनके मातृत्व की प्रतिष्ठा ही करता है।[1] उनमे तुलसी ने पत्नी, सपत्नी, माता एव विमाता का आदर्श चित्रित किया है। 'वाल्मीकिरामायण' से आरभ राम-काव्य-परम्परा मे कौशल्या 'पति द्वारा उचित सम्मान से वंचिता, क्षीण-काया, खिन्न-मना, उपवासादि-परा, परक्षमाशीला, त्याग-शीला तथा सौम्य' रूप मे चित्रित की गई है, किन्तु तुलसी की कौशल्या कर्त्तव्या-कर्त्तव्यनिर्णय की, जिसका दूसरा नाम 'विवेक' है, सूक्ष्म वृत्ति प्रदर्शित करती है।[2]

तुलसी ने कौशल्या के चरित्र को सर्वथा नवीन दृष्टि से देखा और साहित्य मे अमर कर दिया। कौशल्या के प्रति कवि का दृष्टिकोण श्रद्धा एव पूज्य-भावना का है, यह उसने कौशल्या के प्रथम परिचय मे ही बता दिया है

बदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥[3]

अपनी इस पूज्य-भावना का आधार कवि ने कौशल्या के पूर्व-जन्म का चित्रण करके पुष्ट किया है, जबकि 'अदिति' के रूप मे तपस्या करके उन्होने राम रूप मे 'ब्रह्म' को पाया था

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मै पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥[4]

कौशल्या का नामोल्लेख करते हुए तुलसी ने सर्वप्रथम दशरथ-पत्नी के रूप मे उनके दृढ चरित्र तथा आदर्श पत्नीत्व का चित्रण सहज रूप से किया है

कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ हरि पद कमल बिनीत॥[5]

तुलसी ने कौशल्या को अग्रमहिषी के रूप मे प्रतिष्ठित किया। यज्ञ का हविष्यान्न सम्राट् दशरथ ने सर्वप्रथम कौशल्या को ही दिया

तबहि रायँ प्रिय नारि बोलाई। कौसल्यादि तहाँ चलि आई॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे करि कीन्हा॥[6]

---

[1] संस्कृत ग्रन्थो मे राम के प्रति कौशल्या के मोहपूर्ण वात्सल्य का ही वर्णन किया गया है, सभवत उसी के कारण कैकेई और भरत की बात तो दूर, दशरथ तक के संबंध में भी उनकी सद्भावना अनेक स्थलो पर डगमगा गई है।

—डॉ० शिवकुमार शुक्ल, रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १५४

[2] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३००।

[3] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १६।४।

[4] वही, १८७।३–४।

[5] वही, दोहा १८८।

[6] वही, १९०।१–२।

कौशल्या राम की जननी बन गई, जबकि 'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला' और पत्नीत्व के साथ ही उन्हे मातृत्व की गरिमा भी मिल गई। मातृत्व ने कुछ समय के लिए कौशल्या के 'पत्नीत्व' को मौन कर दिया और स्वय मुखर हो गया। तभी 'मथरा' ने सुखी रघुकुल में ईर्ष्या की ज्वाला सुलगा दी, जिसमे सुलग उठा कैकेई का 'सौतिया डाह' और राम को राज्याभिषेक होते-होते बन जाने की आज्ञा मिल गई। भावुक मातृत्व रो उठा, बिलख उठा, किन्तु विवेकशील 'पत्नीत्व' कौशल्या के हृदय मे जाग उठा और 'बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी', धैर्य की मूर्ति वे बन गई।

कौशल्या आदर्श पत्नी के साथ-साथ आदर्श सपत्नी भी है, यह तुलसी ने अपनी मौलिक उद्भावना से स्पष्ट कर दिया है। कैकेई के प्रति दुर्भावना का लेशमात्र भी उनमे नही है। प्रत्युत सम्मान का भाव भी मुखर है

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥[1]

यहाँ तुलसी का सामाजिक आदर्श चरमोत्कर्ष पर कौशल्या को पहुँचा देता है। इतना उच्च विवेक वस्तुत कौशल्या के नारीत्व की प्रतिष्ठा ही है। कवि-दृष्टिकोण का तत्त्व प्रभावी है।

पुन तुलसी नवीन उद्भावना करते है। दशरथ ने प्राण-घातक पीडा तो पाई कैकेई के महल मे, किन्तु चिर-शान्ति मिली उन्हे प्राण-प्रिया कौशल्या के महल मे। जब सुमन्त्र राम-सीता-लक्ष्मण को विदा कर अयोध्या लौटे, तो दासियाँ उन्हे कौशल्या के भवन मे ले गई

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृहँ गई लवाई॥
जाइ सुमन्त्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चन्दु बिराजा॥[2]

विपत्ति के भीषण तूफान मे कौशल्या का विवेक, बुद्धि तथा धर्म जाग्रत् रहा है।[3]

कौशल्या के धैर्य-मृदु-वचनो को सुनकर दशरथ ने 'चितयउ आँखि उघारि' और ऐसा लगा 'तलफत मीन मलीन जनु सीचत सीतल बारि'। तभी अनायास सम्राट् को अन्धे तपस्वी के पुत्र श्रवणकुमार की कथा याद आ गई और उन्होने 'कौसल्यहि सब कथा सुनाई'। इस मार्मिक प्रसग मे तुलसी ने कौशल्या को दशरथ की प्राण-प्रिया तथा विश्वस्ता पत्नी बना दिया है। तभी कौशल्या का जीवन-दीप बुझ गया और वैधव्य के दैत्य ने उसका सौभाग्य-सिन्दूर छीन लिया

मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार॥[4]

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ५६।१-२।
[2] वही, १४८।३-४।
[3] वही, १५४।३-८।
[4] वही, दोहा १६३।

निस्सन्देह तुलसी ने कौशल्या मे धैर्यशीला, विवेकमयी, आदर्श पत्नी तथा सपत्नी को चित्रित किया है। इस रूप मे कौशल्या के चरित्र को गरिमा-मण्डित करके तुलसी ने स्वय को भी गौरवान्वित ही किया है।

सुमित्रा—दशरथ-पत्नी के रूप मे सुमित्रा का चरित्र परम्परा से अत्यन्त नगण्य रहा है। 'सुमित्रा एक अत्यन्त उपेक्षित और दीन जीवन व्यतीत करती है।'[1] 'वाल्मीकिरामायण' मे तो सुमित्रा के साथ दशरथ के विवाह का कोई उल्लेख ही नही मिलता और न ही उसका कोई परिचय मिलता है।[2] बगला मे लिखित 'कृत्तिवास रामायण' (१, २६) मे अवश्य सुमित्रा का कुछ उल्लेख मिलता है। तुलसी ने इस उपेक्षिता नारी के चरित्र मे मात्र उदारता का समावेश नही किया है, प्रत्युत उसमे आध्यात्मिक चेतना का विकास भी किया है। तुलसी की सुमित्रा आदर्श गृहिणी, आदर्श नारी एव आदर्श माता हैं। यह चरित्र तुलसी के नारी-आदर्श को स्पष्ट करता है।[3]

तुलसी ने सुमित्रा का उल्लेख प्रथमत हविष्यान्न के सन्दर्भ मे दशरथ-पत्नी के रूप मे ही किया है।

कौसल्या कैकेई हाथ धरि । दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ।।[4]

सुमित्रा मे तुलसी ने भारतीय गृहिणी की सास्कृतिक झाँकी देने का सर्वथा नवीन उपक्रम किया है। राम-सीता विवाह की सूचना पाकर सुमित्रा हर्ष-विभोर हो उठी

बिबिध बिधान बाजने बाजे । मगल मुदित सुमित्राँ साजे ।।
हरद दूब दधि पल्लव फूला । पान पूगफल मगल मूला ।।[5]

आदर्श पत्नी तथा सपत्नी का चरित्र सुमित्रा मे मुखर हो उठा है। राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर सुमित्रा भावाभिभोर हो उठी है

चौके चारु सुमित्राँ पूरी । मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी ।।[6]

सुमित्रा का वास्तविक चरित्र तुलसी ने लक्ष्मण की आदर्श जननी के रूप मे चित्रित किया है।

पार्वती—शकर-प्रिया पार्वती का पौराणिक चरित्र लेकर तुलसी ने नारी मे सद्-असद् वृत्तियो का द्वन्द्व दिखाकर, सद् की विजय तथा नारी-चरित्र की दृढता का सजीव चित्रण किया है। पार्वती के दो जन्मो की कथा तुलसी ने ली है—प्रथम दक्षसुता के रूप मे तथा दूसरा पर्वत राज की कन्या के रूप मे। दक्ष-कन्या पार्वती मे शका, हठ तथा अविवेक है, किन्तु पर्वत-पुत्री पार्वती मे दृढता, त्याग, निष्ठा तथा

---

[1] डा० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०३।
[2] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० २६५।
[3] सुधारानी शुक्ला गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक आदर्श, पृ० ३५।
[4] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १६०।४।
[5] वही, ३४६।३–४।
[6] अयोध्याकाण्ड, ८।३।

विवेक हैं। पार्वती का चरित्र-चित्रण तुलसी की काव्य-प्रतिभा एवं मौलिकता का सम्यक् परिचय देता है।

दक्ष-सुता उमा शकर की परिणीता हैं। 'एक बार त्रेता जुग माहीं'—अगस्त्य मुनि को रामकथा सुनाकर त्रिपुरारी शकर 'चले भवन सँग दच्छकुमारी' और कैलास पर रहने लगे। उसी समय पृथ्वी का कष्ट हरण करने के लिए 'हरि रघुबस लीन्ह अवतारा' और पितृ-आज्ञा से 'दडक बन बिचरत अबिनासी।' शकर अपने आराध्य के दर्शन की कामना कर रहे थे, किन्तु 'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु' की समस्या विकट थी। शिव के मन मे राम के दर्शन का लोभ बढ रहा था।[1]

शिव ने राम को वन मे सीता की खोज मे भटकते समय देखा और 'उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा'। शकर ने 'जय सच्चिदानद जग पावन' कहकर राम की स्तुति की और 'चले जात सिव सती समेता'।

अपने पति परमेश्वर की यह दशा देखकर सती उमा के मन मे 'उपजा संदेहु बिसेषी' और सती ने स्वय से तर्क किया

सकरु जगतबद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानद परधामा॥[2]

तुलसी का मनोविश्लेषण दर्शनीय है। उमा का तर्क सहज नारी-मन का तर्क है 'सकरु जगतबद्य जगदीसा'। क्या 'इनसे' भी बडा कोई और है? शका घनीभूत हो गई

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥[3]

अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म 'नर देह' मे कैसे घूम सकता है? मन मे शका का तूफान तीव्रतर होता गया। शका जन्म देती है अविश्वास को। अविश्वास टकरा रहा था सती की निष्ठा से

सभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
अस ससय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा॥[4]

मन के इस भीषण शका-सघर्ष को उमा ने छिपाना चाहा, किन्तु 'हर अतरजामी सब जानी।' और तभी शकर ने पहली चेतावनी उमा को दी

सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। ससय अस न धरिअ उर काऊ॥
जासु कथा कुभज रिषि गाई। भगति जासु मै मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥[5]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ४८।१–८ तथा दोहा ४८(क)।
[2] वही, ५०।६–७।
[3] वही, दोहा ५०।
[4] वही, ५१।३–४।
[5] वही, ५१।६–८।

उमा का शकालु मन किसी भी प्रकार मानने को तत्पर नही था और शका ने जन्म दे दिया हठ तथा अविवेक को। शकर ने जान लिया कि 'लाग न उर उपदेसु।' अधिक शिव किसे समझाते ? उन्होंने सती से कह दिया

जौं तुम्हरें मन अति सदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥[1]

आज्ञाकारिणी शकर-पत्नी चल पडी, किन्तु मन स्थिर नही था। सदेह, शका तथा अविवेक ने विचार के मार्ग को रुद्ध कर दिया था

चली सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौ का भाई ॥[2]

जब सती हठ की डोर से बँधी चल पडी, तो शकर ने मन मे सोच लिया 'दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना' क्योकि जब 'मोरेहु कहे न ससय जाहीं', तो परिणाम निश्चित ही है—'बिधि बिपरीत भलाई नाहीं'।

मनोविज्ञान का सहज प्रयोग यहाँ तुलसी के इस नारी-चरित्र को इतनी सजीवता प्रदान कर रहा है कि पाठक-श्रोता मन्त्रमुग्ध हुए बिना रह नही सकता।

नारी-मन विलक्षण होता है। सती ने विचार किया और 'सीता' का रूप बनाकर मार्ग मे राम के आगे-आगे चल पडी

पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप ॥[3]

'सबदरसी सब अतरजामी' राम ने सती के मन का कपट जान लिया और सोचने लगे 'सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ'। शकर ने मन ही मन कहा 'देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ'।

उमा ने अपनी योजना कार्यान्वित कर ही दी, किन्तु, 'जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू' और कस कर मारा व्यग्य का बाण राम ने उमा के अविवेकी मन मे

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥[4]

राम की इस व्यग्योक्ति ने उमा के मन को वेध डाला और पराजित, कुठित उमा का मन सकोच से भर गया

राम बचन मृदु गूढ सुनि उपजा अति सकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चली हृदयँ बड सोचु।[5]

उमा अब मन की आग मे जलने लगी, अविवेक और हठ ने जो भीषण कुकृत्य करा दिया उनसे, उसका परिणाम अब क्या होगा ? 'सभीत' सती प्रताडना दे रही थी अपने मन को स्वय ही

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ५२।१।
[2] वही, ५२।४।
[3] वही, दोहा ५२।
[4] वही, ५३।८।
[5] वही, दोहा ५३।

मै संकर कर कहा न माना । निज अग्यानु राम पर आना ॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ॥[1]

राम की शक्ति का प्रभाव देखकर सती ने 'पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा' कैलासपति की ओर गमन किया । शकर ने सती को देखते ही 'हँसि पूछी कुसलात' और जानना चाहा 'लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात' ।

दुर्भाग्य नारी का ! सती के मन के सकोच ने भय के साथ मिलकर 'असत्य' की सृष्टि कर दी '

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ । भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं । कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं ॥[2]

सती ने 'गोसाईं' सबोधन शकर के लिए कहा (इन्द्रियो के अधिपति शकर हैं भी) और उन्ही से मन की बात छिपानी चाही ? भला यह कैसे सभव होता ? शकर ने 'तब सकर देखेउ धरि ध्याना' और 'सती जो कीन्ह चरित सबु जाना ।' इसमे सती का दोष न मानकर शकर ने मान लिया 'हरि इच्छा भावी बलवाना' । शकर के मन मे एक ही द्वन्द्व था, एक ही धर्म-सकट था

सती कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती । मिटइ भगति पथु होइ अनीती ॥[3]

शकर निश्चयात्मिका बुद्धि के स्वामी ठहरे । निश्चय कर लिया मन मे—दृढतम निश्चय, 'एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाही' । सती पश्चात्ताप की आग मे जलने लगी । विवेक ने बता दिया सती को जीवन का वास्तविक अर्थ । सती को ज्ञान हो गया

सती हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य ।
कीन्ह कपटु मै संभु सन नारि सहज जड अग्य ॥[4]

तुलसी का प्रत्येक शब्द सटीक है । सती का प्रायश्चित की आग मे जलता मन स्वय का 'कपट' स्वय देखकर यदि 'नारि सहज जड अग्य' कह उठे, तो इसमे 'नारी-निंदा' ढूंढना भी क्या अज्ञता नही होगी ? मानसिक पीडा, सती की हार्दिक व्यथा इन शब्दो मे व्यजित हो उठी है । पति से 'कपट' करने की घोर धृष्टता का अहसास होने पर अपने—नारी के हृदय की दुर्बलता का अहसास सती को होना क्या सहज स्वाभाविक नही है ? तुलसी का मनोविज्ञान मुखर हो उठा । सती के मनोभावो—चिन्ता, ग्लानि, भय, व्याकुलता, दाह आदि का सजीव प्रतिबिम्ब तुलसी मे देखा जा सकता है और 'तपइ अवाँ इव' की उपमा से 'नारि सहज जड अग्य' की सगति

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ५४।१–२ ।
[2] वही, ५६।१–२ ।
[3] वही, ५६।७–८ ।
[4] वही, दोहा ५७ (क) ।

सरलता से जोड़ी जा सकती है ।

शिव ने सती का 'मानसिक त्याग' कर दिया और 'सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं' । इस स्थिति का ज्ञान केवल शिव तथा उमा को ही था, क्योंकि 'मरमु न कोऊ जान कछु' । सती प्रायश्चित्त की साकार प्रतिमा बन गई

नित नव सोचु सती उर भारा । कब जैहउँ दुख सागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना । पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना ॥
सो फलु मोहि बिधातां दीन्हा । जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥[1]

ग्लानि तथा वियोग की सम्मिलित अग्नि मे जलती हुई उमा दुर्दैव से पूछ रही थी 'सकर बिमुख जिआवसि मोही' और दु खिता उमा ने मन-ही-मन पति-आराध्य राम से ही कहा

तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥[2]

एक दिन उमा के पिता दक्ष ने यज्ञ का आयोजन किया और 'सती बिलोके ब्योम बिमाना', तो सती ने शकर से पूछा तथा 'पिता जग्य सुनि कछु हरषानी' । उन्होने शकर से विनय की—'जौं महेसु मोहि आयसु देही । कछु दिन जाइ रहौं मिस एही ।[3] मन मे 'पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी' था और 'निज अपराध बिचारी' की स्थिति भी उमा की थी, इसीलिए उनका शकर से आग्रह 'भय सकोच प्रेम रस सानी' था । कितनी विलक्षण मनोवैज्ञानिक पकड है तुलसी की, जिससे चरित्र मूर्तिमान् हो उठा है और तुलसी की काव्य-प्रतिभा जीवन्त हो उठी है ।

शकर ने दक्ष-सुता को अनेक प्रकार पुन समझाया, किन्तु हठ बनी रही उमा के मन मे । पहले शका से उत्पन्न हठ थी और अब ग्लानि तथा सकोच से उत्पन्न हठ है ।

भाँति अनेक सभु समुझावा । भावी बस न ग्यानु उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ । नहिं भलि बात हमारे भाएँ ॥[4]

जब शकर ने 'कहि देखा हर जतन बहु' और उमा रुकने को तैयार नही हुई, तो पति-कर्त्तव्य के नाते 'दिए मुख्य गन सग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि' ।

पति द्वारा त्यक्ता उमा जब बिन बुलाए पिता के घर पहुँची, तो 'दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी' । केवल 'सादर भलेहिं मिली एक माता' और बहनें, जो सादर वहाँ आमन्त्रित थी, 'मिली बहुत मुसुकाता' । दक्ष ने कुशल-क्षेम तक नही पूछा, बल्कि उमा को देखकर क्रोध से जल उठा । उमा ने देखा—'यज्ञ मे शिव का भाग

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ५८।१–३ ।
[2] वही, दोहा ५८ ।
[3] वही, ६१।६ ।
[4] वही, ६२।७–८ ।

नही था, बल्कि उनका अपमान किया गया था।' पति-अपमान असह्य हो उठा उमा को।[1] पति-अपमान से दग्ध उमा ने रोष में भरकर कहा—'सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निन्दा'—वे सब 'सो फलु तुरत लहब' और पिता तो 'भली भाँति पछिताब'।

सती उमा ने 'सतीत्व' का सर्वोच्च आदर्श वहाँ प्रस्तुत कर दिया। पत्नीत्व अत्यन्त मुखर हो उठा उमा के इस उच्चतम बलिदान और आदर्श मे

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मन्दमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र सम्भव यह देही॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥[2]

शंकर ने अपराध के लिए त्यागा था उमा को, किन्तु थी तो उमा शिव की प्राण-प्रिया ही। उमा-मरण का समाचार सुन 'बीरभद्रु करि कोप पठाए' और यज्ञ-विध्वंस करा दिया। उमा ने मरते समय जो वरदान माँगा, वह भारतीय नारी का शृंगार है

सती मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमी पारबती तनु पाई॥[3]

वस्तुत पत्नी रूप मे पार्वती का विशद चित्रण तो तुलसी ने 'उमा' के प्रसंग मे कर ही दिया है। जब शिव, पार्वती से परिणय-सूत्र जोडकर 'उमा सहित भवन चले', तो सर्वत्र हर्ष का सागर उमड रहा था—'निसान नभ बाजे भले'।

मर्यादा का पोषक कवि तुलसी लक्षणा और व्यंजना के संकेतो से शिव-पार्वती के सुखी दाम्पत्य को इंगित करता है

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
× × × ×
तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा॥[4]

पत्नी रूप मे पार्वती अत्यन्त सम्मानिता हैं। एक दिन जब पार्वती शम्भु समीप गईं, तो 'जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा।'

तुलसी ने अत्यन्त मौलिक उद्भावना द्वारा पार्वती-चरित्र को उदात्त की चरम सीमा प्रदान की है। वे उस 'राम' का रहस्य जानना चाहती हैं, जिसने उनमे शंका पैदा करा के 'पति-परित्यक्ता' बना दिया था

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥[5]

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ६३।५–८ तथा दोहा ६३।
[2] वही, ६४।५–८।
[3] वही, ६५।५–६।
[4] वही, १०३।५, ७।
[5] वही, १०८।१–२।

यह सब कहकर पार्वती ने राम के 'ब्रह्मत्व' तथा 'नरत्व' के बीच भ्रमित बुद्धि की गाँठ खोलने की विनय शंकर से की ।[1] इस प्रसग मे जिज्ञासा-जनित विनय-भाव दर्शनीय बन गया है । शकर ने पार्वती की प्रशसा की

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी । तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी ॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसगा । सकल लोक जग पावनि गगा ॥[2]

शकर ने जब राम का 'ब्रह्मत्व' बताया, तो 'मिटि गै सब कुतरक कै रचना' और पार्वती के मन मे 'भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीति' । उमा ने पत्नी होने का लाभ प्राप्त किया, तो उनका मन प्रसन्नता से भरकर कह उठा

नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा । सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा ॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी । जदपि सहज जड नारि अयानी ॥[3]

वस्तुत यह विनीत भाव ही उच्चता का द्योतक है क्योकि 'विद्या ददाति विनय' के अनुसार पार्वती का मन निष्कलुष होकर शकर के प्रति विनय से भर गया । पार्वती का यह चरित्र नारी के 'असद् पर सद् की शाश्वत विजय' का प्रतीक है, साथ ही तुलसी की नारी के प्रति उदात्त दृष्टि का परिचायक भी है ।

मध्यम पात्र

कैकेई—दशरथ-पत्नी कैकेई रामकथा की बहुचर्चित नारी-पात्र है । परम्परा से कैकेई का चरित्र अनेक रूपो मे मिलता है । आदिकाव्य की कैकेई मे एक प्रकार से हम रावण का प्रतिरूप-सा पाते हैं । तुलसी ने इस पिछली कैकेई को ग्रहण करते हुए भी उसको एक सच्चे 'शोक पर्यवसायी चरित्र' के रूप मे दिखाने का प्रयास किया है ।[4] कैकेई का अन्यत्र जो जुगुप्सामय चित्रण हुआ है; उसे देखकर भी तुलसी ने 'कैकेई' को बचाने के लिए 'गिरा' का प्रयोग करके उसकी कार्यवाही से उसे तटस्थ-सा कर दिया है और चित्रकूट मे घोर पश्चात्ताप दिखाकर उसकी शालीनता प्रकट की है । तुलसी ने कैकेई का सृजन करते समय अपने आदर्श तथा मर्यादा का साथ नही छोडा है और मनोविज्ञान के आधार पर उसके चरित्र को सहज बनाया है ।

कैकेई का प्रथम दर्शन हविष्यान्न-प्रसग मे ही तुलसी कराते हैं -

कैकेई कहँ नृप सो दयऊ । रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥[5]

पत्नी तथा सपत्नी रूप मे कैकेई सरल है, प्रसन्नमना है । मथरा जब उसे राम-राज्याभिषेक की सूचना देकर कुछ 'गलत' कहती है, तो कैकेई हँसकर कह देती है .

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १०८।८ तथा १०९।१–८ ।

[2] वही, ११२।६–७ ।

[3] वही, १२०।३–४ ।

[4] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०२ ।

[5] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १९०।३ ।

हँसि कह रानि गालु बड तोरें । दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें ॥[1]

कैकेई कितनी सरल है, राम के प्रति कितना स्नेह उसके मन मे है, यह तब पता चलता है, जब मथरा द्वारा 'छाडइ स्वास कारि जनु साँपिनि'—मौन धारण कर लिया गया । कैकेई कुटिला मथरा से पूछती है

सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु ।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु ॥[2]

यहाँ तुलसी कैकेई का निर्मल दर्पण-सा मन दिखाकर उसके भावी दुष्कृत्य का भार पहले ही हल्का करा देने का उपक्रम करते हुए से प्रतीत होते हैं ।

मथरा ने जब कहा 'भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन' और व्यग्य-बाण छोडा 'पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे'[3], तो कैकेई मथरा के इन अप्रिय वचनो को सुनकर क्रोध से भर गई

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढावउँ तोरी ॥[4]

और कैकेई ने मुस्कराते हुए 'काने खोरे कूबरे' को कुटिल कह दिया ।

कैकेई सरलता और सहृदयता की प्रतिमा है । मथरा को कटुवाणी कहने का जैसे उसे 'रानी होकर' भी दु ख है, अत अत्यन्त मृदु-कोमल होकर वह कहती है

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौ साँचेहुँ काली । देउँ मागु मन भावत आली ॥[5]

मथरा ने कैकेई की सरलता भाँप ली । वह 'सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही' सुनकर जितनी प्रसन्न हुई होगी, उतनी ही देउँ मागु मन भावत आली' सुनकर उत्साहित हुई होगी । कुटिल मथरा ने विष घोलना प्रारम्भ कर दिया और 'होहुँ राम सिय पूत पुतोहू' कहने वाली सरल-हृदया कैकेई का मन डोलने लगा

भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ॥[6]

कैकेई के द्वारा दिया हुआ यह आमत्रण मथरा की विजय का प्रवेश द्वार था । उसने व्यग्य की वाणी मे कहा 'एकहि बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, १३।७ ।

[2] वही, दोहा १३ ।

[3] वही, १४।३, ५ ।

तुलनीय भरत-से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उन्हे जो गेह !

—मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० ४७

[4] वही, १४।८ ।

[5] वही, १५।१–४ ।

[6] वही दोहा १५ ।

दूजी ।' और अत्यधिक मर्मस्पर्शी वाणी मे बोली—'फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा' । इसके साथ ही एक प्रभावकारी व्यंग्य बाण और छोड़ा मथरा ने 'कोउ नृप होउ हमहि का हानी' और भोली बनकर कह उठी 'आरै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ।'

कैकेई पर प्रभाव न पड़ता, तो मनोविज्ञान असफल हो जाता । कैकेई ने 'बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि' । कैकेई की मति बदल चुकी थी ·

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही । सबरी गान मृगी जनु मोही ॥[1]

तुलसी की उत्प्रेक्षा दर्शनीय है 'मृगी जनु मोही' । कैकेई मथरा के कपट-चगुल में फँस गई । मन्थरा ने जाने क्या-क्या कहा कि कैकेई को उसके कपट का प्रबोध हो गया । तुलसी शब्द-विन्यास का चमत्कार प्रदर्शित करते हैं

भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥[2]

कैकेई को अपने कपट-जाल मे आते देखकर मन्थरा ने अचूक तीर छोड़ा .

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी । भामिनी भइहु दूध कइ माखी ॥
जौ सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥[3]

कितना बड़ा अपमान ! काँप उठी होगी कैकेई सोचकर 'जौ सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ।' मानसिक द्वन्द्व मच गया कैकेई के भीतर ।

कैकयसुता सुनत कटु बानी । कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी । कुबरी दसन जीभ तब चाँपी ॥[4]

मन्थरा का जादू कैकेई के सर चढ़कर बोलने लगा—'दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी' और 'दिन प्रति देखउँ राति कुसपने', लेकिन 'कहउँ न तोहि मोह बस अपने' । मन्थरा ने कैकेई मे निश्चित ही गम्भीर परिवर्तन लक्ष्य किया होगा, क्योकि अब कैकेई अपनी गम्भीर 'समस्या' का समाधान मन्थरा से ही पूछ रही थी, 'काह करौ सखि सूध सुभाऊ' । तुलसी की मौलिकता यहाँ विलक्षण हो गई है, जबकि मन्थरा को 'घरफोरी' कहने वाली कैकेई उसे 'सखि' कह रही है । कैकेई का मानस मन्थरा की व्यंग्योक्ति 'जौ सुत सहित करहु सेवकाई' से बुरी भाँति कुठित हुआ है । कैकेई की प्रतिक्रिया कितनी भयानक और तीव्र है, इसे तुलसी ने इन पक्तियो मे चित्रित किया है

नैहर जनमु भरब बरु जाई । जिअत न करबि सवति सेवकाई ॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही । मरनु नीक तेहि जीवन चाही ॥[5]

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, १७।१ ।
[2] वही, १६।१ ।
[3] वही, १६।७–८ ।
[4] वही, २०।१–२ ।
[5] वही, २१।१–२ ।

मन्थरा पर कैकेई ने 'अति-विश्वास' कर लिया, 'परउँ कूप तुअ बचन पर' की स्थिति आ गई। कैकेई को मन्थरा से अधिक हितैषी कोई नहीं दीख रहा था, अत. 'करौं तोहि चख पूतरि आली' कहकर 'कोपभवन गवनी कैकेई'।

तुलसी ने कैकेई मे 'अनिश्चयात्मिका प्रवृत्ति' की प्रधानता दिखाई; साथ ही 'को न कुसगति पाइ नसाई' कहकर कैकेई के चरित्र को स्वाभाविक बनाने का भी सफल उपक्रम कवि ने किया है।

दशरथ की प्राण-प्रिया है कैकेई, यह स्पष्ट हो जाता है दशरथ के पूछने पर 'प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी' और साथ ही दशरथ कैकेई के क्रिया-कलाप को मानिनी-पत्नी का 'काम-कौतुक' ही समझते हैं। सहज भाव से दशरथ ने बताया, 'रामहि देउँ कालि जुबराजू', तो कैकेई कसमसा उठी

दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥
ऐसिउ पीर बिहसि तेहि गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई॥[1]

तुलसी के शब्द-विन्यास ने ईर्ष्या से सुलगती हुई कैकेई का सजीव चित्र प्रस्तुत कर दिया है। नारी 'कामुक रूप' मे किसे मोहित नही कर लेती ? दशरथ भला कैसे बचते कैकेई के नयन-कटाक्ष से ?

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू॥
कपट सनेहु बढाइ बहोरी। बोली बिहसि नयन मुहु मोरी॥[2]

तुलसी ने 'बिहसि नयन मुहु मोरी' से स्पष्ट कर दिया है।

कैकेई 'बात दृढाइ कुमति हँसि बोली' और 'देहु एक बर भरतहि टीका' तथा दूसरे वर मे 'तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी' की बात दशरथ के समक्ष रख दी। दशरथ कैकेई की बात सुनते ही 'गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा' और हतप्रभ होकर 'माथे हाथ मूदि दोउ लोचन' गभीर सोच मे पड गए। प्रण की शृखलाओ से जकडे दशरथ के हृदय से, कैकेई का यह क्रूर विश्वास-घात देखकर, सहज ही निकल पडे ये शब्द

कवने अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास॥[3]

पत्नी का 'विश्वास' ही तो पति की निधि है और कैकेई ने परम बहुमूल्य यह निधि ही स्वार्थ मे अन्धी बनकर खो दी और कलकित कर लिया अपने 'पत्नीत्व' को।[4]

कैकेई का नारीत्व पतित होता चला गया। सच भी है, पतन आरभ होता है,

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, २७।४-५।
[2] वही, २७।७-८।
[3] वही, दोहा २९।
[4] युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी—'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी'।
निज जन्म जन्म मे सुने जीव यह मेरा—'धिक्कार ! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा॥'
—मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ० २४९

तो पूर्णता पर ही रुकता है। व्यग्य बाण कैकेई ने दशरथ पर छोडे और बेध डाला अपने पति का मन

भरतु कि राउर पूत न होही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥

× × × ×

देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसध तुम्ह रघुकुल माही ॥[1]

क्रोध मे जलती हुई कैकेई ऐसी लग रही थी, 'मनहुँ रोष तरवारि उघारी', इसीलिए जब पत्नी समझकर दशरथ ने उसे समझाना चाहा, तो कटु-वाणी मे बोल पडी 'कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया'। 'सपत्नी-डाह' से सुलगती हुई कैकेई ने अपने 'मन की आग' कह ही दी

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥[2]

—'त्रिया हठ' शास्त्र-प्रसिद्ध है। कैकेई हठ पर आरूढ हो गई

होत प्रातु मुनिबेष धरि जौ न रामु बन जाहिं ॥
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं ॥[3]

दशरथ का 'पुरुषत्व' पराजित हो गया और दशरथ ने कह दिया 'अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई'। कैकेई का पत्नीत्व पतित हो गया। इस हठ तथा अविवेक को देख, जिसमे कैकेई ने सुहाग-सिंदूर जला दिया, कवि का हृदय यदि जन-मानस का रोष प्रकट करा दे, तो अस्वाभाविक ही क्या है ?

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई ॥[4]

मातृत्व के लिए कैकेई ने पत्नीत्व खो दिया, सौभाग्य सिंदूर खोकर वैधव्य की व्यथा ओढ ली।

मदोदरी—रावण की पत्नी मदोदरी का चरित्र काव्य-परम्परा मे नगण्य-सा रहा है, किन्तु जहाँ इस पात्र का चरित्राकन हुआ, वहाँ मदोदरी आदर्श पत्नी, कुल-हिताकाक्षिणी, सद्-बुद्धि, धार्मिकता, उदारता, दूरदर्शिता, कर्त्तव्यपरायणता तथा विशालहृदयता की प्रतिमा चित्रित हुई है।[5] तुलसी ने अपने मर्यादावादी दृष्टिकोण के कारण मदोदरी मे नारी-सुलभ कुछ गुणो को समाहित किया है। इस प्रयास मे वे नारी-चरित्र की कुछ सामान्य मर्यादाओ को विस्मृत कर बैठे हैं, जिससे इस चरित्र मे अस्वाभाविकता आ गई है।[6] मदोदरी के चरित्र मे जो 'अति आदर्श' तुलसी

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ३०।२, ४।

[2] वही, ३३।७–८।

[3] वही, दोहा ३३।

[4] वही, ४७।७–८।

[5] डॉ० शिवकुमार शुक्ल रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० २६३।

[6] रामचन्द्र देव तुलसी और तुंचन, पृ० १३५।

देना चाहते थे, उसको डॉ० माताप्रसाद गुप्त भी अस्वाभाविक मानते हैं ।[1]

तुलसी मदोदरी का प्रथम परिचय पत्नी-रूप मे ही देते हैं

मय तनुजा मदोदरि नामा । परम सुदरी नारि ललामा ।।
सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी । होइहि जातुधानपति जानी ।।[2]

रावण जब सीता-हरण कर उन्हे अशोक-वन मे ले गया और सीता की विरक्ति देखकर उन्हे 'मारन धावा', तो साध्वी पत्नी के रूप मे 'मयतनयाँ कहि नीति बुझावा'। तुलसी ने मदोदरी को सुमत्रणा-दायिनी तथा भविष्य-द्रष्टा पत्नी के रूप मे चित्रित किया है, जिसमे उनकी 'राम-भक्ति' कारण बनी है ।

रहसि जोरि कर पति पग लागी । बोली बचन नीति रस पागी ।।
कत करष हरि सन परिहरहू । मोर कहा अति हित हियँ धरहू ।।[3]

राम-दूत हनुमान् के पराक्रम से वह 'राम के अतुल पराक्रम' का आभास मानो पा गई है, इसलिए उसने सुझाव दिया 'तासु नारि निज सचिव बोलाई । पठवहु कत जो चहहु भलाई ।' यहाँ तुलसी मदोदरी से 'कत' सबोधन के साथ 'जो चहहु भलाई' मे अनेकार्थ की व्यजना कराने मे सफल हैं ।

रावण मदोदरी की मत्रणा ठुकरा देता है, तो मदोदरी के मन पर चिन्ता के बादल छा जाते हैं

मदोदरी हृदयँ कर चिंता । भयउ कत पर बिधि बिपरीता ।।[4]

मदोदरी पत्नी है, पति के हित की चिन्ता होना उसके लिए नितान्त स्वाभाविक ही है । वह मन से रावण की परम हितैषिणी है । आखिर 'मदोदरी सुन्यो प्रभु आयो' और समुद्र पर सेतु बनाकर राम ने लका मे प्रवेश किया, तो मदोदरी रावण के पास जाकर बोली

कर गहि पतिहि भवन निज आनी । बोली परम मनोहर बानी ।।
चरन नाइ सिरु अचलु रोपा । सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा ।।
नाथ बयरु कीजे ताही सो । बुधि बल सकिअ जीति जाही सो ।।
तुम्हहि रघुपतिहि अतर कैसा । खलु खद्योत दिनकरहि जैसा ।।[5]

तुलसी की मर्यादा ने मदोदरी के 'पत्नीत्व' को गिरा दिया है । नारी-मनोविज्ञान को तुलसी ने भुला दिया और कोरे आदर्श के चक्कर मे मदोदरी के चरित्र को अस्वाभाविक बना दिया । 'मर्यादावाद की प्रतिष्ठा' के मोह मे तुलसी ने जाने क्यो

---

[1] समय-समय पर हम इसे अपने पति को 'नीच' आदि विशेषणों से सबोधित करते हुए भी देखते हैं । यहाँ कवि स्वत अपने स्त्रियोचित धर्म के आदर्श का उल्लघन करता हुआ प्रतीत होता है ।
—तुलसीदास, पृ० ३०६

[2] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १७८।२–३ ।

[3] सुन्दरकाण्ड, ३६।५–६ ।

[4] वही, ३७।६ ।

[5] लकाकाण्ड, ६।३–६ ।

'सती उमा' के मन का द्वन्द्व 'सकल जगत प्रभु जगदीसा' को भुला दिया ? नारी भला अपने परम-आराध्य पति को परपुरुष (चाहे वह 'ब्रह्म' ही हो) के समक्ष 'खल खद्योत' कहेगी ?

वस्तुत तुलसी ने मदोदरी को 'ब्रह्मत्व' का ज्ञान करा दिया है, इसीलिए वह कहती है

तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाके हाथा ॥
रामहि सौपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ ॥[1]

यह तुलसी का 'राम-भक्त' है, जो मदोदरी के मुख से रावण को कह रहा है 'तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक सहर्ता'। आदर्श की चरम-परिणति होती है मदोदरी के व्यक्तिगत स्वार्थ मे

अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात ॥[2]

वीर-पुरुष रावण की वीर-पत्नी मात्र 'अचल होइ अहिवात' के लिए अधीर है और पति के सम्मान को दाँव पर लगा रही है। रावण इतने पर भी मदोदरी के प्रति प्रणय-भाव से परिपूर्ण है

तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना ॥[3]

किन्तु मदोदरी ने यही मान लिया कि 'काल बस्य उपजा अभिमाना'। तभी राम ने बाण से मदोदरी का कर्ण-ताटक गिरा दिया और तब भयभीता मदोदरी ने पुन रावण से कहा 'कत राम बिरोध परिहरहू'। पुन जाग्रत् हो गया मदोदरी का स्वार्थ

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ ॥[4]

पुन वही तर्क 'मम अहिवात न जाइ'। तुलसी भूल गए भारतीय नारीत्व के आदर्श को, जहाँ पति 'परमेश्वर' होता है और पति की सम्मान रक्षा मे नारियाँ जौहर करती रही हैं। पत्नी के द्वारा स्वय अपनी उपेक्षा देखकर रावण यदि कह उठा, 'नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं'[5], तो अस्वाभाविक नहीं है।

---

[1] रामचरितमानस, लकाकाण्ड, ६।६ तथा दोहा ६।
[2] वही, दोहा ७।
[3] वही, ८।१-२।
[4] वही, दोहा १५ (ख)।
[5] वही, १६।२।

अगद के द्वारा अपमानित रावण को पुन मदोदरी ने समझाया 'सोइ न समर तुम्हहि रघुपतिही'। राम के शौर्य-पराक्रम का परिचय देते हुए मदोदरी ने कह दिया

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा ॥

× × × ×

निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ॥[1]

मदोदरी द्वारा प्रयुक्त सबोधन 'नीचा' तो उसी के पत्नीत्व को पतित करने वाला सिद्ध हुआ है। सभवत इसी की प्रतिक्रिया-स्वरूप रावण 'नारि बचन सुनि बिसिख समाना' विचलित हो उठा और उसके मन मे विषण्णता आ गई। अन्तत रावण का वध राम ने कर दिया, मदोदरी का 'अहिवात अचल' नही रह सका। तब पतिव्रत मुखर हुआ मदोदरी का

पति सिर देखत मन्दोदरी। मुरछित बिकल धरनि खसि परी ॥[2]

वैधव्य की असह्य, असीम व्यथा के क्षणो मे भी तुलसी ने मदोदरी को आदर्श का लबादा ओढाकर उसे सर्वथा अस्वाभाविक बना दिया है

तव बस बिधि प्रपच सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा ॥

अब तव सिर भुज जबुक खाही। राम बिमुख यह अनुचित नाही ॥[3]

मर्यादा के पोषक तुलसी यहाँ 'पत्नीत्व' की मर्यादा भूल गए ? क्या मदोदरी का उक्त कथन स्त्रियोचित है ? मदोदरी को 'पत्नीत्व' का मूल्य देकर यह 'रामभक्ति' बहुत मँहगी मिली है। सभव है—'मदोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना' हो, किन्तु मनोविज्ञान तथा साहित्य का अनुरागी, तो इन वचनो को सुनकर 'कोरा आदर्शवाद' ही कह सकता है, साथ ही तुलसी की असफलता का प्रतीक इन्हे मान सकता है।

गौण पात्र

रामचरितमानस मे कुछ गौण नारी-पात्रो के पत्नी रूप का चित्रण भी हुआ है। इनमे से कुछ का तो कवि ने मात्र नामोल्लेख कर दिया है और कुछ का चरित्र-चित्रण कुछ विस्तार से कर दिया है।

अरुधती—दशरथ के कुलगुरु वशिष्ठ की पत्नी के रूप मे अरुधती का उल्लेख हुआ है। सीता को वन जाने के समय समझाने वाली स्त्रियो मे उनको देखा जा सकता है। वे अत्यन्त बुद्धिमती है

---

[1] रामचरितमानस, लकाकाण्ड, ३६।६ तथा ३७।८।

[2] वही, १०४।१।

[3] वही, १०४।११-१२।

सचिव नारि गुर नारि सयानी । सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ।।[1]

राज-गुरु के साथ-साथ गुरु-पत्नी भी सम्मानिता चित्रित की गई हैं। भरत के साथ राम को लेने जब अयोध्या चली, तो

अरुधती अरु अगिनि समाऊ । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ।।[2]

गुरु-पत्नी के रूप मे अरुधती सर्वोच्च सम्मानिता 'गुरतिय पद बंदे दुहु भाई' है। इस सक्षिप्त चित्रण मे तुलसी ने सामाजिक रूप मे गुरु-पत्नी का महत्त्व बताया है।

मांडवी—कुसकेतु की पुत्री मांडवी का भरत-पत्नी के रूप मे उल्लेख मात्र हुआ है

कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई ।।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई ।।[3]

उर्मिला—सीता की अनुजा उर्मिला का भी लक्ष्मण-पत्नी के रूप मे केवल उल्लेख मात्र ही हुआ है

जानकी लघु भगिनी सकल सुन्दरि सिरोमनि जानि कै ।।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै ।।[4]

श्रुतकीर्ति—सुन्दरी श्रुतकीर्ति का उल्लेख शत्रुघ्न-पत्नी के रूप मे हुआ है

जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी ।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी ।।[5],

मैना—हिमवान् की पत्नी के रूप मे मैना का चरित्र तुलसी ने सद्गृहिणी का चित्रित किया है। नारद ने पार्वती के विषय मे जब भविष्यवाणी की, तो 'मातृत्व' से प्रेरित होकर मैना का पत्नीत्व पति से पूछने पहुँच गया। यहाँ मैना का गृहिणी-रूप उभरा है

पतिहि एकान्त पाइ कह मैना । नाथ न मै समुझे मुनि बैना ।।[6]

पति की आज्ञाकारिणी है मैना। जब हिमवान् ने कहा 'अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू । तौ अस जाइ सिखावनु देहू', तो मैना हर्ष सहित उठी

सुनि पति बचन हरषि मन माही । गई तुरत उठी गिरिजा पाहीं ।।[7]

पत्नी रूप मे मैना पतिव्रता और पतिपरायणा नारी के रूप मे चित्रित हुई हैं।

सतरूपा—स्वायभू मनु की सहधर्मिणी रूप मे सतरूपा का नामोल्लेख तुलसी ने आदरपूर्वक किया है

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ७८।७।
[2] वही, १८७।५।
[3] बालकाण्ड, ३२५।छन्द २।
[4] वही, ३२५।छन्द ३।
[5] वही, ३२५।छन्द ३।
[6] वही, ७१।२।
[7] वही, ७२।५।

स्वायभू मनु अरु सतरूपा । जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ।।
दपंति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ।।[1]

सतरूपा को तुलसी ने पतिव्रता का सम्मान दिया है

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा । नारि समेत गवन बन कीन्हा ।।
× × × ×
पथ जात सोहहिं मतिधीरा । ग्यान भगति जनु धरे सरीरा ।।[2]

सतरूपा दृढता, साधना तथा पातिव्रत्य की प्रतिमा के रूप मे चित्रित की गई हैं। उन्हे तपस्या के फलस्वरूप 'ब्रह्म' को पुत्र रूप मे पाने का वरदान मिला ।

अहल्या—यह पात्र तुलसी की मौलिक उद्‌भावना का प्रतीक है । अहल्या की कथा का बीज 'शतपथ ब्राह्मण' मे लेकर वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थो मे मिलता है और इनमे इन्द्र को 'अहल्या यार' कहा गया है । 'वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड' मे पहले-पहल अहल्या-उत्पत्ति तथा गौतम-अहल्या के विवाह का वृत्तान्त मिलता है कि 'ब्रह्मा ने दूसरे प्राणियो के सर्वश्रेष्ठ अग लेकर ऐसी स्त्री निर्मित की, जिसमे 'हल' (कुरूपता) का अभाव था और उसका नाम 'अहल्या' रक्खा । इन्द्र अहल्या पर अनुरक्त थे, किन्तु ब्रह्मा ने उसे धरोहर रूप मे गौतम ऋषि के पास रक्खा और ऋषि की सिद्धि देखकर, अनन्तर अहल्या उन्ही को पत्नी रूप मे दे दी।'[3] 'ब्रह्मपुराण' मे भी अहल्या के प्रति इन्द्र की आसक्ति का उल्लेख है । जैन-कथा मे अहल्या का रूप ही बदल दिया गया है ।[4]

तुलसी ने अहल्या को शापग्रस्ता, शिला-रूप मे गौतम-पत्नी कहकर उल्लेख किया है

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर ।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर ।।[5]

मुनि विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम ने अहल्या का उद्धार किया

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही ।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ।।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही ।
अतिसय बडभागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही ।।[6]

अहल्या को भावुक तथा निष्ठावान् नारी के रूप मे तुलसी ने चित्रित किया है । इन्द्र-प्रसग उनके शुचि मन को भला न लगा होगा ।

---

1 रामचरितमानस, बालकाण्ड, १४२।१–२ ।
2 वही, १४३।१, ४ ।
3 डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ३०२ ।
4 विमलसूरि पउमचरिय, पव, १३ ।
5 रामचरितमानस बालकाण्ड, दोहा २१० ।
6 वही, २११।छन्द १ ।

पति द्वारा शाप दिया जाना अहल्या ने अपना परम सौभाग्य माना, क्योंकि साकार राम के दर्शन हुए हैं। पतिव्रता के रूप में तुलसी ने अहल्या को प्रतिष्ठित किया है

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहिं भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनद भरी॥[1]

गौतम पत्नी अहल्या को शाप-मुक्त करके तुलसी सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्तन की ओर सकेत करके अपने क्रान्तिकारी तथा मर्यादा पोषक होने की पुष्टि करते हैं।

सुनयना—जनक पत्नी सुनयना के पत्नी रूप का प्राय बिलकुल चित्रण तुलसी ने नहीं किया। 'जनक पाट महिषि जग जानी' कहकर मात्र उल्लेख किया है।

अनुसूया—अत्रि ऋषि की पत्नी, पति-परायणा, आदर्श नारी के रूप मे अनुसूया तुलसी की विशिष्ट सर्जना हैं, जिनके माध्यम से पतिव्रत-धर्म तथा आदर्श नारीत्व का प्रकाशन हुआ है। वनवास के अवसर पर राम-सीता-लक्ष्मण अत्रि ऋषि के आश्रम मे पहुँचे, तो सीता ने अनुसूया का चरणस्पर्श किया

अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई॥[2]

तदुपरान्त 'दिव्य बसन भूषन पहिराए' और सीता को 'सरस मृदु बानी' मे 'नारिधर्म कछु ब्याज बखानी'। अनुसूया ने सीता को नारी-धर्म का जो आदर्श दिया, वह उनके चरित्र का द्योतक है

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोगबस जड धनहीना। अध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥[3]

इस पातिव्रत्य-निरूपण के बाद चार प्रकार की पतिव्रताएँ अनुसूया ने बताईं—उत्तम 'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाही', मध्यम 'परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे', निकृष्ट 'धर्म बिचारि समुझि कुल रहई' तथा अधम 'बिनु अवसर भय ते रह जोई'।[4] पतिद्रोह सर्वोच्च पाप है

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, २११।छन्द ४।

[2] अरण्यकाण्ड, ५।१–२।

[3] वही, ५।५–१०।

[4] वही, ५।१२–१५।

पति बचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई ।।
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ।।[1]

पतिव्रत के पालन से 'सहज अपावनि नारि' का जीवन परम प्रकाशमय हो जाता है। अनुसूया के चरित्र मे तुलसी ने भारतीय नारीत्व की प्रतिष्ठा की है।

तारा—'वाल्मीकिरामायण' मे सुग्रीव-पत्नी का नाम 'रूमा' है तथा बाली द्वारा उसे ग्रहण किए जाने का उल्लेख भी है।[2] 'महानाटक' (५, ५१) के अनुसार तारा सुग्रीव की पत्नी थी, जिसे बाली ने छीन लिया था। तुलसी ने यही कथा लेकर तारा के माध्यम से सामाजिक मर्यादा स्थापित करने का साहसिक प्रयास किया है। सीता-हरण के पश्चात् राम जब सुग्रीव से मिले, तो सुग्रीव ने उन्हे बाली के अनाचार-अत्याचार की कथा सुनाई

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी ।।[3]

राम द्वारा प्रेरित सुग्रीव के ललकारने पर जब 'बालि क्रोधातुर धावा', तो 'गहि कर चरन' उसे तारा ने समझाया 'सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बन्धु तेज बल सींवा'। लगता है, अपहरण के पश्चात् बाली ने तारा को पत्नी बना कर रक्खा था। जब बाली मर गया, तो तारा विलाप करने लगी

नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा ।।[4]

राम ने तारा को विकल देखकर उसे ज्ञान दिया और जब तारा को प्रतीति हो गई कि वह 'सुग्रीव-पत्नी' ही है, तो 'चरन तब लागी'। तुलसी ने रामभक्ति मे तारा को भी रग दिया—'लीन्हेसि परम भगति बर मागी'।

जब क्रोधित लक्ष्मण सुग्रीव के पास गए, तो सुग्रीव ने तारा को उन्हे शान्त करने के लिए भेजा, जिससे उसके चरित्र को गरिमा मिली है। 'तारा' के चरित्र के द्वारा तुलसी निश्चितत समाज मे नारी की स्थिति को उठाने के लिए प्रयत्न करते हैं।

सूर्पनखा—इस नारी-पात्र मे तुलसी ने कामातुरा, अविवेकी, छल-प्रपचमयी अधम नारी का चरित्राकन किया है। रावण की बहन के रूप मे सूर्पनखा का उल्लेख तुलसी ने किया

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ।।
पचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ।।[5]

सूर्पनखा की यह कामुकता—'देखि बिकल भइ' देखकर ही तुलसी का मर्यादावादी कवि कह उठा होगा

---

[1] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, ५।१६–१७।

[2] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ४७३।

[3] रामचरितमानस, किष्किंधाकाण्ड, ६।११।

[4] वही, ११।२।

[5] अरण्यकाण्ड, १७।३–४।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी । जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥[1]
कठोर अवश्य हैं तुलसी के शब्द, किन्तु 'देखि बिकल भइ' के सन्दर्भ में अस्वाभाविक भी इन्हें नही कहा जा सकता; विशेषत तुलसी-युग मे नारी की स्थिति के सन्दर्भ मे यह कथन पूर्णत सटीक ही लगता है।[2]

सूर्पनखा अत्यन्त निर्लज्ज तथा कामुक नारी है। 'रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं आई' सूर्पनखा 'बहुत मुसुकाई' और कहने लगी

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ॥
मम अनुरूप पुरुष जग माही । देखेउँ खोजि लोक तिहु नाही ॥[3]
राम ने 'सीतहि चितइ कही' कि 'कुआर मोर लघु भ्राता' और कामातुरा सूर्पनखा तब लक्ष्मण के पास गई, तो उत्तर मिला 'सुन्दरि सुनु मै उन्ह कर दासा'—इसलिए 'जो कछु करहिं' राम ही करेगे। चरित्रहीना, कुलटा सूर्पनखा पुन राम के पास प्रणय-याचना के लिए आई, तो पुन 'प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई'। लक्ष्मण ने उस निर्लज्जा को स्पष्ट शब्दो मे कह दिया

लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥[4]
कामाध, कुलटा सूर्पनखा पर कोई प्रभाव नही हुआ, बल्कि वह अपना वास्तविक राक्षसी का रूप दिखाकर भयानक बन गई

तब खिसिआनि राम पहिं गई । रूप भयकर प्रगटत भई ॥[5]
तभी राम का सकेत पाकर लक्ष्मण ने 'अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि' और कामुकता का दण्ड उसे दे दिया। इस अधम नारी ने, जो पत्नी बनने की कामना से आई, किन्तु बिना पत्नी बने ही कामान्धता का दण्ड पाकर गई, राम-रावण युद्ध की पृष्ठभूमि का निर्माण कर दिया।

तुलसी के नारी-पात्रो मे अधम नारी-पात्र केवल 'सूर्पनखा' ही है, जो नारी के कामुक रूप की प्रतिनिधि बन गई है। मर्यादा-पोषक तुलसी का कवि-हृदय इसके चित्रण मे विशेष रुचि नही ले पाया।

रति—कामदेव की पत्नी 'रति' को पति-प्राणा, पतिव्रता तथा अतीव निष्ठावान नारी के रूप मे तुलसी ने चित्रित किया है। शकर द्वारा 'काम' को भस्म कर देने पर रति ने 'काम' की मुक्ति का निवेदन शिव से किया

---

[1] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, १७।५–६।

[2] उस समय सती-साध्वी नारियों को निकालकर भ्रष्ट और पतित नारियो को प्रश्रय दिया जाता था। मन, वचन, कर्म सब में धूर्तता आ गई थी।

—सुधारानी शुक्ला गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक आदर्श, पृ० १

[3] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, १७।८–९।

[4] वही, १७।१८।

[5] वही, १७।१९।

जोगी अकटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई ।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई ।।[1]

रति की अचल तथा दृढ़ पति-भक्ति देखकर शकर ने कहा 'अब नाथ कर होइहि नामु अनंगु' और 'बिनु बपु ब्यापिहि सबहि' के साथ-साथ तुमसे उसका मिलन तब होगा, जब कि 'जदुबस कृष्न अवतारा' होगा और 'कृष्न तनय होइहि पति तोरा ।' इस प्रकार महादेव शकर ने 'कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा ।'[2]

रति के इस सक्षिप्त, किन्तु अत्यन्त प्रभावपूर्ण चित्रण मे मर्यादा-पोषक तुलसी ने पातिव्रत्य की चरम प्रतिष्ठा की है और अपने दृढनिष्ठ पतिव्रत के कारण रति ने जिस प्रकार अपने पति को प्राप्त किया, उसे कवि ने अपने समाज के समक्ष आदर्श के रूप मे प्रस्तुत कर दिया ।

निष्कर्ष

सामाजिक तथा सास्कृतिक तत्त्व ने स्वयभू तथा तुलसी के नारी-चित्रण को प्रभावित किया है, यह निश्चित प्रतीत होता है, किन्तु स्वयभू नारी के 'पत्नीत्व' को समाज-प्रदत्त ऐसा अधिकार मानते है, जो बहुत रूढ अथवा बधनयुक्त नही है । तात्पर्य यह है कि स्वयभू नारी को बाध्य करके पतिव्रता बनाने का प्रयत्न कही नही करते, किन्तु तुलसी मे स्थिति सर्वथा विपरीत है । तुलसी की दृष्टि मे 'पत्नीत्व' नारी की नैतिक मर्यादा है, जिसे एक बार छोडकर नारी सदैव के लिए पतित हो जाती है । तुलसी पतिव्रत-धर्म को नारी का सर्वोच्च प्रेय तथा श्रेय मानते हैं । इस दृष्टि से स्वयभू की पत्नियो मे जिन्हे 'आदर्श' भी कहते है, वे भी किसी नैतिक नियम से बँधी हुई प्रतीत नही होती, बल्कि सामान्य रूप मे पत्नी होने के नाते 'पति-हित' तथा 'पति-आज्ञा-पालन' जैसे गुण उनमे आए है । सीता, कौशल्या (अपराजिता), अजना, वनमाला आदि का उदाहरण इस सदर्भ मे लिया जा सकता है । दूसरी ओर तुलसी की 'सीता' पतिव्रत-धर्म को सस्कार मे प्राप्त करती हैं— 'जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी' सीता का सर्वोच्च आदर्श है । इसी प्रकार 'पार्वती' का 'पातिव्रत्य' उनका शाश्वत नारी-धर्म है, जिसके लिए 'जनम जनम सिव पद अनुरागा' की भावना सहज स्वाभाविक ही है ।

वस्तुत स्वयभू नारी के पत्नी रूप को यथार्थ की आधार भूमि पर रखकर देखते हैं, किन्तु तुलसी आदर्श तथा मर्यादा की आधार भूमि लेकर नारी के 'पत्नीत्व' को परखने का लक्ष्य लेकर चले है । इसी कारण स्वयभू ने 'नलकूबर' राजा की परिणीता पत्नी 'उपरभा' को रावण मे घोर अनुरक्त दिखाया और बाद मे पुन नलकूबर के साथ उसे भोग करते दिखा दिया ।[3] तुलसी की मर्यादावादी दृष्टि ने

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ८७।छन्द ।
[2] वही, ८८।१–३ तथा ८९।२ ।
[3] पउमचरिउ, १५वी सधि ।

नारी को पतन से इतना ऊँचा उठाया है कि पतन का चिह्न भी शेष नहीं रहा। 'सती उमा' की घोर तपस्या उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है।

सामाजिक जीवन मे व्याप्त उच्छृंखलता को मिटाने के लिए तुलसी ने 'तारा' को बाली द्वारा अपहृता दिखाकर 'अनुज-वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी ॥ इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।' कहा है, जो निश्चितत तुलसी के आदर्शवादी दृष्टिकोण की ओर इगित करता है। सास्कृतिक आधार पर 'पत्नी' पति के साथ जीवन-यात्रा मे सहकर्मी है। इस भावना को भी स्वयभू ने उतना महत्त्व नही दिया, जितना तुलसी ने दिया है।

स्वयभू नारी के परिवार मे 'वधू' रूप मे विविधतापूर्ण चित्रण कही नही कर सके, जबकि तुलसी इस दृष्टि से बहुत ऊपर उठ गए हैं। सीता का रघुकुल-वधू के रूप मे वशिष्ठ जी के साथ, कौशल्या के साथ, वयोवृद्धा स्त्रियो के साथ, मत्री सुमत्र के साथ, केवट के साथ, वन मे राम, लक्ष्मण, भरत तथा जनक आदि के साथ और अशोकवन मे त्रिजटा आदि के साथ किया गया सयत, सौम्य तथा मर्यादित व्यवहार तुलसी की सामाजिक तथा सास्कृतिक स्थिति के प्रति सजग जागरूकता का परिचायक है।

स्वयभू ने एक नारी-पात्र की सर्जना के द्वारा अपनी धार्मिक-वृत्ति का प्रदर्शन करा दिया है,[1] और बौद्ध-धर्म से जैन-धर्म का सघर्ष दिखाकर साम्प्रदायिकता का परिचय दे दिया है, किन्तु 'समन्वयकर्त्ता' तुलसी ने सकीर्ण मनोवृत्ति का प्रकाशन किसी नारी-पात्र के माध्यम से नही होने दिया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वयभू 'पत्नीत्व' के चित्रण मे समाज को कई बार अनदेखा कर गए हैं, किन्तु तुलसी ने समाज को कही भी दृष्टि से ओझल नही होने दिया है। इस प्रयास मे उन्हे 'नारी चित्रण मे बेहद अनुदार'[2] होने जैसे आरोप भी सहने पडे ओर मदोदरी को 'अस्वाभाविक पत्नी' बनाने जैसी भूल भी करनी पडी।[3] सामाजिकता के प्रति आग्रह ने ही तुलसी की 'पत्नियो' को आदर्श बनने की प्रेरणा दी (कैकेई का घोर प्रायश्चित), जबकि स्वयभू की नारियो मे 'अधम पत्नीत्व' भी प्रचुरता से मिल सकता है। इस क्षेत्र मे तुलसी को स्वयभू से निस्सदेह उच्चता प्राप्त हुई है।

नारी-पात्रो के 'पत्नीत्व' की सघटना मे दोनो ही महाकवियो ने मनोविज्ञान का आधार ग्रहण किया है, किन्तु नारी-मनोविज्ञान का जितना सहज ज्ञान तुलसी मे प्रतीत होता है, वह स्वयभू मे नही है। स्वयभू की 'पत्नियाँ' सामान्यत 'इद' से सर्वाधिक शासित है, 'अहम्' से कम तथा 'पराहम्' से सामान्यत सर्वाधिक कम। यही कारण है कि स्वयंभू के नारी-पात्रो मे 'मानव-सुलभ वास्तविकता' भले ही

---

[1] पउमचरिउ, ३५वीं सधि।

[2] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०७।

[3] वही, पृ० ३०६।

आ गई है, उदात्त-तत्त्व का समावेश नहीं हो पाया है। इस दृष्टि से सीता-राम का 'काम-परक चित्रण'[1], अंजना-पवनजय का स्थूल 'सभोग-चित्रण'[2]; वनमाला-लक्ष्मण का लौकिक 'प्रणय-चित्रण'[3] तथा उपरभा[4] और चन्द्रनखा की अतिशय कामुकता[5] हमारे कथन को पूर्णत सिद्ध करने मे समर्थ हैं। इसके विपरीत तुलसी की 'पत्नियाँ' 'पराहम्' से सर्वाधिक शासित हुई और 'अहम्' तथा 'इद' से क्रमश कम। इसके परिणाम-स्वरूप उनके चरित्र मे उदात्त-तत्त्व का समावेश हो गया है। सीता का कौशल्या के साथ व्यवहार[6], राम से वन जाने का आग्रह[7], वन-मार्ग मे ग्राम-नारियों के साथ दिखाया गया सौजन्य,[8] वन मे सासो, माता-पिता आदि से व्यवहार,[9] कौशल्या का धैर्यमय सतुलित व्यवहार,[10] अनुसूया, रति, सुमित्रा आदि का आचरण हमारे कथन को प्रमाणित करने मे समर्थ है।

नारी के मनोगत भावो—उत्कण्ठा, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, चिन्ता, सौतिया-डाह आदि का चित्रण करने मे तुलसी सिद्धहस्त है। सीता का चरित्र तुलसी के नारी-मनोभावो को परखने की प्रतिभा से ही इतना सजीव बन सका है। कैकेई का 'मान-सिक द्वन्द्व' तथा उसमे 'ईर्ष्या का सचार' मनोविज्ञान की आधार शिला पर तुलसी को सादर प्रतिष्ठित कराते हैं। मथरा का 'नारी-चरित्र' विशिष्ट ही है। स्वयभू ने मदोदरी के चरित्र-चित्रण मे मनोविज्ञान का सर्वाधिक आधार लिया है। मदोदरी रावण की पत्नी के नाते सब कुछ करती है, जो रावण चाहता है (दूतीपन भी), यह उसका स्वाभाविक मनोगत चित्रण ही है। सीता द्वारा अपमानित होने पर उसका राजदर्प क्रुद्ध हो उठता है।[11] पति का शत्रु मदोदरी का प्रिय कैसे बन सकता है? अत वह राम के लिए निकृष्ट सबोधन भी करती है, जो सहज स्वाभाविक ही है।[12]

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि दोनो ही कवियो ने 'मनोविज्ञान-तत्त्व' का आधार नारी-पात्रो के 'पत्नीत्व' की सघटना मे किया है। दोनो ही इस क्षेत्र मे सफल तथा सिद्धहस्त हैं। यह तथ्य स्मरणीय है कि स्वयभू ने कथाविकास के लिए बहुत से नारी-पात्रो की सृष्टि की है, जबकि तुलसी के नारी-पात्रो की सख्या सीमित है, जिसमे तुलसी के नारी-पात्रो का चरित्र-चित्रण अधिक सजीव तथा मनोविज्ञान-सम्मत हो गया है और स्वयभू कुछ पीछे पड गए हैं। समग्रत दोनो के नारी-पात्र चित्रण मे मनोवैज्ञानिक तत्त्व सर्वाधिक प्रभावी प्रतीत होता है।

देशकाल का तत्त्व भी दोनो ही कवियो के नारी-पात्रो मे 'पत्नीत्व' की सघटना

---

[1] पउमचरिउ, २३।११।७–८।
[2] वही, १८।१२।६।
[3] वही, ३१।२।१–६।
[4] वही, १५वी सधि।
[5] वही, ३६।११।१–९।
[6] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड ६४।४ ५।
[7] वही, ६५।१–८।
[8] वही, ११७।१–७।
[9] वही, २८७।२–८।
[10] वही, १५४।३–८।
[11] पउमचरिउ, ४९।१६।१-४।
[12] वही, ४९।१८।५–६।

मे आधार बना है । 'सीता-अनुसूया प्रसंग' तथा 'पार्वती-मैना प्रसंग' से तुलसी के युग मे नारी की सामाजिक स्थिति का बोध सहज ही हो जाता है । 'तारा' तथा 'अहल्या' उद्धार का प्रसग भी तुलसी-युग मे नारी की पराधीनता का सूचक है, जिससे कवि नारी को उबारने का प्रयास करता है । कौशल्या-कैकेई-सुमित्रा को हविष्यान्न देने के प्रसग से 'बहु-विवाह' के बाद भी पारिवारिक सौहार्द्र का सकेत मिलता है, जो कैकेई-कोप प्रसग मे आकर 'पारिवारिक अशान्ति' की ओर इगित करता है ।

स्वयभू ने 'अजना' के प्रसग को लेकर 'सास-बधू' की तात्कालिक स्थिति की ओर[1] अत्यन्त स्पष्ट सकेत किया है तथा पारिवारिक व्यवस्था मे बधू के नारकीय जीवन की झाँकी दी है । उपरभा तथा चन्द्रनखा के चरित्र लेकर नारी की उच्छृखल कामुकता की ओर इगित किया है । एक विशिष्ट नारी-पात्र 'दुर्नयस्वामिनी'[2] का सृजन तत्कालीन 'बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म के बीच सघर्ष' की स्थिति दिखाने तथा जैन मुनियो की आचार-निष्ठा को प्रदर्शित करने[3] के लिए ही हुआ है ।

भौगोलिक स्थानो का चित्रण भी दृष्टव्य है—तुलसी की सीता 'गगा-स्तवन' करती हैं, चित्रकूट मे निवास करती हैं तथा ऋषि आश्रमो मे भी जाती हैं, जिससे स्पष्टत तुलसी का उत्तरी भारत का होना सिद्ध होता है, जबकि दूसरी ओर स्वयभू की सीता 'नर्मदा' तथा 'गोदावरी' आदि नदियो को पार करती है, 'रगोली' सजाती है, जिससे स्वयभू का दक्षिणी-भारत का होना सिद्ध होता है ।

'मिथ' (पुराण-विषयक) तत्त्व का समावेश तुलसी के नारी-पात्रो की सघटना मे अत्यधिक प्रभावी तत्त्व के रूप मे हुआ है । सीता राम की शक्ति हैं, गरिमामयी जगज्जननी हैं—यह तुलसी नही भूल पाते । राम द्वारा 'सीता-हरण' से पूर्व सीता को अग्नि-प्रवेश कराकर 'माया सीता' का सृजन[4] इसी पुराण तत्त्व का प्रभाव व्यजित करता है । अनुसूया का सीता को दिया गया पातिव्रत्य-धर्म का उपदेश[5] तथा नारीत्व का पतिव्रत धर्म-पालन के आधार पर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तथा अधम रूपो मे वर्गीकरण 'पुराण-समर्थित' ही है ।[6] स्वयभू मे इस दृष्टि का अभाव स्वाभाविक ही है, तथापि जैन-आगमो का प्रभाव स्वयभू पर भी देखा जा सकता है । जन्म-जन्मान्तर तथा कर्मफल का पौराणिक सिद्धान्त दोनो ही मानते हैं । स्वयभू ने विशल्या

---

[1] पउमचरिउ, १६।४ तथा ५।१–६ ।

[2] वही, ३५।७।१–६ ।

[3] मुणि चोरन्ति मन्ति म पत्तिय ।   —वही, ३५।८।६

—यह विश्वास कभी मत करो कि जैन मुनि चोरी करते हैं ।

[4] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, २४।२ ।

[5] वृद्ध रोगबस जड धनहीना । अध बधिर क्रोधी अति दीना ।।
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा । कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ।। —अरण्यकाण्ड, ५।८–१०

[6] शिवपुराण, हितोपदेश, शुक्रनीति, पराशर-सहिता, मनु-स्मृति आदि ।

के पूर्व-जन्म में लक्ष्मण-प्रिया होने का सकेत किया है[1] तथा सीता द्वारा कर्मफल[2] का उल्लेख कराया है। तुलसी तो 'जो जस करइ सो तस फल चाखा' का सिद्धान्त मानते ही हैं तथा 'उमा' का जन्म-जन्म मे शिव से अनुराग दिखाकर और सीता की 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' का चित्रण करके, जन्मान्तर को भी स्वीकृति देते हैं।

तुलसी के पात्रो मे पौराणिक तत्त्व स्वाभाविकत स्वयभू की अपेक्षा अधिक रहा है। इसमे दोनो कवियो के धार्मिक विश्वास तथा मान्यताएँ प्रभावी रही हैं।

'कवि-दृष्टिकोण' ने दोनो के पात्रो का स्वरूप ही सर्वथा भिन्न कर दिया है। स्वयभू सौन्दर्यवादी यथार्थ दृष्टि के कवि है, अत उनके नारी-पात्रो मे सभी का स्थूल मासल-चित्रण, सभोग-चित्रण तथा लौकिक सौन्दर्य-चित्रण सभव हो गया है, किन्तु तुलसी मर्यादावादी आदर्श दृष्टि के कवि हैं, अत उन्होने स्थूल चित्रण से बचते हुए सूक्ष्म-सौन्दर्य के पावन अतीन्द्रिय रूप को लिया है। इस प्रयास मे तुलसी 'मदोदरी' जैसी नारी के चरित्र मे कुछ अस्वाभाविकता ले आए, किन्तु मर्यादा तथा आदर्श को नही छोड सके। निष्कर्षत स्वयभू यथार्थवादी सौन्दर्य-चित्रण के कवि रहे हैं तथा तुलसी मर्यादा तथा आदर्शवादी सौन्दर्य-चित्रण के कवि हैं। स्वयभू नारीत्व के लौकिक पक्ष को मानते हैं, तो तुलसी अलौकिक पक्ष को।

---

[1] पउमचरिउ, ६८।१३।१०।

[2] वही, ८१।१२।१०।

७

माताएँ

नारी जीवन की चरम उपलब्धि तथा स्वर्णिम सफलता मातृत्व प्राप्त करना ही है। माँ बनते ही नारी, दार्शनिक दृष्टि से, 'एकोऽहं बहुस्याम' की स्थिति प्राप्त कर लेती है और उसमें ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा हो जाती है। पुरुष के 'शुक्रकण' को अपने भीतर निहित 'रजकण' से सयुक्त करके नारी जब अपने उदर मे 'भ्रूण' को स्थिति प्रदान करती है, तभी से उसमे गरिमा का समावेश होने लगता है। वह सर्वथा निस्स्वार्थ भाव से, आगत के स्वर्णिम स्वप्न सजोकर, त्याग एव स्नेह से भर जाती है। अपने रक्त से वह भ्रूणावस्था-स्थित 'प्राण' का पोषण करती है, अपने भोजन तथा शक्ति से उसे नौ मास तक भोजन तथा शक्ति प्रदान करती है। जीवन की असह्य वेदना को सहकर और मृत्यु से भी सघर्ष करके नारी सन्तान को जन्म देती है और 'जननी' बनती है। भारतीय प्रज्ञा नारी के इस धैर्ययुत त्याग की समता के लिए पृथ्वी को ही चुन सकी और कह उठी—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

नारी मे जननी बनते ही स्नेह का अजस्र स्रोत स्तनो से दूध के रूप मे फूट पड़ता है, ममत्व की सहज, भोली अनुभूति अधरो से छिटककर बालक के कपोलो पर निश्छल नेह की छाप लगा देती है, त्याग की उत्कट भावना उसके हृदय से निकल कर बालक के गीले बिछौने को, रात भर, नीद भरे नेत्रो से ढूंढ-ढूंढ कर, सूखा बनाती रहती है। सभवत: जननी का यह उदात्ततम स्वरूप ही उसे मानव के जीवन की प्रेरणा बना देता है और माँ के समक्ष मानव सदैव 'शिशु' ही बना रहता है।

जननी को भारतीय संस्कृति में उच्चतम सम्मान देकर उसे परमात्म-रूपा[1] कहा गया है। 'मनु-स्मृति' मे माता को पिता से सहस्र गुना अधिक माना गया है

---

[1] त्व हि न पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ। —ऋग्वेद, ८।९८।११

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणा शत पिता ।
सहस्र तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ —मनु० २।१४५

जननी भारतीय समाज मे सर्वोत्तम स्थिति प्राप्त करती रही है । प्रत्येक युग में कवि की भावना ने नारी के मातृत्व का स्पर्श कर स्वय को सार्थक किया है ।

स्वयभूदेव माताएँ

प्रधान पात्र		गौण पात्र
१ अपराजिता (कौशल्या)	२ कैकेई	१. अमृतमती
३ सुमित्रा	४ सुप्रभा	२ केतुमती
५ मदोदरी	६ अजना	३ मनोवेगा
७ सीता	८ चन्द्रनखा	४ अनुराधा
		५ कैकसी

प्रधान पात्र

अपराजिता (कौशल्या)—स्वयभू ने समस्त प्रधान पात्र जैन-राम-कथा के सूत्र-धार महाकवि विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' से ग्रहण किए है तथा स्वयभू ने अपनी नवीन उद्भावनाओ से अपने नारी-पात्रो की सृष्टि अनुपम की है ।

स्वयभू ने अपराजिता मे कोमल-हृदया, ममतामयी माँ का चित्रण सजीव रूप मे किया है । राम वन जाने के लिए आज्ञा माँगने आए, तो परदु ख-कातरा अपराजिता दु ख से हतप्रभ होकर 'हा पुत्र' कहती हुई चेतनाहीन हो गई । पुत्र-वियोग मे व्यथित अपराजिता का चित्रात्मक अकन स्वयभू ने किया है—उसकी आँखे नीली तथा अश्रु-जल से पूरित थी । व्यथा-वेग से वह करुण विलाप करने लगी—'हा बलभद्र ! यह क्या कहा तुमने ? दशरथ-कुल-दीपक, जग मे सर्वाधिक सुन्दर राम । तुम्हारे बिना कौन पलग पर सोएगा ? कौन दरबार मे बैठेगा ? कौन हाथी-घोडो पर चढेगा ? कौन गेद खेलेगा ?' करुण विलाप सुनकर अन्त पुर रो पडा ।[1]

भरत ने पुत्र-वियोग मे व्यथित अपराजिता का जो करुणाप्रद रूप देखा, वह स्वयभू के हृदय का चित्र ही है—कौशल्या के केश बिखरे हैं, अश्रुधारा बह रही है, रुदन चरम सीमा पर है ।

एम पलाउ करेवि सहुम्मएँ । राहव-जणणिहें गउ ओलग्गएँ ॥
केस-विसण्ठुल दिट्ठ रुअन्ती । असु-पवाह धाह मेल्लन्ती ॥[2]

स्वयभू को जाने क्यो रघुकुल की राजमहिषी का भरत के साथ राम को लौटाने जाना भला नही लगा ? सभव है, राजत्व की गरिमा ने स्वयभू को यह नवीनता लाने की प्रेरणा दी हो । भरत ने वन से लौटकर 'राम के न आने की सूचना' अपरा-

[1] पउमचरिउ, २३।४।५–६ ।
[2] वही, २४।७।७–८ ।

जिता को दी और उन्हें धैर्य धारण कराया ।[1]

राम ने रावण पर विजय प्राप्त कर ली, तो स्वयंभू को पुत्र-वियोग मे दग्धा अपराजिता का स्मरण हो आया । पुत्र-वियोग मे क्षीण-काय अपराजिता राम की रात-दिन प्रतीक्षा कर रही थी, पथिको से पूछा करती थी । कभी आँगन मे कौवा बोलता था, तो उसे लगता था, 'राम अवश्य मिलेंगे' कह रहा हो ।

तहिँ कालेँ सुकोसल-राणियहेँ । णन्दण-विओय-विद्दाणियहेँ ।।
रत्तिन्दिहु पहु जोअन्तियहेँ । पथिय-पउत्ति-पुच्छन्तियहेँ ।।
घर-पगणेँ वायसु कुलकुलइ । ण भणइ 'माएँ रहुवइ मिलइ' ।।[2]

इसी समय नारद ने आकर अपराजिता को राम-लक्ष्मण-सीता तथा विशल्या की कुशल सूचना दी । तदुपरान्त नारद राम के पास लका पहुँचे और उन्हे अपराजिता के वियोग की वास्तविक स्थिति बताई । नारद ने कहा—मैं अपराजिता के पास से आया हूँ । वह तुम्हारे वियोग मे उन्मन, उदास है । हरिणी-सी व्याकुल है । बछडे से बिछुडी गाय-सी वह रोती-बिसूरती रहती है ।

सा तुम्ह विओएं दुम्मणिय । अच्छइ हरिणि व वुण्णाणणिय ।।
सुहु एक्कु वि दिवसु ण जाणियउ पइँ वण-वासु पवण्णएँण ।।
अच्छइ कन्दन्ति स-वेयणिय णन्दिणि जिह विणु तण्णएँण ।।[3]

इस करुण दशा के पश्चात् स्वयभू ने अपराजिता को राम द्वारा सर्वोच्च सम्मान दिला कर मातृत्व को गरिमा मण्डित किया है

णिय-जम्मभूमि जणणिएँ सहिय । सग्गेँ वि होइ अइ-दुल्लहिय ।।[4]

—अपनी माँ और जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक प्रिय होती है ।

राम अयोध्या आ गए और अपराजिता का मातृत्व पुलक से भर उठा । राम ने 'जिनेन्द्र' की भाँति माँ का जयकार किया ।[5] पुत्र को प्राप्त कर अपराजिता धन्य हो गई ।

कैकेई—रामकथा मे कैकेई का 'मातृत्व' सर्वाधिक विवाद तथा विचार का केन्द्र रहा है । आदिकवि वाल्मीकि ने विमाता के रूप मे कैकेई की दुष्टता एव कुटिलता का चित्रण स्पष्ट रूप से किया है । उनमे भी कैकेई को दोषमुक्त करने का प्रयास दृष्टिगत होता है जब आदिकवि ने भारद्वाज मुनि से इस आशय की बात कहलाई है ।[6]

---

1 पउमचरिउ, २४।११।२–३ ।

2 वही, ७८।१५।१–३ ।

3 वही, ७८।१६।६ तथा १० ।

4 वही, ७८।१७।४ तथा २०।१० ।

5 वही, ७६।६।१–८ ।

6 देवाना दानवानां च ऋषीणा भावितात्मनाम् ।
हितमेव भविष्यद्धि राम प्रव्राजनादिह ।। —वाल्मीकिरामायण, ६२।३१

विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे कैकेई ने अपने पुत्र भरत का वैराग्य दूर करने के लिए राजा से उसे राज्य देने का वर माँगा था, राम के वन जाने की बात कैकेई ने नहीं कही थी।[1] स्वयभू ने इसी परम्परा से कैकेई का चरित्र ग्रहण करके उसे जन-मानस में अधिक कलकित नहीं होने दिया है। कैकेई के चित्रण मे स्वयभू ने नारी-मनोविज्ञान का आधार लेकर सहजता एव सजीवता उत्पन्न की है।

दशरथ द्वारा राम को राज्य दिए जाने पर कैकेई मन मे वैसे ही सतप्त हो उठी, जैसे ग्रीष्म मे धरती तपती है।

दसरहु अण्ण-दिणे किर रामहो रज्जु समप्पइ।
केक्कय ताव मणे उण्हालएँ धरणि व तप्पइ॥[2]

ईर्ष्या से दग्ध कैकेई ने दशरथ से कहा, 'मह णन्दणो ठाउ रज्जाणुपालो'—मेरे पुत्र को राज्यपाल बनाइए। परिणामस्वरूप राम-लक्ष्मण-सीता वन चले गए। भरत ने कैकेई को इस कुकृत्य के लिए बहुत धिक्कारा। स्वाभाविकत स्वयभू ने नारी-स्वभाव को लक्ष्य कर अनेक कटु बाते इस प्रसग मे कह दी हैं

णउ जाणहुँ महिलहुँ को सहाउ। जोव्वण-मएण ण गणन्ति पाउ॥

× × × ×

सप्पुरिस वि चचल-चित्त होन्ति। मणे जुत्ताजुत्तु ण चिन्तवन्ति॥[3]

अर्थात् क्या स्त्रियो का स्वभाव नही जानते ? यौवन-मद मे ये पाप नहीं गिनती। सत्पुरुषो का चित्त भी चचल हो जाता है और वे उचित-अनुचित का विचार नही कर पाते।[4]

स्वयभू ने कैकेई को, भरत के साथ वन मे राम को लौटाने के लिए भेजा है, किन्तु व्यथा अथवा पश्चात्ताप की व्यजना स्वयभू की कैकेई के व्यवहार से नही हो पाई है।[5] ऐसा लगता है कि स्वयभू इस प्रसग मे हृदय नही रमा सके। कई स्थलो पर कैकेई को स्वयभू ने लक्ष्मण की माता कहकर उल्लेख कर दिया है।[6]

कैकेई का सर्वथा नवीन रूप स्वयभू ने 'लक्ष्मण-शक्ति प्रसग' मे चित्रित किया है, जो उनकी मौलिक उद्भावना का प्रतीक है। 'लक्ष्मण को शक्ति लगने की सूचना सुनकर पति के वश-वृक्ष की जड खोदने वाली कैकेई भी रो पडी।'

रोवइ अवराइव राम-जणणि। केक्कय दाइय-तरु-मूल-खणणि॥[7]

विशल्या को अपने भाई से वह स्वय माँगने गई, ताकि लक्ष्मण जीवित हो

---

[1] पव, ३२।

[2] पउमचरिउ, २२।७।६।

[3] वही, २२।१०।५ तथा ७।

[4] तुलनीय नारिचरित जलनिधि अवगाहू। —रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, २७।७

[5] पउमचरिउ, २४।६।३–७।

[6] वही, ५८।१५।८ तथा ८१।८।५।

[7] वही, ६६।१३।५।

सके ।[1] इस स्थान पर कैकेई सहृदय विमाता के रूप में कवि की उद्‌भावना की परिचायिका ही है। इस क्रम मे, राम के अयोध्या लौटने पर, भरत द्वारा दीक्षा ग्रहण करने के बाद स्वयभू ने कैकेई को भी जैन-धर्म में दीक्षित करा दिया है

थिउ भरहु महारिसि-रूवु लेवि। मणि-रयणाहरणइँ परिहरेवि ॥

तहिँ जुवइ-सएँहिँ सहुँ केक्कया वि। थिय केसुप्पाडु करेवि सा वि ॥[2]

पुत्र के वैराग्य को दूर करने के हेतु राज्य माँगने वाली माँ पुत्र द्वारा वैराग्य ले लेने पर स्वय भला क्योंकर विरक्त न होती ? स्वयभू की यह मौलिक उद्‌भावना सर्वथा विलक्षण और चमत्कारपूर्ण है।

सुमित्रा—परम्परा से सुमित्रा लक्ष्मण की माता के रूप मे चित्रित हुई है। स्वयभू ने सुमित्रा मे पुत्र-स्नेह की भावना का किंचित् विस्तृत वर्णन करके उसके मातृत्व को मुखर किया है। लक्ष्मण को शक्ति लगने के प्रसग मे स्वयभू ने सुमित्रा को भावुक माँ के रूप मे चित्रित किया है—लक्ष्मण की माता सुमित्रा रो रही थी—'हा पुत्र ! तुम कहाँ चले गए ? मरते समय तुम्हे देख भी न पाई' सुमित्रा के रुदन को देख अन्त पुर रो उठा

रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय। रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय ॥

हा पुत्त पुत्त केत्तहि गओऽसि। किह सत्तिएँ वच्छ-त्थलेँ हओऽसि ॥

हा पुत्त मरन्तु ण जोइओऽसि। दइवेण केण विच्छोइओऽसि ॥[3]

पता नही, राम-लक्ष्मण-सीता के अयोध्या लौटने पर स्वयभू सुमित्रा को क्यो विस्मृत कर बैठे ? भावना के इस अवसर पर सुमित्रा को भूल जाना कवि की भूल ही है।

सुप्रभा—शत्रुघ्न की माता के रूप मे सुप्रभा का उल्लेख हुआ है। लक्ष्मण-शक्ति-प्रसग तथा राम के प्रत्यागमन प्रसग मे सुप्रभा की उपस्थिति मात्र दिखाई गई है।[4]

सुप्रभा का सर्वथा मौलिक चित्रण स्वयभू ने तब किया है, जब शत्रुघ्न ने राम से मथुरा नगरी माँगी। राम ने वहाँ के राजा मधु के पराक्रम की बात कही, तो शत्रुघ्न ने भावावेश मे डीग मार कर उसे परास्त करने का प्रण किया। सुप्रभा ने शत्रुघ्न को डाँट कर कहा—वह बोलना उचित होता है, जो निभाया जा सके।

गज्जन्तु णिवारिउ सुप्पहएँ। किं पुत्त पइज्जा सम्पयएँ ॥

वोल्लिज्जइ त ज णिव्वहइ। भड-वोक्केँहिँ सुहडु ण जउ लहइ ॥[5]

यहाँ स्वयभू ने सुप्रभा को राजमाता का रूप प्रदान किया है, जो निश्चय ही उनके

---

[1] पउमचरिउ, ६६।१५।१–३।

[2] वही, ७६।१४।२–३।

[3] वही, ६६।१३।६–८।

[4] वही, ६६।१३।६, ७६।६।६ तथा ७६।१३।५।

[5] वही, ८०।४।१–२।

राज्याश्रय मे रहने के कारण आ सका है ।

मदोदरी—स्वयभू ने मदोदरी के दो पुत्र उत्पन्न होने का उल्लेख मात्र किया है । माता रूप का चित्रण नही किया ।

वहु-कालें मन्दोयरिहें जाय । इन्दइ-घणवाहण वे वि भाय ॥[1]

अजना—उपेक्षिता प्रणयिनी तथा पत्नी के रूप मे उसका करुणाजनक चित्रण स्वयभू ने रस-विभोर होकर किया है । सास तथा माता-पिता द्वारा दुत्कारी हुई अजना अपनी सखी सहित मामा के घर चली गई थी । वन मे ही अजना ने पुत्र को जन्म दिया और मातृत्व को प्राप्त किया

महावमासहों वहुलट्ठमिएँ । रयणिहें पच्छिम-पहरद्धें थिएँ ॥
णक्खत्तें सवणें उप्पण्णु सुउ । हल-कमल-कुलिस-झस-कमल-जुउ ॥[2]

मामा के साथ आकाश मार्ग से जाती हुई अजना के हाथ से शिशु छूटकर गिर पडा, किन्तु किसी विद्याधर ने उसे उठा कर पुन अजना को सौंप दिया । पुत्र को पुन पाकर अजना की ममता उमड पडी

अजणहें समप्पिउ जाय दिहिँ । ण णट्ठु पडीवउ लद्धु णिहिँ ॥[3]

वरुण के साथ युद्ध करने के लिए गए हुए पवनजय ने लौटकर अजना को घर से निकालने का वृत्तान्त सुना, तो तुरन्त उसे ढूंढने निकल पडा । विरह-दग्ध वह घूम रहा था । प्राणप्रिया के न मिलने पर उसने सन्यास लेने की प्रतिज्ञा कर ली । अजना पति-वियोग की बात सुनकर मूर्च्छित हो गई, चेतना आने पर मामा अजना को पवनजय से मिलाने ले गया । अन्त मे माँ बनने के साथ-साथ अजना का पत्नीत्व भी सार्थक हुआ और अजना तथा पवनजय का मिलन पुन हो गया ।

मिलिउ पहजणु अजणहों वेण्णि मि णिय-कहउ कहन्ताइँ ।
हणुरुह-दीवें परिट्ठियइँ थिरु रज्जु स इ भुजन्ताइँ ॥[4]

अजना को निर्दोष पत्नी के रूप मे प्रतिष्ठा उसके गौरवपूर्ण मातृत्व ने ही दी है । यह पात्र स्वयभू की विशिष्ट सर्जना है ।

सीता—राम द्वारा सीता को निष्कासित करके वन मे भेज देने पर वज्रजघ ने उन्हे आश्रय दिया । यह कथा-परम्परा स्वयभू ने विमलसूरि से यहाँ ग्रहण की है ।[5] सीता ने लवण तथा अकुश नाम के दो पुत्रो को जन्म दिया

तहिँ उप्पण्ण पुत्त लवणकुस । लक्खण-लक्खकिय दीहाउस ॥
सीयएविहें णयण-सुहकर । पुव्व-दिसिहें ण चन्द-दिवायर ॥[6]

---

[1] पउमचरिउ, १०।७।३ ।
[2] वही, १९।९।५–६ ।
[3] वही, १९।११।६ ।
[4] वही, १९।१८।१० ।
[5] पउमचरिय, पर्व, ९७ ।
[6] पउमचरिउ, ८१।१५।४–५ ।

सीता को स्वयंभू ने वीर-माता के रूप में चित्रित किया है। जब लवण तथा अंकुश युद्ध को जाने लगे, तब सीता ने आनन्दाश्रुओं से पूरित होकर आशीष दिया—मैं तुम्हें आशीष देती हूँ, तुम विजयी हो

तो वोलाविय वे वि जण जणणिएँ हरिसंसु-विमीसएँ ।
'स-गिरि स-सायर सयल महि भुंजेज्जहु महु आसीसएँ' ॥[1]

वीर-प्रसविनी सीता का मातृत्व तब धन्य हो गया, जब उसके पुत्र लवण ने गर्जना कर कहा—जिसने मेरी माँ को कलंक लगाया है, मैं उसको दावानल बनकर भस्म कर दूँगा।[2] माँ के लिए पुत्रों का पिता से युद्ध के लिए तत्पर होना स्वयंभू द्वारा नारी के मातृत्व के सम्मान का परिचायक ही है। सीता ने पुत्रों को राम-लक्ष्मण से युद्ध करने से रोका, किन्तु अंकुश ने सदर्प कहा—जिसने हमारी माँ को रुलाया है, हम भी उसकी माँ को रुला कर रहेंगे। मातृत्व का सर्वोच्च सम्मान यहाँ हुआ है।

तो वुच्चइ मयणकुसेंण 'एत्तडउ ताव दरिसावमि ।
जेण रुवाविय माय महु तहों तणिय माय रोवावमि' ॥[3]

राम-लक्ष्मण का लवण-अंकुश से घोर युद्ध हुआ, किन्तु नारद द्वारा बता देने पर पिता-पुत्रों का मिलन हो गया और पुत्रों सहित राम अयोध्या लौटे। राम ने सीता के सतीत्व को स्वीकार किया—'जाणमि सीयहें तणउ सइत्तणु', किन्तु सीता पर जनता द्वारा लगाया हुआ कलंक कैसे धोया जाए? सभी ने सीता के सतीत्व की साक्षी दी और अग्नि-परीक्षा का प्रस्ताव रक्खा। सीता को वन से लाने के लिए पुष्पक विमान गया, तो मातृत्व की गरिमा से मण्डित सीता का पत्नीत्व स्वाभिमानपूर्वक कह उठा—पाषाण-हृदय राम का नाम मत लो। उनसे मुझे कभी सुख नहीं मिला।

णिट्ठुर-हिययहों अ-लइय-णामहों। जाणमि तत्ति ण किज्जइ रामहों ॥[4]

सीता स्वाभिमानी की भाँति आई, किन्तु राम उन्हें देख 'अहं' से भर गए, किन्तु सीता ने नारीत्व की गरिमा का घोष करते हुए कहा

पुरिस णिहीण होन्ति गुणवन्त वि तियहें ण पत्तिज्जन्ति मरन्त वि ॥[5]

अर्थात् 'पुरुष गुणहीन हो या गुणवान्, नारी मरते दम तक उसका परित्याग नहीं करती।' मातृत्व से मण्डित सीता ने राम के पुरुषोचित अहं को तीक्ष्ण कटाक्ष से काट फेंका—'नर और नारी में अन्तर यही है कि लता मरते-मरते भी वृक्ष का सहारा नहीं छोड़ती। मैं सती हूँ, इसीलिए तुम्हारे देखते हुए भी विश्रब्ध हूँ।'

---

[1] पउमचरिउ, ८२।३।६।
[2] वही, ८२।८।१–५।
[3] वही, ८२।६।६।
[4] वही, ८३।६।२।
[5] वही, ८३।८।८।

णर-णारिहिँ एवड्डउ अन्तरु। मरणेँ वि बेल्लि ण मेल्लइ तरुवरु ॥
एहँ पइँ कवण बोल्ल पारम्भिय। सइ-वडाय मइँ अज्जु समुब्भिय ॥[1]

सीता का सतीत्व अग्नि मे से कुन्दन बनकर निकला। राम ने सीता से क्षमा-याचना करते हुए उनसे गृह-प्रवेश की कामना की। सीता का गरिमा मण्डित नारीत्व बोल उठा—'हे राम, आप व्यर्थ विषाद न करें, इसमे आपका दोष नही, मेरे ही पूर्व-कृत दुष्कर्मों का दोष है. अब तो ऐसा कीजिए कि दोबारा नारी न बनूं।

अहोँ राहव म जाहि विसायहोँ। ण वि तउ दोसु ण जण-सघायहोँ ॥
भव-भव-सएँहिँ विणासिय धम्महोँ। सव्वु दोसु एँउ दुक्किय-कम्महोँ ॥

× × × ×

एवहिँ तिह करेमि पुणु रहुवइ। जिह ण होमि पडिवारी तियमइ ॥[2]

सीता के उपर्युक्त कथन से जो वेदना झलकती है, वह उनके नारीत्व को गरिमा प्रदान करती है और साथ ही नारी-जीवन की कारुणिक झाँकी भी स्पष्ट करती है। सीता ने जैन-धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली। स्वयभू ने सीता के इस चरित्र-चित्रण मे नारी के शाश्वत 'नारीत्व' को प्रतिष्ठित किया है।

चन्द्रनखा—स्वयभू ने चन्द्रनखा मे पुत्र-वियोग से व्यथित मातृ-हृदय की झाँकी दिखाई है। शबूक का कटा हुआ सिर देखकर वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी। क्रदन करती हुई निर्जीव सी हो गई। कभी छाती पीटती थी कभी पुत्र को पुकारती थी और कभी करुण स्वर से रोती थी

हा पुत्त विउज्झहि लुहहि मुहु। हा विरुअएँ णिद्दएँ सुत्तु तुहुँ ॥
हा किण्णालावहि पुत्त मइँ। हा कि दरिसाविय माय पइँ ॥

× × × ×

हा पुत्त देहि आलिंगणउ। जे णच्चमि वणेँ वद्धावणउ ॥
णव-मासु छुद्धु ज मइँ उअेँर। त सहल मणोरह अज्जु जणेँ ॥[3]

पुत्र-वियोग मे वह विक्षिप्त हो गई थी, किन्तु विडम्बना उसके नारी-जीवन की, जिसने करुण मातृत्व को वासना के समक्ष पराजित करा दिया।

ज दिट्ठ वणन्तरेँ वे वि णर। गउ पुत्त-विओउ कोउ णवर ॥
आयामिय विरह-महाभडेँण। णच्चाविय मयरद्धय-णडेँण ॥[4]

कामदेव ने इस तरह नचाया चन्द्रनखा को कि पुत्र-वियोग तिरोहित हो गया और उसका उज्ज्वल मातृत्व 'वासना' के कलुष से सदैव के लिए कलकित हो गया। नारी का यह वासनामय रूप स्वयभू ने अवश्य देखा होगा, तभी उन्होने कहा

---

[1] पउमचरिउ, ८३।१६।६–७।
[2] वही, ८३।१७।२–३ तथा ६।
[3] वही, ३६।८।२–३ तथा ७–८।
[4] वही, ३६।११।१–२।

पउ जाणहुँ महिलहुँ को सहाउ। जोव्वण-मएण ण गणन्ति पाउ ॥[1]
अर्थात् 'स्त्री स्वभाव को कौन नही जानता ? यौवन-मद मे स्त्री पाप नही गिनती।'

गौण पात्र

अमृतमती—पृथ्वीपुर के राजा पृथु की पत्नी अमृतमती का 'कनकमाला' की जननी के रूप मे उल्लेख मात्र हुआ है। विमलसूरि कृत 'पउमचरिय'[2] मे भी इस नारी-पात्र का यही नाम तथा उल्लेख आया है।

दे देहि अमयमइ-तणिय बाल। कमणीय-किसोयरि कणयमाल ॥[3]

केतुमती—आदित्यपुर के राजा प्रह्लाद राज की पत्नी केतुमती पवनजय की माँ है। जब पवनजय अजना को ढूँढने बन मे चला जाता है, तो केतुमती पुत्र-वियोग मे तडप कर करुण विलाप करती है

हा पुत्त पुत्त दक्खवहि मुहु। हा पुत्त पुत्त कहिं गयउ तुहुँ ॥
हा पुत्त आउ महु कमें हिं पडु। हा पुत्त पुत्त रहगएहिं चडु ॥[4]

यहाँ स्वयभू ने केतुमती के मन मे अजना के साथ किए गए दुर्व्यवहार के प्रति प्रायश्चित दिखाकर नवीन उद्भावना की है, जिससे यह चरित्र निखर उठा है। 'पउमचरिय'[5] मे इस नारी-पात्र का नाम 'कीर्तिमती' आया है।

मनोवेगा—महेन्द्रनगर के राजा महेन्द्र की पत्नी मनोवेगा का नामोल्लेख अजना की माँ के रूप मे हुआ है। 'पउमचरिय'[6] मे इस नारी-पात्र का नाम 'हृदय-सुन्दरी' है।

तहो हिययवेण णामेण भज्ज। तहे दुहियजणसुन्दरी मणोज्ज ॥[7]

अनुराधा—तमलकार नगर के राजा चन्द्रोदर की पत्नी अनुराधा का नाम विराधित की माता के रूप मे उल्लिखित हुआ है। 'पउमचरिय'[8] मे इस पात्र का यही उल्लेख हुआ है।

णामेण विराहिउ पवर-जसाहिउ वियड-वच्छु थिर-थोर-भुउ।
अणुराहा-णन्दणु स-बलु स-सन्दणु एँहु सो चन्दोअरहो सुउ ॥[9]

कैकसी—रत्नाश्रव की पत्नी कैकसी का उल्लेख रावण, कुभकर्ण, विभीषण

---

[1] पउमचरिउ, २२।१०।५।
[2] पर्व, ६८।४।
[3] पउमचरिउ, ८२।२।२।
[4] वही, १६।१५।३–४।
[5] पर्व, १५।६।
[6] पर्व, १५।११।
[7] पउमचरिउ, १८।३।५।
[8] पर्व, ६।२०–२१।
[9] पउमचरिउ, ४०।५।१०

तथा चन्द्रनखा की माँ के रूप मे हुआ है ।[1] यही परम्परा 'पउमचरिय'[2] में भी है ।

स्वयभू ने माताओ का जो चित्रण किया है, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हे मातृत्व के चित्रण मे विशेष रुचि नही थी । स्वयभू मातृत्व के गरिमामय उदात्त रूप को मुखरित नहीं कर सके, केवल परम्परा-निर्वाह के लिए ही माता-रूप मे नारी-पात्रों का चित्रण उन्होने किया है, ऐसा प्रतीत होता है ।

तुलसीदास माताएँ

प्रधान पात्र		गौण पात्र
१ कौशल्या	४ सीता	१ मैना
२ कैकेई	५ पार्वती	२ सुनयना
३ सुमित्रा	६ मदोदरी	

प्रधान पात्र

कौशल्या—सस्कृत ग्रन्थो मे कौशल्या के मोहपूर्ण वात्सल्य का ही वर्णन अधिक हुआ है, किन्तु तुलसी ने कौशल्या को कर्त्तव्याकर्त्तव्य-निर्णय की सूक्ष्म-वृत्ति से मण्डित करके, सर्वथा मौलिक स्वरूप प्रदान किया है । विवेकशीला, धैर्यमयी तथा पतिव्रता पत्नी के रूप मे चित्रित करके तुलसी ने कौशल्या को जो गौरव दिया है, वह उनके उदात्त मातृत्व से सर्वथा सपुष्ट होता है । जब 'भए प्रकट कृपाला दीन-दयाला कौसल्या हितकारी' राम ने कौशल्या को जननी-रूप मे प्राप्त किया, तो 'ब्रह्म' का तेज देखकर भी नारी का वात्सल्य कह उठा—'कीजै सिसुलीला' और राम कौशल्या की गोद मे झूलने लगे ।

ब्यापक ब्रह्म निरजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।।[3]

तुलसी कौशल्या के साथ स्नेह-विभोर होकर राम का शिशु रूप निहार रहे है । तुलसी वात्सल्य की जो सजीव झाँकी प्रस्तुत करते हैं, वह सहज दर्शनीय है

लै उछग कबहुँक हलरावै । कबहुँ पालने घालि झुलावै ।।
प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान ।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान ।।[4]

तुलसी ने राम को 'ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई' भागते देखा है और 'ताहि धरै जननी हठि धावा' भी मन लगाकर देखा है । कौशल्या का यह भावनापूर्ण सजीव चित्रण तुलसी की भावुकता का सहज परिचायक है । राम के विवाह पर 'कौसल्यादि राम महतारी । प्रेमबिबस तन दसा बिसारी'—सभी माताएँ हर्ष से पुलकित हैं । तभी

---

[1] पउमचरिउ, ६१३१९-६ ।
[2] पर्व, ७।८६ से ६८ ।
[3] रामचरितमानस, बालकाण्ड दोहा १६८ ।
[4] वही, २००।८ तथा दोहा २०० ।

कौसल्या के भोले मातृत्व की जिज्ञासा मुखर होती है :

देखि स्याम मृदु मजुल गाता । कहहिं सप्रेम बचन सब माता ।।
मारग जात भयावनि भारी । केहि बिधि तात ताड़का मारी ।।[1]

राम के राज्याभिषेक का सुखद समाचार सुनकर 'आनँद मगन राम महतारी' ने पुलकित होकर 'दिए दान बहु बिप्र हँकारी' और 'पूजी ग्रामदेबि सुर नागा' तथा माँगा उनसे 'होइ राम कल्यानू'। राम जब कौसल्या के पास वन जाने की आज्ञा लेने पहुँचे, तो भूल गई ममता कि 'पुत्र युवराज हो गया है' और सहसा पुत्र को हृदय से लगा लिया माँ ने। वात्सल्य सजीव हो उठा है

बार बार मुख चुंबति माता । नयन नेह जलु पुलकित गाता ।।
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए । स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ।।[2]

जब राम ने बताया कि राज्य के स्थान पर वन मिल गया है, तो कौशल्या 'सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी'—किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी खड़ी रह गई। कवि ने मनोवैज्ञानिक चित्रण यहाँ कौशल्या का किया है

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ।।
नयन सजल तन थर थर काँपी । माजहि खाइ मीन जनु मापी ।।[3]

कौशल्या के हृदय मे भीषण सघर्ष होने लगा, भावना और कर्त्तव्य का भयकर सघर्ष। तुलसी ने अपनी कुशल परिवेक्षण की शक्ति से कौशल्या के मन का यह सघर्ष अत्यन्त मुखर बना दिया है।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू । दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ।।
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू । बिधि गति बाम सदा सब काहू ।।
धरम सनेह उभयँ मति घेरी । भइ गति साँप छुछुन्दरि केरी ।।[4]

विवेक की विजय हुई और 'सरल सुभाउ राम महतारी' ने राम को बताया 'पितु आयसु सब धरमक टीका'। बात यहाँ समाप्त हो जाती, किन्तु तुलसी की मौलिक उद्भावना ने कौशल्या को आदर्श पत्नी तथा माता के साथ-साथ उदात्त सपत्नी और विमाता का रूप भी तो प्रदान करना है। कैकेई के प्रति सर्वोच्च सम्मान-प्रदर्शन ने कौशल्या को शाश्वत उच्चता दे दी है

जौ केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ।।[5]

कौशल्या के जाग्रत् विवेक ने उसके भोले मातृत्व को सुला दिया। राम से कहा माँ ने 'जौ सुत कहौ सग मोहि लेहू' तो शायद 'तुम्हरे हृदयँ होइ सदेहू'—इसीलिए तुम वन जाओ, मैं प्रतीक्षा करूँगी।

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ३५६।७–८।
[2] अयोध्याकाण्ड, ५२।३–४।
[3] वही, ५४।३–४।
[4] वही, ५५।१–३।
[5] वही, ५६।१–२।

अस बिचारि सोइ करहु उपाई । सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई ॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ । करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥[1]

निस्सदेह कौशल्या का यह मातृत्व-चित्रण तुलसी की उपलब्धि है । राम वन जाने को निकल पड़े हैं, मानों कौशल्या के प्राण ही निकल पड़े हो । व्यग्रता तथा वेदना मिल कर सर्वत्र करुणा की पावन गंगा प्रवाहित कर रहे हैं

बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात ॥[2]

राम वन चले गए, कौशल्या अवध मे तड़पती रह गई । भरत के प्रति सहज मातृ-स्नेह का प्रकाशन कौशल्या के द्वारा करा कर तुलसी ने उन्हे गरिमा दी है । भरत जब ननिहाल से लौटे और राम-वन-गमन की सूचना पाकर कौशल्या के पास आए, तो विरह-व्यथिता राम-जननी का हृदय निर्मल-पावन गगा जल-सा था

मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि ।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥
सरल सुभाय मायँ हियँ लाए । अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई । सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥[3]

कौशल्या के इस उदात्त रूप की प्रशसा कवि ने जन-जन से कराई है—'देखि सुभाउ कहत सबु कोई । राम मातु अस काहे न होई' । कौशल्या का मातृत्व तो जैसे अगाध सागर है, जिसमे उदात्त भावनाओ का निर्मल जल हिलोरे ले रहा है । भरत की समस्त ग्लानि क्या इस पूत-पावन माँ के हृदय लग मिटी नही होगी ?

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई । कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई ॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए । कहि बिबेकमय बचन सुनाए ॥[4]

जब भरत को हृदय से लगाया कौशल्या ने, तो 'धन पय स्रवहिं नयन जल छाए' का मार्मिक दृश्य सजीव हो उठा । तुलसी ने व्यजना से इसे कहा है—'किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू' । कुछ न कह कर भी व्यजना से तुलसी ने सभी कुछ कह दिया है ।

वन मे भी कौशल्या का मातृत्व विवेक की गरिमा से युक्त रहा है । कौशल्या का यह रूप पुन दर्शनीय है

कौसल्या कह दोसु न काहू । करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥[5]

कौशल्या ने वस्तुत राम की जननी होना सार्थक कर दिया है । उन्हे कवि ने समरस

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ५७।३-४
[2] वही, दोहा ६८ ।
[3] वही, दोहा १६४ तथा १६५।१-२ ।
[4] वही, १६७।१-२ ।
[5] वही, २८२।३ ।

दिखाया है—'राम मातु दुखु सुखु सम जानी'।

चौदह वर्ष की अविरल प्रतीक्षा के पश्चात् राम अयोध्या आने वाले हैं। माता के मन की उत्सुकता दर्शनीय है

कौसल्यादि मातु सब मन अनन्द अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ ॥[1]

जब राम-लक्ष्मण-सीता आ गए, तो विरह-दग्धा माताएँ उनकी ओर दौड पडी

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन हुकार करि धावत भईं ॥[2]

पुत्र-मिलन के हर्ष से पुलकित माताएँ नयनो की गगा को रोककर आरती उतारती हैं अपने हृदय के आधार लाडले बेटो की

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मगल जानि नयन जल रोकहिं ॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं ॥
× × × ×
हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लकापति मारा ॥[3]

मातृत्व का यह भव्य चित्रण तुलसी की अनूठी काव्य-प्रतिभा का सहज प्रकाशन ही है, जिसने उन्हे तथा उनकी कौशल्या को साहित्य मे चिरस्मरणीय बना दिया है।

कैकेई—राम-काव्य-परम्परा मे कैकेई सर्वाधिक चर्चित नारी-पात्र कही जा सकती है। आदिकाव्य की कैकेई मे एक प्रकार से हम रावण का प्रतिरूप-सा पाते हैं।[4] विमाता के रूप मे उसका चित्रण अधिकाश कवियो ने किया है और उसे सपत्नी, कलह तथा ईर्ष्या की मूर्ति बना दिया है। बाल्मीकि ने कैकेई की दुष्टता एव कुटिलता का स्पष्ट चित्रण किया है। तुलसी ने कैकेई के इस चरित्र मे, विमाता के ईर्ष्यालु तथा आतकपूर्ण चित्रण मे, यथार्थ एव अतिशयोक्ति का अनूठा समन्वय करके अपनी अद्वितीय मनोवैज्ञानिक निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है।[5] तुलसी ने कैकेई मे नारी की सरलता तथा कुटिलता का जो अनूठा समन्वय किया है, वह उनकी मौलिकता ही है।

दशरथ-पत्नी के रूप मे कैकेई निश्छला तथा उदार-हृदया नारी है, जिसमे स्नेह-पूर्ण मातृत्व उमडा पडता है। राम के प्रति कैकेई का सहज स्नेह उसे आदर्श विमाता का स्वरूप प्रदान कर देता है

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायँ पिआरी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥

---

[1] रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, मगलाचरण दोहा।

[2] वही, ६।छन्द।

[3] वही, ७।३–४ तथा ७।

[4] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०१।

[5] डॉ० शिवकुमार शुक्ल रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० २६३।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरे ॥[1]

तुलसी के शब्द-विन्यास पर ध्यान देना परमावश्यक है । कैकेई 'करि प्रीति परीछा' देख चुकी हैं कि राम 'मो पर करहिं सनेहु बिसेषी', तो फिर क्योकर 'तिन्ह कें तिलक छोभु' मथरा को हो रहा है ? किन्तु 'सरस्वती' की पढाई हुई मथरा का 'कुटिलपन' काम कर रहा था और 'कथा सल सवति कै' सुनकर कैकेई बदल रही थी । तुलसी का सचेत कवि कह रहा था—'भावी बस प्रतीति उर आई ।'

तुलसी ने कैकेई के समक्ष बहुत बडा प्रश्न-चिह्न उपस्थित करा दिया मथरा के द्वारा—'जौ सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥'[2] 'सुत सहित सेवकाई' क्यो करे कैकेई ? कुटिल मथरा ने 'सुत' कहकर कैकेई के मातृत्व को सहमा दिया । विद्रोही बन गई कैकेई अपने 'सुत' के लिए । सत्य यही है कि कैकेई को पुत्र की आशका ने विद्रोही बनाया और कोप-भवन मे उसने सर्वप्रथम दशरथ से यही माँगा, 'देहु एक बर भरतहि टीका' और दूसरा वर ? वह प्रथम का पूरक ही था । पुत्र का राज्य निष्कटक कैसे हो ? कैकेई के विद्रोही मातृत्व ने समाधान के रूप मे माँगा दूसरा वर

तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनबासी ॥[3]

कैकेई का विद्रोही मातृत्व उसके 'पत्नीत्व' को पराजित करके, फन उठाए साँप-सा फुकार रहा था

भरतु कि राउर पूत न होही । आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥[4]

कैकेई का सपूर्ण विवेक, उसके नारीत्व की गरिमा और सबसे बढकर उसका सौभाग्य-सिंदूर भले ही मिट गया, किन्तु उसको 'सुत सहित करहु सेवकाई' स्वीकार्य नही हुई । पति ने उसे समझाया चेतावनी के स्वर मे 'तोर कलकु मोर पछिताऊ', किन्तु कैकेई का मातृत्व-दर्प झुका नही । वैधव्य उसने लिया, किन्तु 'सुत सहित करहु सेवकाई' नही स्वीकार की ।

लेकिन दुर्भाग्य कैकेई का । पुत्र ने जब उसकी समस्त 'करनी' सुनी, तो प्रतिक्रिया सर्वथा विपरीत हुई । माँ ने अपने सौभाग्य-सिंदूर को खोकर पुत्र के लिए रघुकुल का जो राजसिहासन प्राप्त किया था, भरत ने उसे ही नही, माँ को भी ठोकर मार दी ।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाकें छत जनु लाग अँगारू ॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा । पापिनि सबहि भाँति कुल नासा ॥
जौ पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारे मोही ॥[5]

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, १५।५–८ ।
[2] वही, १६।८ ।
[3] वही, २९।३ ।
[4] वही, ३०।२ ।
[5] वही, १६१।५–७ ।

भरत के एक-एक शब्द ने कैकेई को जो मानसिक प्रताड़ना दी होगी, उसकी कल्पना करना भी दुष्कर है, अभिव्यक्ति फिर कैसे हो? भरत का आक्रोश कैकेई के धैर्य को चीरता जा रहा था

भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥[1]

पुत्र द्वारा इतनी प्रताड़ना! कैकेई का हृदय ग्लानि से क्या भर नहीं गया होगा—'आँखि ओट उठि बैठहि जाई' सुनकर भरत के मुख से? भरत ने कैकेई को 'कुमाता' कह दिया।

भरत राम को लौटाने चित्रकूट चले, तो अभागी कैकेई भी साथ चली। भरद्वाज के आश्रम मे भरत जब ग्लानि अनुभव कर रहे थे, तो मुनि ने कैकेई को दोष-मुक्ता कह कर गौरव दिया तथा समस्त परिस्थिति भरत को बता दी

तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥[2]

तुलसी ने आदिकवि की परम्परा यहाँ ग्रहण की है। साथ ही तुलसी ने मौलिकता दिखाई है जनमानस द्वारा कैकेई को दोष-मुक्ता स्वीकार करा के

कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन॥[3]

कैकेई जब राम के समीप पहुँची, तो सर्वोच्च सम्मान राम ने कैकेई को दिया

प्रथम राम भेटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥[4]

क्या राम के सर्वप्रथम कैकेई से मिलने का उस पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव नही हुआ होगा? कैकेई का आत्म-दाह और ग्लानि उसे जलाए दे रहे थे

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥[5]

प्रायश्चित की अग्नि महानतम कलुष को भी जला कर हृदय को कुन्दन बना देती है। अन्तत कैकेई के मातृत्व को राम ने सर्वथा दोषमुक्त घोषित कर दिया

दोसु देहिं जननिहि जड तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥[6]

तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कैकेई को सादर विदा दी, अपने सौम्य व्यवहार से उस स्नेहमयी, पवित्र तथा उदार-हृदया माँ का शोक-सकोच सब दूर कर दिया। किन्तु कैकेई मन की आग मे चौदह वर्ष जलती ही रही, प्रायश्चित्त की चरमावस्था तक पहुँची कैकेई के मन की दृढ ममता।

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, १६२।७–८।

[2] वही, दोहा २०६।

[3] वही, २२३।५।

[4] वही, २४४।७।

[5] वही, २५२।५–६।

[6] वही, २६३।८।

राम बन से लौटे, तो 'रामहि मिलत कैकेई हृदयँ बहुत सकुचानि' की स्थिति बनी हुई थी, अत राम 'कैकेइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ' और तब राम ने सर्वोच्च सम्मान से विभूषित करके कैकेई को सदैव के लिए दोष-मुक्त कर दिया

प्रभु जानी कैकेई लजानी । प्रथम तासु गृह गए भवानी ॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा । पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा ॥[1]

वस्तुत कैकेई का चरित्र तुलसी की सर्वथा अनूठी उद्‌भावना का द्योतक है, जिसमे विद्रोही मातृत्व को मर्यादित होते हुए दिखाकर कवि ने असद्-वृत्ति पर सद्-वृत्ति की महानतम विजय दिखाई है ।

सुमित्रा—'रामचरितमानस' की सुमित्रा तुलसी के 'भक्त-हृदय' तथा 'भावुक कवि' के सहज उत्कर्ष की परिचायिका बन गई है । 'वाल्मीकिरामायण' मे जिस सुमित्रा का परिचय तक नही मिलता और जो एक अत्यन्त उपेक्षित तथा दीन-हीन जीवन व्यतीत करती है, उसी सुमित्रा के चरित्र मे माता का जो विकास कवि ने किया है, वह उसके लिए बहुत सराहना का पात्र है ।[2]

सुमित्रा को लक्ष्मण की माँ होने का गौरव मिला 'सुनु सखि तासु सुमित्राँ माता ।' उसके मन मे सपत्नी अथवा विमाता जैसे शब्दो का मानो अस्तित्व ही नही है । वह तो जनकपुरी से वधुओ सहित लौटने वाले अपने 'राजु कुँवरो' के स्वागत मे मग्न है

बिबिध बिधान बाजने बाजे । मगल मुदित सुमित्राँ साजे ॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला । पान पूगफल मगल मूला ॥[3]

तुलसी ने इस चित्र मे सुमित्रा के रूप मे भारतीय नारीत्व की सजीव सास्कृतिक झाँकी प्रस्तुत कर दी है, जो अत्यन्त मनोरम बन गई है ।

राम के राज्याभिषेक का सुखद समाचार सुनकर सुमित्रा पुलक से भर गई और ममता के समक्ष अपने 'राजरानी पद' को भी ताक पर रख दिया सुमित्रा ने

चौके चारु सुमित्राँ पूरी । मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी ॥[4]

इसी बीच कैकेई ने अपने दो वर माँगकर 'तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनबासी' का घोष करा दिया, तो रामानुरागी लक्ष्मण बन जाने की आज्ञा लेने सुमित्रा के पास आए । मन मे निश्चय ही द्वन्द्व रहा होगा लक्ष्मण के, अत वे 'मलिन मुख' माँ के समीप मौन खडे थे । तुलसी की प्रतिभा ने माँ की ममता तथा पुत्र की शालीनता का सजीव अकन कर दिया है

---

[1] रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, १०।१-२ ।
[2] डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसीदास, पृ० ३०३ ।
[3] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ३४६।३-४ ।
[4] अयोध्याकाण्ड, ८।३ ।

पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा॥[1]

तुलसी के प्रत्येक शब्द मे विलक्षण व्यजना निहित है। 'पूँछे मातु मलिन मन देखी' मे लक्ष्मण का सौम्य-शालीन चित्र है, 'कथा बिसेषी' मे अनहोनी बात की अनूठी व्यजना है और 'गई सहमि सुनि बचन कठोरा' मे सुमित्रा की नारी-सुलभ भावुकता तथा कोमलता साकार हो गई है, जो 'मृगी देखि दव' से नितान्त चित्रात्मक बन गई है।

धैर्य धारण कर सुमित्रा ने लक्ष्मण को जो कर्त्तव्य-बोध कराया, उसने न केवल माता रूप मे ही, बल्कि विमाता तथा सपत्नी रूप मे भी सुमित्रा को उच्चतम प्रतिष्ठा दी है

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौ पै सीय रामु बन जाही। अवध तुम्हार काजु कछु नाही॥[2]

विवेक पूर्ण मातृत्व का प्रकाशन सुमित्रा के इस कथन से हुआ है और उसकी दृढता 'अवध तुम्हार काजु कछु नाही' से ध्वनित हुई है। तुलसी ने सुमित्रा के कथन मे आदर्श नारीत्व की गरिमा भर दी है

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत ते हित जानी॥[3]

तुलसी ने व्याजस्तुति के माध्यम से सुमित्रा को आदर्श 'पुत्रवती' पद पर अभिषिक्त कर दिया है। तुलसी की रामभक्ति को इसी माध्यम से स्वय को अभिव्यक्त करना रुचिकर हुआ। सुमित्रा ने लक्ष्मण को आशीष दिया, जिसमे भारतीय समाज का आचार-विचार तथा भक्ति के स्वर समन्वित हो गए हैं और साथ ही सुमित्रा के विवेकपूर्ण मातृत्व को अभिव्यक्ति मिल गई है

उपदेसु यहु जेहि तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावही॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥[4]

भरत के साथ राम को लौटाने सब के साथ सुमित्रा भी गई। वहाँ भी तुलसी ने उसके मातृत्व को पूर्णत साकार कर दिया है

गहि पद लगे सुमित्रा अका। जनु भेटी सपति अति रका॥[5]

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ७३।५–६।
[2] वही, ७४।२–४।
[3] वही, ७५।१–२।
[4] वही, ७५।छन्द।
[5] वही, २४५।३।

माँ की सपत्ति भला क्या है ? वात्सल्य को अक मे भर कर 'रक' बनी सुमित्रा को वस्तुत त्रैलोक्य का सुख मिला होगा ।

अन्त मे जब राम-लक्ष्मण-सीता अयोध्या लौटे, तब लक्ष्मण ने माँ का दर्शन 'राम रूपा' जान कर किया ·

भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि ।[1]

निस्सदेह सुमित्रा के मातृत्व का चित्रण तुलसी की सर्वथा मौलिक उद्भावना है, जिसका रामकाव्य मे अन्यत्र दर्शन नही हो पाता । भावुकता, विवेक तथा भक्ति की साकार त्रिवेणी सुमित्रा हैं । तुलसी की यह सृष्टि अविस्मरणीय बन गई है ।

सीता—तुलसी ने सीता के माता रूप का मात्र उल्लेख ही किया है, क्योकि परम्परित 'सीता परित्याग' की कथा उनकी मर्यादा को रुचिकर नही हुई होगी । लव-कुश को सीता के पुत्र रूप मे तुलसी ने परम्परा के अनुसार चित्रित किया है

दुइ सुत सुन्दर सीताँ जाए । लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ।।[2]

पार्वती—तुलसी ने पार्वती के माता रूप का भी मात्र उल्लेख ही किया है, क्योकि उनकी 'पूज्य बुद्धि' तथा मर्यादा भावना को यह रुचिकर नही लगा कि इन पुराण-पुरुष शिव की पत्नी के लौकिक शृगार को चित्रित करे ।

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा । गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ।।

× × × ×

तब जनमेउ षटबदन कुमारा । तारकु असुरु समर जेहिं मारा ।।[3]

मदोदरी—रावण की विवेकशीला पटरानी मदोदरी के माता रूप का भी सक्षिप्त, किन्तु मर्मस्पर्शी चित्रण तुलसी ने किया है । मेघनाद के वध का समाचार सुनकर मदोदरी शोक मे डूब गई

सुत बध सुना दसानन जबही । मुरुछित भयउ परेउ महि तबही ।।
मदोदरी रुदन कर भारी । उर ताडन बहु भाँति पुकारी ।।[4]

व्यजना से मदोदरी की करुणाजनक शोकावस्था को कवि ने साकार किया है ।

गौण पात्र

मैना—सर्वथा अपरिचित तथा उपेक्षित नारी-पात्र 'मैना' के हृदय मे मातृत्व की सजीव झाँकी दिखाकर तुलसी ने अनूठी काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है । मैना हिम-कन्या पार्वती की माँ है । कन्या की माँ स्वय मे उत्तरदायित्वो का भडार होती है और अपना व्यक्तित्व कन्या मे ढालने का प्रयास करती रहती है । कन्या की माँ होना जीवन का करुण प्रसग है भारतीय समाज मे, क्योकि पाल-पोस

---

[1] रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ६ (क) ।

[2] वही, २५।६ ।

[3] वही, बालकाण्ड, १०३।५ तथा ७ ।

[4] लकाकाण्ड, ७७।६–७ ।

कर अपनी लाडली को ससुराल भेजने का कठिन दायित्व माँ की कोमल ममता को सदैव रुलाता है।

मैना अपनी कन्या पार्वती को अत्यन्त प्रेम करती है, अतः उसका अहित उसे असह्य है, अस्वीकार्य है

जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा ।।
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कत उमा मम प्रानपिआरी ।।[1]

मैना मे मातृत्व का सागर उमड रहा है। पति ने कन्या को समझा कर तपस्या करने जाने के लिए तत्पर कराने का दायित्व मैना को सौपा है। पत्नीत्व का सघर्ष मातृत्व से है और तुलसी दोनो को उच्चतम प्रतिष्ठा देते हैं

सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ।।
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी ।।
बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कठ न कछु कहि जाई ।।[2]

पार्वती की बरात आ गई है। मैना का दायित्व पूर्ण हो रहा है। वह पुलकित है और 'सुभ आरती सँवारी' मगल गीत गाती हुई 'परिछन चली हरहि हरषानी' शकर का रौद्र रूप देखकर मैना की भावुक ममता सहम गई और 'लीन्ही बोलि गिरीसुकुमारी'। पुत्री को वधू-रूप मे सजी देखकर माँ का मातृत्व कह उठा

जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड बरु बाउर कस कीन्हा ।।
कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुन्दरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई ।।
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं ।।[3]

किन्तु अज्ञता का पर्दा हटते ही 'मयना हिमवन्तु अनन्दे' और विवाह हो गया। कन्या को विदा करने लगी मैना, तो शिव से उसकी भावुक ममता ने कहा '

नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु ।।[4]

इस कथन मे भावना, विनय, विवेक की त्रिवेणी से निकलकर भारतीय माता का शाश्वत सामाजिक रूप मुखरित हो उठा है।

कन्या की माँ का कठिन दायित्व मैना ने निभाया, अपनी लाडली बिटिया को जीवन का तत्त्व बताते हुए रुँधे कठ से उसने विदा दी :

जननी उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछग सुन्दर सिख दीन्ही ।।
करेहु सदा सकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा ।।

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ७१।३–४।

[2] वही, ७२।५–७।

[3] वही, ९६।८ तथा छन्द।

[4] वही दोहा, १०१।

बचन कहत भरे लोचन बारी । बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ॥
कत बिधि सृजी नारि जग माही । पराधीन सपनेहुँ सुखु नाही ॥[1]

मैना के हृदय की करुणा सिमट आई है 'कत बिधि सृजी नारि' मे और ममता की अवशता 'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाही' से स्वत व्यजित हो गई है । वस्तुत मैना तुलसी की भावुकता की सहज परिचायिका है ।

सुनयना—जनक पत्नी सुनयना को सीता की माँ के रूप मे तुलसी ने धनुष-यज्ञ के मडप मे सादर प्रतिष्ठित किया है । राम की सुकुमारता देखकर सुनयना नारी-सुलभ जिज्ञासा से प्रेरित होकर सोच-विचार मे पडी हुई है

रावन बान छुआ नहिं चापा । हारे सकल भूप करि दापा ॥
सो धनु राजकुअँर कर देही । बाल मराल कि मदर लेही ॥[2]

जब राम ने धनुष तोड दिया और सीता का 'वरत्व' प्राप्त कर लिया, तो कन्यानुरूप वर पाकर सुनयना के हर्ष की सीमा न रही

जो सुखु भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु ।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु ॥[3]

कन्या को बिदा करना सुनयना के लिए भी कठिन परीक्षा की घडी है । राम से सीता के लिए सुनयना की भोली ममता क्या-क्या कहती है, दर्शनीय है

करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै ।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सबकी अहै ॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी ।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी ॥[4]

सीता को विदा करते हुए सुनयना की ममता भावनाभिभूत हो गई और तुलसी ने उसका सजीव चित्र अकित कर दिया

पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारी । बार-बार भेटहिं महतारी ॥[5]

उपर्युक्त मातृत्व-चित्रण से तुलसी का नारी के माता-रूप के प्रति श्रद्धा-भाव तथा मनोवैज्ञानिक ज्ञान प्रकट हो जाता हैं । इस चित्रण मे तुलसी का काव्यत्व तथा भारतीय सस्कृति के प्रति उनकी आस्था मुखरित हुई हैं ।

निष्कर्ष

स्वयभू एव तुलसी द्वारा नारी-पात्रो के माता-रूप मे चित्रण का तुलनात्मक अनुशीलन करने पर जो निष्कर्ष समग्र रूप से उभरता है, वह यह है कि तुलसी

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १०२।२–५ ।
[2] वही, २५६।३–४ ।
[3] वही, दोहा ३१८ ।
[4] वही, ३३६।छन्द ।
[5] वही, ३३७।६ ।

मातृत्व-चित्रण में जितने सिद्धहस्त तथा सफल हैं, स्वयभू उतनी सफलतापूर्वक मातृत्व-चित्रण नही कर सके । ऐसा प्रतीत होता है, जैसे स्वयभू माता के रूप की गरिमा तक बिल्कुल पहुँच ही नही सके, जबकि तुलसी ने कौशल्या, सुमित्रा, मैना तथा सुनयना के रूप में निश्छल, निष्कलुष तथा भावुक मातृत्व की प्राण-प्रतिष्ठा करने के साथ-ही-साथ कैकेई के विद्रोही मातृत्व को भी गरिमा-मण्डित किया है ।

मनोवैज्ञानिक तत्त्व की दृष्टि से स्वयभू ने नारी-पात्रो के मातृत्व को गभीरता से देखने का प्रयास नही किया, जबकि तुलसी की कौशल्या, कैकेई, मैना तथा सुनयना का मातृत्व मनोवैज्ञानिक आधार पर सपुष्ट तथा सफल है । स्वयभू की माताएँ 'मोह-ग्रस्ता' सी प्रतीत होती हैं,[1] किन्तु तुलसी की माताएँ 'धरम सनेहु उभयँ मति घेरी' के द्वन्द्व मे 'कर्त्तव्य' की विजय का प्रतीक बनती हैं । सुमित्रा के चरित्र मे हम 'पराहम्' सर्वोच्च स्तर पर नियत्रित करता पाते है और कौशल्या, मैना, सुनयना आदि मे 'पराहम्' की ओर उन्मुख 'आदर्श अहम्' है । केवल कैकेई मे 'इद' प्रधान हुआ, जिसकी परिणति 'पराहम्' मे 'ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा' हुई है । स्वयभू की सभी माताएँ सामान्यत 'इद' प्रधान व्यक्तित्व रखती हैं ।

सामाजिक तथा सास्कृतिक तत्त्व भी तुलसी मे मुखर है, 'जौ पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना', किन्तु स्वयभू मातृत्व की सामाजिक गरिमा का चित्रण कही नही करते । तुलसी ने 'राम-विवाह' तथा 'राज्याभिषेक' प्रसग मे कौशल्या, सुमित्रा की सास्कृतिक झाँकियाँ 'चौकें चारु सुमित्राँ पूरी' दी हैं और सीता तथा पार्वती विवाह मे सुनयना और मैना की सास्कृतिक झाँकियाँ भी प्रस्तुत की हैं, किन्तु स्वयभू इस दृष्टि से बहुत पीछे रह गए हैं ।

देश-काल का तत्त्व भी तुलसी मे मुखर है । 'बिबिध बिधान बाजने बाजे । मगल मुदित सुमित्राँ साजे ।। हरद दूब दधि पल्लव फूला । पान पूगफल मगल मूला' मे उत्तर भारत का मागलिक-पर्वों पर किया जाने वाला सपूर्ण क्रिया-कलाप साकार हो उठा है । मैना के कथन 'कत बिधि सृजी नारि जग माही । पराधीन सपनेहुँ सुखु नाही' मे इस देश का आचार-विचार ध्वनित हुआ है । स्वयभू मे इस दृष्टि का भी प्राय अभाव ही दीख पडता है । ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयभू ने मातृत्व को केवल स्थूल पुत्र-वियोग तक ही सीमित मान लिया है ।

पौराणिक तत्त्व भी तुलसी मे मुखर है, जिसके कारण एक ओर जहाँ कौशल्या तथा सुमित्रा का चरित्र राम तथा लक्ष्मण की जननी के रूप मे विवेक तथा सद्-वृत्तियो का प्रतीक बन गया है, वहाँ सीता तथा पार्वती के मातृत्व-चित्रण मे तुलसी ने विशेष रुचि नही ली है । स्वयभू का मातृत्व-चित्रण इस तत्त्व से सर्वथा अछूता ही है ।

कवि-दृष्टिकोण का तत्त्व वस्तुत दोनो कवियो के मातृत्व-चित्रण मे अन्तर का

---

[1] पउमचरिउ, २३।४।५–६ ।

सर्वोच्च कारण है। स्वयंभू माता रूप की गरिमा को उस रूप मे नहीं चित्रित कर पाए, जिस रूप में तुलसी ने किया है, क्योंकि स्वयंभू का दृष्टिकोण केवल कवि का रहा और तुलसी का दृष्टिकोण भक्त तथा कवि का साथ-साथ रहा है। कौशल्या 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' की जननी हैं, अत 'बदउँ कौसल्या दिसि प्राची' कहकर तुलसी उनका स्तवन करते हैं, सुमित्रा 'पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई' कहकर स्वयं भी पूज्या बन गईं और कैकेई को तो स्वयं राम ने कहा 'दोसु देहिं जननिहि जड तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई'। स्वयंभू इस दृष्टि को भला कैसे ला पाते ? इसी दृष्टि के अभाव ने उन्हे मातृत्व-चित्रण मे तुलसी से बहुत पीछे कर दिया है।

८

बहनें, सखियाँ एवं दासियाँ

नारीत्व के विभिन्न सोपान—कन्या, प्रेमिका, पत्नी तथा माता रूप वस्तुत नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व को सूचित करते हैं और नारी के व्यक्तित्व का बोध भी कराते हैं। कुछ गौण, किन्तु महत्त्वपूर्ण रूप ऐसे भी हैं, जो नारी परिवार की सदस्या होने के कारण प्राप्त करती है। इनमें भी स्थूलत कुछ रूप विवाह से पूर्व आरम्भ हो जाते है और विवाह के पश्चात् भी चलते रहते हैं, किन्तु कुछ रूप विवाह के बाद ही मिल पाते है। प्रथम श्रेणी मे आने वाले नारीत्व के रूप हैं बहन, सखी तथा दासी और द्वितीय श्रेणी मे आने वाले रूप है भाभी, सास आदि।

स्वयभूदेव बहनें, सखियाँ एव दासियाँ

प्रधान पात्र			गौण पात्र		
(बहन)	१	सीता	(बहन)	१ तिलककेशा	२ कौशकी
	२	चन्द्रनखा		३ श्रीप्रभा	४ कमलोत्सवा
			(सखी)	१ चित्रमाला	२ वसन्तमाला
				३ मिश्रकेशी	
			(दासी)	त्रिजटा	

प्रधान पात्र

सीता—जैन-राम-कथा मे सीता को भामण्डल की बहन के रूप मे चित्रित किया गया है। विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' मे जनक की पत्नी विदेहा से सीता तथा भामण्डल साथ-साथ उत्पन्न हुए थे

अह सा सुह पसूया, दुहिया पुत्त च तत्थ वइदेही।[1]

स्वयभू ने इस परम्परा को लेकर भाई-बहन के सम्बन्ध की पवित्रता दिखाने का लक्ष्य पूर्ण किया है। जैन-आगमो मे भाई-बहन का सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र माना

[1] पर्व, २६।७५।

गया है,[1] उसी का प्रकाशन इस प्रसग को लेकर कवि ने किया है। स्वयभू ने सीता को भामण्डल की सहोदरा कहा है

ताहँ विहि मि वर-विक्कम-वीयउ। भामण्डलु उप्पण्णु स-सीयउ ॥[2]

इस भामण्डल को दैत्य पिंगलदेव हरण करके ले गया और किसी उपवन मे छोड गया। वहाँ से इसे उठाकर किसी विद्याधर ने इसका पालन-पोषण किया।[3] एक दिन सीता के भवन मे नारद अचानक पहुँच गए, तो सीता उन्हे देख भयभीत हो गई, इसीलिए नारद को वहाँ से अपमानित करके निकाल दिया गया। क्रुद्ध नारद ने सीता का चित्र भामण्डल को 'भावी पत्नी' रूप मे वरण करने के निमित्त दिखाया।[4] सीता का असीम सौन्दर्य देखकर भामण्डल उस पर आसक्त हो गया और विरह की दशम अवस्था को पहुँच गया। अन्तत सीता के पिता जनक को बुलाया गया और भामण्डल से सीता के विवाह की बात होने लगी। जनक की सहमति न होने पर वज्रावर्त तथा समुद्रावर्त नामक धनुषो को तोडने की शर्त निश्चित हुई और परिणाम-स्वरूप राम का सीता से विवाह हो गया।[5]

सीता-वियोग मे दग्ध भामण्डल सीता के अपहरण के लिए सन्नद्ध हो गया

'भूमोयरि भुजमि मण्ड लेवि'। णीसरिउ स-साहणु सण्णहेवि ॥[6]

किन्तु अयोध्या नगरी की सीमा मे पहुँचते ही उसे पूर्व-जन्म का स्मरण हो गया और उसने मन मे कहा—जनक मेरे पिता, माँ वैदेही और सीता बहन हैं

जणउ जणेरु महु मायरि विदेह सस जाणइ ॥[7]

पूर्व-जन्म का स्मरण आते ही भामण्डल अपने धर्मपिता चन्द्रगति सहित राम-सीता-लक्ष्मण के प्रदेश मे गया और अपना अपराध स्वीकार करते हुए उसने क्षमा माँग ली।

जाणाविउ सीयहें भाइ जेम। जिह हरि-वल-साला सावलेव ॥[8]

अर्थात् 'उसने बताया कि वह सीता का भाई तथा राम का अपराधी साला है।'

इस प्रसग से बहन के प्रति भाई के शुचि स्नेह का प्रकाशन हुआ है। बहन कष्ट के समय रक्षार्थ भाई का स्मरण किया करती है, यह विशिष्ट भाव स्वयभू ने रावण द्वारा हरण करके ले जाती हुई सीता के द्वारा भामण्डल का नाम लिवाकर स्पष्ट किया है। सीता विलाप कर रही थी—'हा सहोदर भामण्डल, हा राम, हा लक्ष्मण! मै अभागिन किससे कहूँ . क्या करूँ ?'

---

[1] डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमों में नारी-जीवन, पृ० २४।
[2] पउमचरिउ, २१।५।४।
[3] वही, २१।५।८।
[4] वही, २१।८।९।
[5] वही, २१।१३।६।
[6] वही, २२।५।८।
[7] वही, २२।६।८।
[8] वही, २२।७।७।

...हा भामण्डल भाइ सहोयर ॥
. .को सुमरमि कहो॑ कहमि अ-लक्खण ॥[1]

सीता को नन्दन-वन मे ले जाकर रावण ने रक्खा। वहाँ विभीषण द्वारा उनसे परिचय पूछे जाने पर, सीता ने पहले भाई का नाम ही बताया—'मै भामण्डल की बहन, जनक की पुत्री, राम-पत्नी सीता हूँ।'

अह किं वहुएण लहुअ बहिणि भामण्डलहो॑।
हउँ सीयाएँवि जणयहो॑ सुअ गेहिणि वलहो॑ ॥[2]

इस प्रसग के द्वारा स्वयभू ने भाई-बहन के स्वाभाविक स्नेह-सम्बन्ध का सजीव चित्रण किया है।

चन्द्रनखा—रावण की अनुजा के रूप मे चन्द्रनखा का उल्लेख प्राय सर्वत्र हुआ है। 'पउमचरिय' मे भी रावण की बहन के रूप मे चन्द्रनखा का उल्लेख है।[3] उसका प्रथम परिचय रावण के महल मे होता है, जब मय तथा मारीच मन्दोदरी सहित वहाँ आते हैं।[4] बहन का अपहरण बहुत बड़ा अपमान स्वयभू ने माना है, अत रावण जब तनूदरा को विवाह करके लाया और चन्द्रनखा के अपहरण का समाचार उसने सुना, तो क्रोध से भर उठा

सुरमाणे केण वि वज्जरिउ। खर-दूसण-कण्णा-दुच्चरिउ ॥
अत्थक्कएँ आयम्बिर-णयणु। कुढे॑ लग्गइ स-रहसु दहवयणु ॥[5]

चरित्रहीना होने पर भी बहन भाई से रक्षा करने का दायित्व निर्वाह करने की आशा करती है। चन्द्रनखा रावण के पास गई और चरणो मे गिर कर बोली—शबूक मारा गया, खर-दूषण भी यमलोक चला गया। आपके जीते मेरी यह दशा ?

'सम्वुकुमारु मुउ खर-दूसण जम-पहे॑ लाइय।
पइँ जीवन्तएँण एही अवत्थ हउँ पाइय' ॥[6]

चन्द्रनखा के शब्द सुनकर रावण ने बहन के अपमान का बदला लेने का प्रण किया। इस प्रसग से भी स्वयभू ने बहन के प्रति भाई के दायित्व का बोध कराया है।

गौण पात्र

बहन रूप में

तिलककेशा—इस पात्र का उल्लेख सहस्राक्ष की बहन के रूप मे हुआ है

---

[1] पउमचरिउ, ३८।१५।७–८।
[2] वही, ४२।१।६।
[3] पद्म, ४४।
[4] पउमचरिउ, १०।१।५।
[5] वही, १२।४।१–२।
[6] वही, ४१।१।६।

धीय सुलोयणाहो॑ बलवन्तहो॑ । बहिणि सहोयरि वससयवेसहो॑ ।।[1]

कौशकी—इस नारी-पात्र का उल्लेख रावण-माता कैकसी की बडी बहन के रूप में स्वयभू ने किया है ।[2]

श्रीप्रभा—इस नारी-पात्र का उल्लेख स्वयभू ने सुग्रीव की बहन कहकर किया है

एतहे॑ सिरिप्पह भइणि तहो॑ । सुग्गीवे दिण्ण दसाणणहो॑ ।।[3]

कमलोत्सवा—सिद्धार्थपुर के राजा क्षेमकर की कन्या कमलोत्सवा का उल्लेख कुलभूषण तथा देशभूषण की बहन के रूप मे हुआ है । दोनो ही वासनाभिभूत होकर अपनी ही बहन पर आसक्त हो गए

कुलभूसण-देसविहूसणहुँ । णिय-वहिणि-रूव-पेसिय-मणहुँ ।।[4]

दोनो भाई अपनी बहन के रूप पर बुरी तरह आसक्त होकर विरहाग्नि से तप रहे थे । तभी वन्दीजनो से कमलोत्सवा को अपनी बहन सुनकर दोनो को ग्लानि हुई और साथ ही विरक्ति भी हो गई, जिसके परिणामस्वरूप दोनो तप करने चले गए ।

सखी रूप मे

चित्रमाला—नलकूबर राजा की असती पत्नी की सखी के रूप मे चित्रमाला का चित्रण स्वयभू ने किया है ।[5] यह उपरभा की सहायिका, दूती तथा कूटनीतिज्ञा के रूप मे चित्रित हुई है

त णिसुणे॑वि चित्तमाल चवइ । 'मइँ होन्तिए काइँ ण सभवइ ।।

आएसु देहि छुडु एत्तडउ । ऍउ सुन्दरि कारणु केत्तडउ ।।

तुह रूवहो॑ रावणु होइ जइ । लइ वट्टइ तो एत्तडिय गइ' ।।[6]

सखी के रूप मे स्वयभू ने इसे विश्वासपात्रा तथा कुशला नारी के रूप मे चित्रित किया है ।

बसन्तमाला—यह अजना की प्रिय तथा हितैषिणी सखी है, जो उसके कथन से स्पष्ट है—तुम्हारा जन्म सफल है, जो तुमने पवनजय सा सुन्दर पति पा लिया है ।

एत्थन्तरे॑ अट्ठमी-चन्द-भाल । मुहु जोएँवि चवइ वसन्तमाल ।।

'सहलउ तउ माणुस-जम्मु माएँ । भत्तारु पहजणु लद्धु जाएँ' ।।[7]

दु खिनी अजना के साथ कष्ट के समय बसन्तमाला सदैव रही । अजना के कारण

---

[1] पउमचरिउ, ५।४।७ ।

[2] वही, ९।६।१ । (पउमचरिय, पर्व, ७।५४ मे भी यही उल्लेख है ।)

[3] वही, १२।१२।१ । (पउमचरिय, पव, ९।४, २८, ५० मे भी यही उल्लेख है ।)

[4] वही, ३३।११।१ । (पउमचरिय, पव, ३९।६४ मे भी यही उल्लेख है ।)

[5] वही, १५।१२।१–३ ।

[6] पउमचरिउ' १५।१२।१–३ । (पउमचरिय, पर्व, १२।५५ मे भी यही उल्लेख है ।)

[7] वही, १८।७।१–२ ।

उसने प्रताड़ना और कष्ट भी सहन किए।[1] स्वयंभू ने वसन्तमाला के रूप में 'सखी-धर्म' की प्रतिनिधि नारी का चित्रण किया है।

मिश्रकेशी—यह भी अंजना की सखी है, किन्तु दुर्मुखा, दुष्टवेशा तथा ईर्ष्यालु है और इसी के कारण अजना को समस्त कष्ट भोगने पड़े। मात्र नामोल्लेख[2] ही स्वयभू ने इसका किया है।

दासी रूप मे

त्रिजटा—रावण के नन्दन-वन मे सीता की देख-रेख करने वाली प्रधान दासी त्रिजटा है। सीता जब राम की अँगूठी देखकर प्रसन्न हुई, तो त्रिजटा ने रावण से जाकर कहा—आपका जन्म सफल है, आज सीता आपको आलिंगन देगी।[3]

स्वयभू ने त्रिजटा को सीता की संगिनी, हितैषिणी दासी के रूप मे चित्रित किया है। सीता के सतीत्व की साक्षी भी स्वयभू ने त्रिजटा से दिला कर नवीन उद्-भावना की है।[4] सीता के प्रति इसमे अनन्य ममता दिखाई गई है।

तुलसीदास बहने, सखियाँ एव दासियाँ

प्रधान पात्र		गौण पात्र	
(बहन)	सीता	(बहन)	सूर्पनखा
(सखी एव दासी)	मथरा	(सखी एव दासी)	त्रिजटा

बहन रूप मे

सीता—तुलसी ने उर्मिला की अग्रजा के रूप मे सीता का नामोल्लेख मात्र ही किया है।

> जानकी लघु भगिनी सकल सुन्दरि सिरोमनि जानि कै।
> सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥[5]

सखी एवं दासी रूप में

मथरा—मथरा तुलसी द्वारा चित्रित विशिष्ट तथा अनुपम नारी-पात्र है, जिसमे उन्होंने 'असद्-वृत्ति' को पूर्णत केन्द्रित दिखाया है। परम्परा से मंथरा कैकेई की विश्वास-पात्रा, नि शक, चतुर तथा स्वामिभक्त दासी के रूप मे चित्रित हुई है।

---

[1] पउमचरिउ, १९।२।१, १९।४।३ तथा १९।७।१। (पउमचरिय, पर्व, १५।६५ में भी यही उल्लेख है।)

[2] वही, १८।७।३। (पउमचरियं, पर्व, १५।६७ मे भी यही उल्लेख है।)

[3] वही, ४९।१०।१–८।

[4] वही, ८३।४।१–९।

[5] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ३२५।छन्द ३।

तुलसी ने मथरा के चित्रण मे अपनी कुशल काव्य-कला का ऐसा उत्कर्ष दिखाया है कि मथरा एक अमर चरित्र बन गई है। मनोवैज्ञानिक तथा व्यजना-प्रचुर तर्क प्रणाली का समावेश करके कवि ने मथरा को अविस्मरणीय बना दिया है। दासियो मे जो सहज कुटिलता सस्कार रूप मे रहती है, वह मथरा मे कवि ने दिखाई है। वस्तुत तुलसी की मथरा 'असामान्य चरित्र' है। 'वाल्मीकिरामायण' मे उसके स्वरूप का निखार नही हुआ था, वह अभाव तुलसी ने पूरा कर दिया है।

तुलसी ने मथरा का प्रथम परिचय देते हुए उसकी मनोगत प्रवृत्ति सहज ही बता दी है

नामु मथरा मदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥[1]

'मदमति चेरी' मे उसका स्वभाव व्यजित हो रहा है और 'अजस पेटारी ताहि करि' से उसकी चारित्रिक अस्थिरता स्पष्ट होती है। अकारण ही ईर्ष्या करना मथरा का दासी-सुलभ गुण है, अत 'पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू' के उत्तर मे 'राम तिलकु सुनि भा उर दाहू'। मन की ईर्ष्या कुचक्र फैलाने लगी, 'होइ अकाजु कवनि बिधि राती' की उधेड-बुन मे लगी हुई कुटिल हृदया मथरा 'भरत मातु पहि गइ बिलखानी' और ऐसे उदास होकर बैठ गई, जैसे कोई महाभयकर, अनुचित तथा अनहोनी बात हो गई हो।[2]

स्वाभाविकत कैकेई ने हँसकर मथरा से उसके इस अनमनेपन का कारण पूछ लिया, तो मथरा की कुटिलता अभिनय करने लगी

ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥
× × × ×
तबहुँ न बोल चेरि बडि पापिनि। छाडइ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥[3]

मथरा के कुशल अभिनय का प्रभाव कैकेई पर हुआ और 'सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु' सुनकर मथरा की ईर्ष्या अनजाने ही और भडक उठी। व्यग्य-बाण के रूप मे शब्द फूट पडे मथरा के मुख से।

रामहि छाडि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू ॥
भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन ॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥[4]

मथरा के शब्द-शब्द से व्यग्य का विष झर रहा है, जो कैकेई की सरलता को विषाक्त कर रहा है। तभी भयकर विष-बाण मथरा ने कैकेई को मारा

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा १२।
[2] वही, १३।१–५।
[3] वही, १३।६ तथा ८।
[4] वही, १४।२–४।

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे । जानति हहु बस नाहु हमारें ॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥[1]

विलक्षण है मन्थरा का वाक्चातुर्य ! 'पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें' कहकर ममतामयी माँ के कोमल मातृत्व को बेध डाला है मथरा ने, तो 'जानति हहु बस नाहु हमारें' कहकर कैकेई के पत्नीत्व को 'धिक्कार भरी ललकार' दे डाली है । असभव था कि कैकेई मथरा के इस अभिनय को देखकर अविचल रह जाती ।

कैकेई का राज-दर्प कुछ उभरा और मंथरा को उसने कह दिया 'पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी' । अदृश्य शक्ति ने कितना मर्मस्पर्शी, सार्थक विशेषण कैकेई द्वारा मथरा को दिलाया है—'घरफोरी' । कैकेई का सरल मन पुन पूछ बैठा मथरा से 'हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ', तो मथरा के अभिनय का द्वितीय अध्याय आरम्भ हो गया, जिसमे वह सफल अभिनेत्री सिद्ध हुई । किस खूबी से अपनी सच्चाई का ढोल मथरा ने पीटा है और 'कोउ नृप होउ हमहि का हानी'[2] का व्यग्य-बाण विशेष प्रयोजन से छोडकर अपनी स्थिति को सरलता से रख दिया है ।

कैकेई अभिभूत हो गई मथरा के इस अभिनय से और 'सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि' । मथरा ने 'सपत्नी-डाह' उत्पन्न करा दिया कैकेई के मन मे और बना दिया उसके मातृत्व को विद्रोही

जौं सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥[3]

मथरा का यह व्यग्य-बाण कैकेई के मर्म को बेध गया और उसने मथरा को अपनी परम हितैषिणी जानकर 'दीन बचन कह बहुबिधि', तो कुटिल दासी ने त्रिया-चरित्र फैला दिया

अस कस कहहु मानि मन ऊना । सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना ॥
जेहिं राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका ॥
जब ते कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर नीद न जामिनि ॥[4]

कैसे अप्रभावित रहती कैकेई मथरा के इस वाक्-जाल से ? दासी उसके लिए इतनी अधिक हितैषिणी कि 'भूख न बासर नीद न जामिनि' ? आखिर मथरा ने अपना मर्मान्तिक बाण छोड ही दिया

पूंछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहिं यह साँची ॥
भामिनि करहु त कहौ उपाऊ । हैं तुम्हरीं सेवा बस राऊ ॥[5]

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, १४।५–६ ।
[2] वही, १६।६ ।
[3] वही, १६।८ ।
[4] वही, २१।४–६ ।
[5] वही, २१।७–८ ।

मथरा के मुख से 'भामिनि करहु त' सुनकर क्या सहज ही कैकेई ने नही कहा होगा—'परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि' ? और तब मथरा ने कैकेई को उपाय बता ही दिया :

भूपति राम सपथ जब करई । तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई ।।
होइ अकाजु आजु निसि बीते । बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें ।।[1]

मथरा की अकारण ईर्ष्या ने रघुकुल की सरल रानी कैकेई को युग-युग तक कलकिनी बना दिया था, अत कवि का न्याय उसे दण्ड क्योकर न देता ? शत्रुघ्न ने 'हुमगि लात तकि कूबर मारा' और मथरा की कुटिलता को न्याय की तुला पर रख कर तुलसी ने उसका 'अपराध' प्रमाणित कर दिया ।

तुलसी की मथरा अविस्मरणीय है, अनूठी है और 'असद्-वृत्ति' की वास्तविक प्रतिनिधि बन गई है । उसके चरित्र से शेक्सपीयर के 'ऑथेलो' के पात्र 'इयागो' का चरित्र बिल्कुल मिलता है ।[2]

गौण पात्र

बहन रूप मे

सूर्पनखा—तुलसी ने सूर्पनखा को रावण की बहन के रूप मे ही परिचित कराया है—'सूपनखा रावण कै बहिनी' । रावण को सूर्पनखा ने अपने अपमान का बोध कराकर ही राम से युद्ध करने को प्रवृत्त कराया

सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ ।
तोहि जिअत दसकधर मोरि कि असि गति होइ ।।[3]

सूर्पनखा ने ही रावण को उकसा कर सीताहरण कराया, जिसके फलस्वरूप रावण से राम का घोर सग्राम हुआ ।

सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के सग नारि एक स्यामा ।।
× × × ×
तासु अनुज काटे श्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ।।[4]

बहन का अपमान ही रावण के विनाश का कारण बन गया ।

सखी एव दासी रूप मे

त्रिजटा—तुलसी ने त्रिजटा के रूप मे ममतामयी नारी का चित्रण किया है । 'वाल्मीकिरामायण' के अनुसार त्रिजटा एक बूढी राक्षसी थी, जो सीता का दृढ़

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, २२।७–८ ।
[2] रामचन्द्र देव तुलसी और तुषन, पृ० १३४ ।
[3] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दोहा २१(ख) ।
[4] वही, २२।८ तथा १० ।

चरित्र देखकर उसकी ओर आकर्षित हुई थी और सहानुभूति से प्रेरित होकर इसने सीता को दो अवसरो पर हार्दिक सान्त्वना दी थी।[1]

तुलसी ने त्रिजटा मे ममत्व, विवेक तथा राम-भक्ति का समावेश करके उसे राम-कथा की महत्त्वपूर्ण नारी-पात्र बना दिया है। वे त्रिजटा का परिचय एक विवेकशीला तथा राम मे अनुरक्ता नारी के रूप मे देते हैं :

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका ।।
सबन्हौं बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना ।।[2]

त्रिजटा ने समस्त राक्षस-अनुचरियो को सीता की अनुगामिनी तथा हितैषिणी बना दिया है। तुलसी ने सीता के द्वारा त्रिजटा के प्रति सहज पूज्य-भाव की अभिव्यक्ति करा के उसके निर्मल चरित्र को मुखरित किया है। सीता ने कहा 'मातु बिपति सगिनि तैं मोरी' और याचना की 'तजौं देह करु बेगि उपाई' क्योकि 'दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई'। सरल-हृदया त्रिजटा की ममता श्रद्धा से मिलकर कह उठी

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि ।।
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी ।।[3]

सीता के प्रति सहज ममत्व तथा सहानुभूति ने त्रिजटा राक्षसी को रामानुरागियो की दृष्टि मे अत्यन्त श्रद्धास्पद बना दिया है। यह तुलसी की चरित्र-चित्रण की अनूठी प्रतिभा का ही विलक्षण चमत्कार है।

निष्कर्ष

स्वयभू एव तुलसी—दोनो ने ही अपने महाकाव्यो मे नारी-पात्रो के बहन, सखी एव दासी रूप को यथास्थिति चित्रित किया है। सामान्यत दोनो ने ही इन रूपो मे नारी-पात्रो का विशद चित्रण नही किया है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का गुण दोनो मे ही है, तथापि तुलसी कुछ बढ गए है, जो मथरा के चरित्र-चित्रण से सर्वथा प्रमाणित हो जाता है। मथरा मनोवैज्ञानिक चित्रण की कसौटी पर पूर्णत खरी उतरती है और तुलसी की काव्य-कला का अनुपम परिचय देती है। त्रिजटा के चरित्र-चित्रण मे भी यही तथ्य उल्लेखनीय है और वहाँ भी स्वयभू मनोविश्लेषण के अभाव के कारण ही तुलसी से पीछे रह गए हैं और तुलसी की त्रिजटा जनमानस की प्रिय पात्रा बन गई है।

सामाजिक तत्त्व का समावेश स्वयभू ने कुशलतापूर्वक अपने पात्रो मे किया है, जो 'सीता-भामण्डल-प्रसग' तथा 'अजना-वसन्तमाला-प्रसग' से पूर्णत सपुष्ट हो जाता है। समाज मे भाई तथा बहन के सबध की पवित्रता को स्वयभू ने अत्यन्त महत्त्व

---

[1] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ५०९।

[2] रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, ११।१–२।

[3] वही, १२।५–६।

देकर चित्रित किया है, जो उनकी मौलिकता का परिचय देता है। तुलसी को इस क्षेत्र मे सभवत अधिक अवकाश ही नही मिल पाया है। 'बहन' के पारिवारिक महत्त्व को स्वयभू ने मौलिक उद्भावना के रूप मे चित्रित करके निश्चय ही अपनी सामाजिक-सास्कृतिक चेतना का परिचय दिया है।

नारी-पात्रो के इन रूपो का चित्रण करते हुए देश-काल का तत्त्व दोनो ही कवियो मे मुखर नही हो पाया, क्योकि नारी-पात्रो के उक्त रूप प्राय समाज मे गौण ही समझे जाते रहे हैं। फिर भी, जैनागमो मे बहन का जो सम्मानयुत स्थान माना गया है, उसे स्वयभू ने कुशलतापूर्वक चित्रित करके अपने युग की ओर सटीक सकेत किया है।

अपने काव्यो मे नारी-पात्रो का चित्रण करते हुए दोनो ही कवियो ने पौराणिकता का समावेश नही किया, क्योकि स्वयभू तो जैन-मतानुयायी हैं ही और तुलसी को विशेष अवकाश यहाँ मिल नही पाया। फिर भी त्रिजटा के चरित्र मे 'राम चरन रति निपुन बिबेका' का समावेश करके तुलसी ने अशत इस नारी-चरित्र को भक्ति का आदर्श बनाने का सफल उपक्रम किया है।

कवि-दृष्टिकोण की भिन्नता यहाँ भी दोनो कवियो के नारी-चित्रण को देखकर अनुभव की जा सकती है। स्वयंभू का चित्रण प्राय यथार्थोन्मुख (भामण्डल की सीता मे आसक्ति, कुलभूषण तथा देशभूषण नामक भाइयो की अपनी बहन मे आसक्ति दिखाना) है, किन्तु तुलसी का चित्रण यहाँ भी मर्यादा तथा आदर्श से मण्डित रहा है। त्रिजटा मे तुलसी ने 'सद्-वृत्ति' तथा मथरा मे 'असद्-वृत्ति' का चित्रण करके असद् की भर्त्सना करने का अवसर निकाल ही लिया है। यही तुलसी की मौलिकता है।

६

भाभी, सास तथा अन्य नारी-पात्र

विवाहोपरान्त नारी अपने पति के भाई तथा बहन की भाभी बनती है और पुत्र की पत्नी की सास का रूप ग्रहण करती है। भाभी तथा सास, नारी के गौण तथापि महत्त्वपूर्ण सोपान पारिवारिक जीवन मे रहे हैं। भारतीय-सस्कृति मे भाभी को सम्मानपूर्ण स्थान दिया गया है। परिवार मे बड़े भाई की पत्नी को 'माता समान' ही मानने के उल्लेख यत्र-तत्र हम पाते हैं। सास भी वधू की माँ के समान ही मानी जाती रही है। समाज मे परिवर्तन के साथ-साथ नारी की स्थिति मे परिवर्तन आने से यदा-कदा इन रूपो मे भी परिवर्तन आ जाता है, तथापि भाभी तथा सास के रूप मे नारी सर्वदा परिवार मे महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए रही है।

स्वयभूदेव भाभी, सास तथा अन्य नारी-पात्र

	प्रधान पात्र	गौण पात्र
(भाभी)	१ सीता	
	२ मन्दोदरी	
(सास)	१ कौशल्या (अपराजिता)	(सास) केतुमती
	२ सुमित्रा	
	३ सुप्रभा	

प्रधान पात्र

भाभी रूप मे

सीता—राम दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र हैं, अत राम-पत्नी के नाते सीता लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न की भाभी हैं। स्वयभू ने सीता के प्रति लक्ष्मण के हृदय मे आदर-भाव तथा पूज्य बुद्धि का चित्रण करके भाभी तथा देवर के आदर्श पारि-

वारिक सबंध की ओर सकेत किया है।

राम-सीता-लक्ष्मण वन मे जा रहे हैं और सीता को प्यास लग गई है, तो स्वयभू राम से लक्ष्मण को सीता के लिए जल लाने का आदेश दिलाते हैं

लक्खण कहि मि गवेसहि त जलु सज्जण-हियउ जेम ज णिम्मलु ॥
दूरागमणें सीय तिसाइय हिम-हय-णव-णलिणि व विच्छाइय ॥[1]

लक्ष्मण भाभी सीता के लिए तुरन्त जल लेने जाते है। एक अन्य स्थान पर स्वयंभू ने लक्ष्मण द्वारा सीता की रक्षा का आग्रह राम से कराया है, जिससे सीता के भाभी रूप की गरिमा बढी है। खर-दूषण की राक्षस सेना से युद्ध करने जाते हुए लक्ष्मण ने राम से कहा—'देव! आप सीता की प्रयत्नपूर्वक रक्षा कीजिए।'

एत्थन्तरें भड-कडमद्दणेण जोक्कारिउ रामु जणद्दणेण ॥
तुहुँ सीय पयत्तें रक्खु देव हउँ धरेमि सेण्णु मिग-जूहु जेम ॥[2]

स्वयंभू ने अत्यन्त मौलिक उद्भावना करके लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सीता को पहुँचाया है और सीता को लक्ष्मण-शोक मे अकुलाई हुई चित्रित करके भाभी रूप की सुन्दर और सजीव व्यजना कराई है। सीता को किसी दासी ने बताया—'रावण की शक्ति से आहत लक्ष्मण अब शायद ही जीवित बच सके और पराभव के अपमान से सभवत राम भी मृत्यु का वरण कर ले।'

रावण-सत्तिएँ विणिभिण्णउ दुक्करु जिअइ कुमारु रणें।
परिहव-अहिमाण विहूणउ लइ रामु वि मुअउ ज्जें गणें ॥[3]

यह सुनते ही सीता मूर्छित होकर गिर पडी और चेतना आते ही रुदन करते हुए सीता ने कहा—'हे दुष्ट, अभागे भाग्य! लक्ष्मण का अन्त हो गया और रावण जीवित है? तुम्हारा हृदय क्यो नही फट जाता?'

त णिसुणेंवि वइदेहि पमुच्छिय हरियन्दणेंण सित्त उम्मुच्छिय ॥
चेयण लहेंवि रुवन्ति समुट्ठिय हा खल खुद्द पिसुण विहि दुत्थिय ॥
लक्खणु मरइ दसाणणु छुट्टइ हियउ केम तउ उद्ध ण फुट्टइ ॥[4]

अन्त मे रावण पर विजय प्राप्त करके लक्ष्मण ने सीता का सम्मान करते हुए कहा—'देवि! यह सब आपके प्रसाद से ही हुआ। आपने अपने शील से सचमुच कुल को पवित्र कर दिया है।'

ज रणें उप्पण्णु चक्क-रयणु ज णिहउ वलुद्धरु दहवयणु ॥
त देवि पसाए तउ तणेंण कुलु धवलिउ जाएँ सइत्तणेंण ॥[5]

[1] पउमचरिउ, २६।६।३–४।
[2] वही, ३७।१३।१–२।
[3] वही, ६७।६।८।
[4] वही, ६७।७।१–३।
[5] वही, ७८।८।४–५।

निश्चय ही स्वयंभू ने सीता के 'भाभी' रूप की गरिमा को उच्च बना दिया है।

मंदोदरी—रावण-पत्नी मन्दोदरी को बिभीषण द्वारा स्वयभू ने सर्वोच्च सम्मान दिलाकर भाभी के गौरव की ओर सकेत किया है।

ताव विहीसण-णामे किय-दूरहों जि पणामे।
लायण्णम्भ-महासरि धीरिय लक-पुरेसरि॥
बाल-मराल-लील-गइ-गामिणि अज्ज वि रज्जु तुहारउ सामिणि॥
× × × ×
सा तुहुँ सा जें लक परमेसरि इन्दइ भुजउ सयल वसुन्धरि॥[1]

अर्थात् 'हे बाल-हस-गति वाली! आज भी आप राज्य की स्वामिनी हैं। लका-स्वामिनी प्रसन्नतापूर्वक वसुन्धरा का भोग करो।'

विभीषण के उक्त आदरयुक्त कथन मे भाभी के प्रति उच्च-भाव निहित है। स्वयभू ने अत्यन्त सक्षेप मे यह मौलिक उद्भावना करके अपने कवित्व तथा सामाजिक-जागरूकता का परिचय दिया है।

सास रूप मे

कौशल्या (अपराजिता)—स्वयभू ने सास के रूप मे राम-जननी का उल्लेख बहुत कम किया है। अग्नि-परीक्षा-प्रसग मे सक्षिप्त-सा सकेत इस ओर हुआ है, जब सीता-परित्याग पर और सीता के अग्नि-प्रवेश पर अपराजिता शोकाकुल हो उठी।

खड-लक्कड-विच्छड्ड-पलित्तएँ धाहाविउ कोसलएँ सुमित्तएँ॥[2]

अर्थात् सूखी लकडियो के जलते ही कौशल्या, सुमित्रा दहाड मार कर रो पडी।

सुमित्रा—सुमित्रा को भी सीता-परित्याग[3] तथा सीता-अग्नि-प्रवेश के समय शोकाकुल चित्रित किया गया है।[4]

सुप्रभा—सीता-परित्याग की सूचना पाकर सुप्रभा के रुदन का उल्लेख हुआ है

सुप्पहाएँ सोआउर-चित्तएँ॥[5]

गौण पात्र

सास रूप मे

केतुमती—आदित्यपुर के राजा प्रह्लादराज की पत्नी केतुमती को क्रूर-हृदया सास के रूप मे स्वयभू ने चित्रित किया है। 'पउमचरिय' मे केतुमती द्वारा

---

[1] पउमचरिउ, ७७। १६।१–२ तथा ७।
[2] वही, ८३।१२।१।
[3] वही, ८१।८।७।
[4] वही, ८३।१२।१।
[5] वही, ८१।८।७।

दुर्वचन कहकर अजना को निर्वासित करने का उल्लेख आया है,[1] किन्तु स्वयभू ने इस नारी-पात्र के माध्यम से सास-बहू के झगडे का सामाजिक स्वरूप चित्रित किया है।

उपेक्षिता अजना के प्रति सहसा आसक्त उसका पति युद्ध से ही चुपचाप आकर उससे सभोग-रत हुआ,[2] परिणामत अजना गर्भवती हो गई। सास केतुमती ने गर्भवती देखकर, बिना वास्तविकता जाने हुए ही, अजना को कलकिनी कह दिया और अनेक कटु वचन कह दिए।

'एउ काइँ कम्मु पइँ आयरिउ। णिम्मलु महिन्द-कुलु धूसरिउ ॥
दुव्वार-वइरि-विणिवाराहों। मुहु मइलिउ सुअहों महाराहो' ॥[3]

अर्थात् तूने यह कौन-सा पाप किया ? मेरे पवित्र महेन्द्र कुल को कलकित कर दिया। दुर्वार-शत्रुओ का सहार करने वाले मेरे पुत्र का मुख काला कर दिया ?

अजना की सखी ने जब केतुमति को वास्तविकता बताई, तो उसने दोनो को क्रूरता से पीटा।[4] इतना ही नही, जो कटु-वचन केतुमती ने अजना को कहे, वे उसके मन मे पुत्र-वधू के प्रति ईर्ष्या तथा घृणा की व्यजना कराते हैं

'किं जारहों णाहिं सुवण्णु घरें। जें कडउ घडावें वि छुहइ करें ॥
अण्णु वि एत्तिउ सोहग्गु कउ। जे ककणु देइ कुमारु तउ' ॥[5]

अर्थात् 'क्या यार के घर मे सोना नही होता ? उसी ने कडे गढवाकर हाथो मे पहना दिए और सिखा दिया कि कह देना कुमार ने कडे दिए है।'

क्रूर साम ने गर्भवती अजना को अपमानपूर्वक घर से दूर वन मे निष्कामित कर दिया। इसी प्रसग मे, अजना के पिता द्वारा उसकी भर्त्सना किए जाने पर राज-मत्री आनन्द द्वारा स्वयभू ने सास-वधू सबध पर प्रकाश कराया है

वभणइ आणन्दु मन्ति सुचवि। अपरिक्खिउ किज्जइ कज्ज ण वि ॥
सासुअउ होन्ति विरुआरिउ। महसइहें वि अवगुण-गारियउ ॥
सुकइ-कहहों जिह खल-मइउ हिम-वद्दलियउ कमलिणिहिँ जिह।
होन्ति सहावे वइरिणिउ णिय सुण्हहुँ खल-सासुअउ तिह ॥[6]

अर्थात् हे राजन ! बिना परीक्षा किए कुछ नही करना चाहिए। सासे बहुत बुरी होती हैं, वे महासती को भी दोष लगा देती है। अपनी बहुओ के लिए सासें उसी

---

[1] पद्म, १७।४–७।

[2] पउमचरिउ, १८।१२।६।

[3] वही, १६।१।७–८।

[4] सास-ससुर से बिना पूछे किया गया अच्छा कार्य भी वधू का गुरुतम अपराध माना जाता था और उसके दण्डस्वरूप वधू को अपने प्राण भी खोने पडते थे।

—डॉ० कोमलचन्द्र जैन बौद्ध और जैन आगमो में नारी-जीवन, पृ० ७८

[5] पउमचरिउ, १६।२।२–३।

[6] वही, १६।४।७–६।

प्रकार शत्रु होती हैं, जैसे सुकवि की कथा के लिए दुर्जन-बुद्धि तथा कमलिनी के लिए हिम-मेघ होता है।

निश्चिततः स्वयंभू की केतुमती सास के रूप मे विशिष्ट नारी-चरित्र है, जो कवि की विशिष्ट उपलब्धि ही कही जाएगी।

तुलसीदास भाभी, सास तथा अन्य नारी-पात्र

प्रधान पात्र			गौण पात्र	
(भाभी)		सीता	(भाभी)	तारा
(सास)	१	कौशल्या		
	२	कैकेई	(भक्तिन)	शबरी
	३	सुमित्रा		

प्रधान पात्र

भाभी रूप मे

सीता—तुलसी ने राम-पत्नी सीता को लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न की भाभी के रूप मे सर्वत्र सम्मानिता दिखाया है, जो उनकी मर्यादित दृष्टि का परिचायक है। तुलसी ने लक्ष्मण को सुमित्रा द्वारा दिए गए उपदेश मे सीता को मातृवत् कहकर उनके भाभी रूप को सम्मानित कराया है

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥[1]

सीता लक्ष्मण के प्रति अनन्य स्नेह का भाव हृदय मे रखती हैं, जो सुमन्त्र को कहे गए उनके सदेश से ध्वनित हो रहा है

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा ॥[2]

ग्राम-वधुओ द्वारा सीता से जब राम-लक्ष्मण का परिचय पूछा गया, तो सीता ने लक्ष्मण का परिचय जिस सौम्य-मृदु भाव से दिया, वह उनके लक्ष्मण के प्रति स्नेह का परिचायक है

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥[3]

तुलसी ने अत्यन्त मर्यादित चित्र अकित किया है, बनमार्ग मे चलते हुए राम-सीता-लक्ष्मण का 'आगें रामु लखनु बने पाछें'। बन मे देवर-भाभी के सहज सहयोगी रूप को कवि ने सूक्ष्म सकेत करके 'तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए' स्पष्ट किया है।

पति-अहित की तीव्रतम आशका के आवेग मे सीता ने 'प्रिय देवर' के लिए 'मरम बचन जब सीता बोला' था, किन्तु सीता को उसकी ग्लानि बनी रही और

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ७४।२।

[2] वही, ६६।१।

[3] वही, ११७।५।

उन्होने स्पष्ट कहा :

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा । सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा ।।[1]

इस प्रकार तुलसी ने देवर-भाभी के सम्बन्ध की गम्भीरता एव पवित्रता का निर्वाह कुशलतापूर्वक कराया है ।

मर्मान्तक वियोग-व्यथा के क्षणो मे जब हनुमान् सीता के पास अशोक-वन मे पहुँचे, तो सीता 'देवर' को भूल नही सकी थी । उन्होंने कहा था

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी । अनुज सहित सुख भवन खरारी ।।[2]

तुलसी ने सीता के मन मे लक्ष्मण के प्रति अथाह विश्वास दिखाया है । अपने सतीत्व की परीक्षा के लिए सीता ने लक्ष्मण को ही साक्षी बनाया और कहा .

लछिमन होहु धरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ।।[3]

भरत तथा शत्रुघ्न द्वारा भी सीता को उच्चतम सम्मान दिलाकर तुलसी ने भाभी के रूप को गरिमा-मण्डित किया है

सीता चरन भरत सिरु नावा । अनुज समेत परम सुख पावा ।।[4]

निस्सदेह तुलसी ने सीता को भाभी के रूप मे कुशलतापूर्वक चित्रित किया है । वाल्मीकि तो सीता को 'राम-मारीच-प्रसग' मे गिरा गए और लक्ष्मण के द्वारा नारियो की भर्त्सना कराने का अवसर भी आदिकवि ने ढूँढ लिया,[5] किन्तु मर्यादावादी तुलसी ने सीता की गरिमा कही भी गिरने नही दी । यही मौलिकता तुलसी का शाश्वत श्रृगार है ।

सास रूप मे

कौशल्या—राम-जननी कौशल्या को तुलसी ने आदर्श स्नेहमयी तथा ममतामयी सास के रूप मे चित्रित किया है ।

राम वन जाने की आज्ञा लेने कौशल्या के पास आए, तो सीता भी 'जाइ सासु पद कमल जुग बदि बैठि सिरु नाइ' । सीता के प्रति कौशल्या की ममता जाग उठी, 'अति सुकुमारि देखि अकुलानी' । कौशल्या ने सीता को 'नयन पुतरि करि प्रीति बढाई' की स्थिति मे रक्खा । कौशल्या का ममत्व दुविधा मे है

जिअनमूरि जिमि जोगवत रहउँ । दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ।।
सोइ सिय चलन चहति बन साथा । आयसु कहा होइ रघुनाथा ।।[6]

कौशल्या ने अपने मन की बात सहज भाव से, आदेश देकर अथवा प्रताडना के रूप

---

[1] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, २९।३ ।
[2] सुन्दरकाण्ड, १४।३ ।
[3] लकाकाण्ड, १०९।२ ।
[4] उत्तरकाण्ड, ६।२ ।
[5] वाक्यमपति रूप तु न चित्र स्त्रीषु मैथिलि । स्वभावस्त्वेषु नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ।।
—वाल्मीकिरामायण
[6] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ५९।६–७ ।

में नहीं, कह दी :

जौं सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥[1]

सीता के पातिव्रत्य से प्रभावित कौशल्या ने अपने स्वार्थ के लिए वधू को रोका नहीं, अपितु राम के साथ वन मे जाने दिया । सास के रूप मे कौशल्या का सजीव चित्रण तुलसी की प्रतिभा का परिचायक बन गया है

सुनि सिय बचन सासु अकुलानी । दसा कवनि बिधि कहौं बखानी ॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा । जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥[2]

तुलसी का प्रत्येक शब्द कौशल्या को आदर्श 'सास' के रूप मे सर्वोच्च सम्मान दे रहा है । कौशल्या का यह रूप तुलसी की मौलिक उद्भावना है । आदिकवि वाल्मीकि ने यहाँ भी सीता को आशीष दिलाते समय कौशल्या के माध्यम से असती नारी की घोर निन्दा का अवसर निकाला है

असत्यशीला विकृता दुर्गा अहृदया सदा ।
असत्य पापसकल्पा क्षणमात्र विरागिण ॥

तुलसी ने यह सब मानो प्रयत्नपूर्वक छोड दिया है और कौशल्या के चरित्र को अत्यन्त स्वाभाविक तथा उदात्त बना दिया है ।

कैकेई—सीता के प्रति कैकेई के मन का सहज स्नेह तुलसी ने मथरा को कहे गए उसके शब्दो से ध्वनित कराया है

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥[3]

जन्म-जन्म मे जो कैकेई राम-सा पुत्र और सीता-सी पुत्रवधू पाना चाहती है, उसका सास रूप ऊँचा ही कहा जाएगा, यद्यपि तुलसी ने इस रूप मे कैकेई को प्राय कम ही चित्रित किया है ।

सुमित्रा—सुमित्रा के मन मे सीता के प्रति विश्वास तथा स्नेह का भाव एक साथ तुलसी ने व्यजित कराया है

तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ॥[4]

पुत्र को अग्रज-वधू के प्रति मातृत्व-भाव की प्रेरणा देने वाली आदर्श माँ के साथ-साथ सुमित्रा को तुलसी ने आदर्श सास भी बना दिया है ।

गौण पात्र

भाभी रूप में

तारा—तुलसी ने तारा का चरित्र विशेष रूप से प्रस्तुत किया है । वह

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, ६०।७ ।
[2] वही, ६६।६–८ ।
[3] वही, १५।७ ।
[4] वही, ७४।२ ।

सुग्रीव की पत्नी है, किन्तु अपने पति के अग्रज बाली द्वारा बलात् हरण कर ली गई है और, अवश्य ही अवश होकर, बाली के साथ पत्नीवत् रह रही है। राम ने बाली को मारा, तो बाली ने प्रश्न किया राम से—'अवगुन कवन नाथ मोहि मारा'। इसके उत्तर मे तुलसी ने 'छोटी भाभी' (अनुज वधू) के पारिवारिक महत्त्व तथा मर्यादा का चित्रण करके सर्वथा नवीन उद्भावना की है

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥[1]

तारा के प्रति तुलसी का यह दृष्टिकोण वस्तुत उनकी समाज के प्रति उदात्त तथा मर्यादित दृष्टि का ही परिचायक है। तारा तुलसी की विशिष्ट सर्जना है।

भक्तिन

शबरी—तुलसी के नारी-पात्रो मे शबरी सर्वथा विशिष्ट पात्र बन गई है, जो कवि के 'भक्त-हृदय' का प्रतिनिधित्व करती है।

वाल्मीकीय-कथावस्तु से शबरी असबद्ध है, महाभारत के 'रामोपाख्यान' मे भी शबरी का उल्लेख नही हुआ। परवर्ती राम-साहित्य मे शबरी की कथा उत्तरोत्तर विकसित होती गई। 'अध्यात्मरामायण' मे शबरी राम-भक्ता के रूप मे चित्रित हुई है।[2]

शबरी को तुलसी ने अनन्य रामानुरागी भक्तिन का स्वरूप दिया है और उसमे 'दैन्य' का भाव प्रदर्शित करके भक्ति का परिपाक कराया है। ज्यो ही शबरी ने देखा कि राम ने 'सबरी के आश्रम पगु धारा', त्यो ही शबरी विभोर हो गई

स्याम गौर सुदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुदर आसन बैठारे॥[3]

'सबरी परी चरन लपटाई', 'प्रेम मगन मुख बचन न आवा' तथा 'सादर जल लै चरन पखारे' से तुलसी ने शबरी के हृदय मे बैठी हुई भावुक राम-भक्तिन को जैसे साकार कर दिया है। तभी तो राम ने उसके दिए कद-मूल-फल 'प्रेम सहित प्रभु खाए बारबार बखानि'। भाव-मग्ना शबरी के मन मे दैन्य-भाव का अथाह सिधु उमड रहा था। तुलसी का रस-सिद्ध मन सजीव चित्राकन करता है

पानि जोरि आगें भइ ठाढी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढी॥
केहि बिधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मैं जडमति भारी॥
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमद अघारी॥[4]

---

[1] रामचरितमानस काण्ड, ९।७–८।
[2] डॉ० कामिल बुल्के रामकथा, पृ० ४३४ तथा ४३६।
[3] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, ३४।८–१०।
[4] वही, ३५।१–३।

यदि हृदयहीन, दुराग्रही आलोचक शबरी के इस दैन्य-प्रदर्शन को तुलसी की 'नारी-निन्दा' मान ले, तो दोष तुलसी का नही, अपितु आलोचक की अज्ञता का ही है। आराध्य और आराधक मे तो सिन्धु-बिन्दु का भाव सहज, स्वत ही आ जाता है। तुलसी का भक्त-हृदय 'राम सो बडो है कौन, मो सो कौन छोटो' की दीनता स्वीकार करके ही परम-पद प्राप्त करना सहज मानता रहा है।

सरलमना शबरी राम-सुग्रीव मैत्री की सूत्रधार बनकर परम-पद को प्राप्त करके राम की अचल भक्ति का वरदान भी पा गई

जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥[1]

तुलसी पर जातिवाद तथा हरिजन-विरोध जैसे निम्नतम आरोप लगाने वालो के लिए 'शबरी-मुक्ति' का यह प्रसग निश्चय ही करारी चुनौती है।

निष्कर्ष

स्वयभू तथा तुलसी ने उपर्युक्त रूपो का चित्रण यथास्थिति किया है अपने नारी-चरित्रो को स्पष्ट व्यक्तित्व देने के उद्देश्य से, तथापि स्वयभू ने विशेष रुचि इन रूपो के चित्रण मे नही ली है, जबकि तुलसी ने नारी के इन रूपो का सक्षिप्त चित्रण करके भी अपनी रुचि का सकेत अवश्य कर दिया है। सीता का भाभी रूप मे तथा कौशल्या का सास रूप मे आदर्श चित्रण तुलसी के द्वारा लिए गए नारी के इन रूपो के सामाजिक महत्त्व को स्वीकार किए जाने की सूचना भी है।

सामाजिक तत्त्व दोनो ही कवियो के नारी-पात्रो के उपर्युक्त रूपो के चित्रण मे यथास्थान मुखर हुआ है, किन्तु तुलसी ने इस दृष्टि से प्रमुखता प्राप्त कर ली है। कौशल्या अपनी पुत्रवधू सीता को 'नयन पुतरि' बनाकर रखती हैं और 'अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गग जमुन जल धारा' कहकर सीता के प्रति अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करती हैं। स्वयभू की केतुमती उनके युग की यथार्थ प्रतिध्वनि तो हो सकती है, किन्तु सामाजिक गरिमा उसमे नही आ सकी है। तुलसी ने तारा के माध्यम से 'अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी' कहकर नारी के सामाजिक तथा सास्कृतिक महत्त्व को सुस्पष्ट कर दिया है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का तत्त्व भी नारी के उक्त रूपो का चित्रण करने मे तुलसी ने कुशलतापूर्वक अपनाया है, किन्तु स्वयभू ने उतनी रुचि इस ओर नही दिखाई। सीता ने 'मरम बचन बोला' था, अत प्रायश्चित के रूप मे उन्होने कह भी दिया 'हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा'। कौशल्या की सीता को राम के साथ वन भेजते समय क्या मानसिक स्थिति रही होगी, उसे तुलसी ने 'सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी' कहकर

---

[1] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दोहा ३६।

अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढग से मुखर कर दिया है। स्वयभू ने इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की शैली को बहुत कम ही अपनाया है, इसीलिए उनके नारी-पात्रों मे उतनी प्रभावोत्पादकता नही आ पाई, जितनी तुलसी के पात्रो मे आ गई है।

देश-काल का तत्त्व स्वयंभू की केतुमती[1] मे मुखर हुआ है, तो तुलसी की तारा और शबरी मे भी समान रूप से ध्वनित हुआ है। सास-बहू के संघर्ष का संकेत[2] स्वयभू की देशकालगत जागरूकता का सम्यक् परिचायक है और तारा, शबरी का उद्धार तुलसी के युग मे नारी की दीनावस्था तथा उसको सुधारने की ओर सकेत करता है।

पौराणिक दृष्टि नारी-पात्रो के इन रूपो का चित्रण करने मे प्राय अनपेक्षित ही रही है, अत उसका अभाव सहज स्वाभाविक है।

कवि-दृष्टिकोण का अन्तर दोनो कवियो मे सहज ही देखा जा सकता है। स्वयभू यथार्थवादी दृष्टि के समर्थक हैं, जो केतुमती के चित्रण से सपुष्ट होता है, किन्तु तुलसी सर्वत्र मर्यादित-आदर्शवादी दृष्टि का समावेश कराते है, जो सीता के भाभी रूप से, कौशल्या के सास रूप से तथा तारा-शबरी के रूपो से सहज ही सम्पुष्ट हो जाता है। यही कारण है कि स्वयभू के उक्त रूपो मे किए गए नारी-चित्रण मे उतना औदात्य नही आ सका, जितना तुलसी के चित्रण मे आ गया है।

---

[1] पउमचरिउ, १९वी सधि।

[2] वही, १९।४।७–९।

१०

दैवी एवं आसुरी नारी-पात्र

रामकथा पौराणिक आख्यान है, अत इसके कुछ पात्रो मे—नारी तथा पुरुष पात्र दोनो मे ही दैवी रूप की तथा कुछ मे आसुरी रूप की व्यजना स्वाभाविक रूप से हुई है। राम के पक्ष को परम्परागत रूप से 'सद्-वृत्ति प्रधान' तथा रावण के पक्ष को 'असद्-वृत्ति प्रधान' माना जाता रहा है, अत इनमे देवत्व अथवा असुरत्व की क्रमश अभिव्यक्ति कवि ने कराई है। स्वाभाविक रूप से इन पात्रो के चित्रण मे कवि का धार्मिक अथवा पौराणिक मत ध्वनित होता है।

स्वयभूदेव दैवी एव आसुरी नारी-पात्र

प्रधान पात्र	गौण पात्र
(दैवी) सीता	(दैवी) १ मरुदेवी २ इन्द्राणी
	३ नन्दा-सुनन्दा ४ नीलाजना
	५ सरस्वती

प्रधान पात्र

सीता—स्वयंभू ने रामकथा की जो परम्परा ग्रहण की, वह हिन्दू-परम्परा न होकर, प्राकृत के कवि विमलसूरि की जैन-कथा-परम्परा है, अत उन्होने उन पात्रो को सामान्य मानवी-पात्र माना है, जिनमे हिन्दू-परम्परा ने दैवी-तत्त्व की प्रतिष्ठा की थी। सीता मे दैवी-तत्त्व को स्वयभू ने बचाया है, किन्तु एक-दो स्थानो पर उनकी सीता मे दैवी-तत्त्व की व्यजना हो गई है।

त्रिषष्टी शलाका पुरुषो मे राम-लक्ष्मण को क्रमश आठवें बलदेव तथा वासुदेव के रूप मे जैन-धर्मानुयायी मानते है। बलभद्र राम की पत्नी सीता मे परोक्षत स्वयभू ने दैवी-तत्त्व की प्रतिष्ठा कराने का प्रयास किया है।

वज्रावर्त तथा समुद्रावर्त धनुषो पर जब राम ने डोरी चढ़ा दी, तो देववृंद ने फूलो की वर्षा की और राम-सीता विवाह हो गया। उस समय स्वयंभू ने एक भविष्य-वाणी कराई है :

जोइसिएँहिँ आएसु किउ 'जउ लक्खण-रामहुँ स-रहसहुँ।
आयहे कण्णहे कारणेण होसइ विणासु बहु-रक्खसहुँ ॥[1]

अर्थात् ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की—इस कन्या के कारण बहुत-से राक्षसो का विनाश होगा। इस प्रकार सीता मे परोक्षत स्वयभू ने दैवी-तत्त्व की प्रतिष्ठा करा दी है।

जब रावण-विजय के पश्चात् राम-लक्ष्मण-सीता अयोध्या लौटे, तो भरत उनके दर्शनार्थ आया। उस समय स्वयभू ने सीता को 'बुद्धि-रूपा', राम को कर्म-रूप तथा लक्ष्मण को नियति-रूप मे चित्रित किया है

सीयहे रामहो लक्खणहो मुह-यन्द-णिहालउ भरहु गउ।
बुद्धिहे ववसायहो विहिहे ण पुण्ण-णिवहु सवडम्मुहउ ॥[2]

इसी अवसर पर अयोध्या-प्रवेश करते हुए स्वयभू ने भरत, राम, लक्ष्मण तथा सीता को क्रमश धर्म-रूप, पुण्य-रूप, कर्म-रूप तथा लक्ष्मी-रूपा चित्रित किया है

भरहु-णराहिवु दासरहि लक्खणु वइदेहि णिविट्ठाइँ।
धम्मु पुण्णु ववसाउ सिय ण मिलेँवि अउज्झ पइट्ठाइँ ॥[3]

इस प्रकार स्वयभू ने सीता मे परोक्ष रूप से ही सही, दैवी-तत्त्व का समावेश करा ही दिया है, जो उन पर उनके पूर्ववर्ती वाल्मीकि आदि का प्रभाव हो सकता है।

गौण पात्र

मरुदेवी—जैन-धर्म मे कुलधरो को अत्यन्त श्रद्धास्पद माना गया है। कुल-धरो मे अन्तिम नाभिराय की पत्नी मरुदेवी हैं। कवि ने मरुदेवी को इन्द्र की शची तथा चन्द्रमा की रोहिणी जैसी सुन्दर तथा काम-पत्नी रति जैसी प्रसन्नमना कहा है

तहो णाहिहे पच्छिम-कुलयरासु। मरुएवि सई व पुरन्दरासु ॥
चन्दहो रोहिणि व मणोहिराम। कन्दप्पहो रइ व पसण्ण-णाम ॥[4]

मरुदेवी को प्रसन्न करने के लिए इन्द्र ने मनुष्य वेश मे देवियो को पृथ्वी पर भेजा। वे सब मरुदेवी का मनोविनोद करती थीं। इसी समय मरुदेवी ने स्वप्न देखे।[5] मरुदेवी ने प्रात नाभिराय को स्वप्न सुनाए, तो उसने कहा—'तीनों लोको में श्रेष्ठ

[1] पउमचरिउ, २१।१३।६।
[2] वही, ७६।१।१।
[3] वही, ७६।२।६।
[4] वही, १।१३।३-४।
[5] वही, १।१४।१-६।

तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगा' और मरुदेवी के गर्भ से ज्ञान-शरीर भट्टारक ऋषभ अवतीर्ण हुए

लहु णाहि-णरिन्दहों तणय-मेहु । अवइण्णु भडारउ णाण-देहु ॥
थिउ गब्भब्भन्तरें जिणवरिन्दु । णव-णलिणि-पत्तें णं सलिल-विन्दु ॥[1]

जैन-धर्म के मूलाधार ऋषभ जिन की जननी-रूप मे मरुदेवी को स्वयभू ने दैवी-तत्त्व से मण्डित किया है।

इन्द्राणी—ऋषभ जिन का अभिषेक करने इन्द्र स्वय चला और साथ ही उसकी तीक्ष्ण नेत्रो वाली, पीनपयोधरा, शशि-समान सौम्या, पटरानी इन्द्राणी ने ऋषभ जिन को उठाकर, अपनी माया से सबको चकित करके, दूसरा बालक उसके स्थान पर रख दिया। इस प्रकार ऋषभ जिन का अभिषेक देवराज इन्द्र ने किया

पीण-पओहराएँ ससि-सोमएँ । इन्द-महाएविएँ पउलोमएँ ॥
सव्व-जणहों उवसोवणि देप्पिणु । अग्गएँ माया-वालु थवेप्पिणु ॥[2]

नन्दा-सुनन्दा—ज्ञान-शरीर परम भट्टारक ऋषभ जिन की विवाहिता पत्नियो के रूप मे, लक्ष्मी-सेविता नन्दा तथा सुनन्दा का उल्लेख हुआ है

कइहिँ दिणेँहि परिणाविउ देविउ । णन्द-सुणन्दाइउ सिय सेविउ ॥
सउ पुत्तहुँ उप्पण्णु पहाणहँ । भरह-वाहुबलि-अणुहरमाणहँ ॥[3]

अर्थात् कुछ समय बाद ऋषभ का लक्ष्मी-सेविता नन्दा और सुनन्दा से विवाह हो गया। उनसे सौ पुत्र हुए, जिनमे भरत और बाहुबली मुख्य थे।

नीलांजना—इन्द्र के दरबार की, पूर्णिमा के चन्द्रमा-सी पुण्यप्रभायुक्त अप्सरा नीलांजना है, जिसे इन्द्र ने ऋषभ जिन के मन मे वैराग्य उत्पन्न करने के लिए भेजा

एम वियप्पेँ वि छण-चन्दाणण । पुण्णाउस कोक्किय णीलजण ॥
तिहुअण-गुरुहेँ जाहि ओलग्गएँ । णट्टारम्भु पदरिसहि अग्गएँ ॥[4]

अर्थात् इन्द्र ने पूर्णिमा के चाँद जैसे मुख वाली, पुण्यायुष्मती नीलाजना को बुलाकर कहा 'त्रिभुवन गुरु ऋषभ को रिझाओ, उनके आगे नृत्य-प्रदर्शन करो'।

ऋषभ के समक्ष नृत्य करते-करते नीलाजना ने अपने प्राण त्याग दिए

रगेँ पइट्ठ तुरन्ति कर-दिट्ठि-भाव-रस-रजिय ।
विब्भम भाव-विलास दरिसन्तिएँ पाण विसज्जिए ॥[5]

नीलांजना के प्राण त्यागने से ऋषभ को वैराग्य हो गया।

सरस्वती—ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप मे सरस्वती का उल्लेख स्वयभू

---

[1] पउमचरिउ, १।१६।५–६।

[2] वही, २।२।६–७।

[3] वही, २।८।७–८।

[4] वही, २।६।५–६।

[5] वही, २।६।६।

ने किया है। रावण के वध की घोषणा मे कवि ने कहा—'सरस्वती आज मुक्त-कण्ठ से गान करे'

अज्जु पफुल्लउ फलउ वणासइ। अज्जु गाउ मोक्कलउ सरासइ॥[1]

राम-लक्ष्मण ने लका-प्रवेश किया, तो नागरिकों ने बताया—यहाँ सरस्वती (रावण के समय) गान किया करती थी।

किय अच्चण एत्थु वणस्सइएँ इह गाय(?)उ गेउ सरस्सइएँ॥[2]

उपर्युक्त नारी-पात्रो मे केवल मरुदेवी का उल्लेख विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' मे हुआ है,[3] शेष स्वयभू की मौलिक उद्‌भावना के परिचायक हैं। तथ्य यह है कि अलौकिकता 'अवतारवाद' के रूप मे स्वयभू ने कही भी स्वीकार नही की है, जो उनके धार्मिक आग्रह का परिणाम है।

तुलसीदास दैवी एव आसुरी नारी-पात्र

प्रधान पात्र			गौण पात्र				
(दैवी)	१	सीता	(दैवी)	१	सरस्वती	२	रमा
	२	पार्वती		३	अनाम अप्सरा		
			(आसुरी)	१	सुरसा	२	लकिनी
				३	अनाम राक्षसी		

प्रधान पात्र

सीता—तुलसी ने राम-काव्य-परम्परा वाल्मीकि तथा सस्कृत-कवियों से ग्रहण की है और सगुण-भक्ति का आधार ग्रहण किया है, अत 'अवतारवाद' के सिद्धान्त को उन्होने पूर्णत स्वीकार किया है। इसी कारण तुलसी ने राम की प्रिया सीता को 'आदि-शक्ति' के रूप मे प्रतिष्ठित करके उनके चरित्र मे दैवी-तत्त्व का प्रकाशन यत्र-तत्र कराया है।

तुलसी ने 'मानस' के आरम्भ मे ही सीता की वन्दना करते हुए कहा—'उत्पत्ति, स्थिति तथा सहार करने वाली, क्लेशो को हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याण करने वाली श्री रामचन्द्र की प्रियतमा सीता जी को मैं नमस्कार करता हूँ।'

उद्‌भवस्थितिसहारकारिणी क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीता नतोऽह रामवल्लभाम्॥[4]

राम के साथ सीता को वाम-भाग मे शोभित आदिशक्ति के रूप में तुलसी ने चित्रित किया है

---

[1] पउमचरिउ, ७६।४।८।

[2] वही, ७८।१०।३।

[3] पर्व, ३।५८, ६१ तथा ६६।

[4] रामचरितमानस, बालकाण्ड, स्तुति श्लोक, ५।

बाम भाग सोभति अनुकूला । आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ।।
जासु अंस उपजहिं गुनखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ।।[1]

'राम' के अवतार मे जब ब्रह्म अवतरित होंगे, तो आदिशक्ति 'माया' बनकर अवतरित होगी—यह वरदान मनु-शतरूपा को दिया था स्वयं ब्रह्म ने :

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया । सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ।।[2]

नारद को भी कहा था ब्रह्म ने—'परम सक्ति समेत अवतरिहउँ' । इसी कारण सीता के प्रति तुलसी मे सर्वत्र पूज्य-बुद्धि रही है । स्वयंवर में वे राजाओ से कहलाते हैं

सिख हमारि सुनि परम पुनीता । जगदंबा जानहु जियँ सीता ।।[3]

अत्यन्त कुशलता से तुलसी ने सीता के चरित्र मे 'दैवी-तत्त्व' का प्रकाशन कराया है, जबकि बरात लेकर दशरथ जनक के नगर मे पहुँचे हैं

जानी सीयँ बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगटि जनाई ।।
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं । भूप पहुनई करन पठाईं ।।[4]

तुलसी ने सीता को राम की 'माया' के रूप मे देखकर उनकी वन्दना की है .

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ।।[5]

पचवटी मे भरत जब अयोध्या-निवासियो सहित राम को लौटाने के लिए पहुँचे, तो तुलसी ने सीता को तीनो सासो से अनेक रूप बनाकर एक साथ भेंट करते हुए चित्रित किया है

सीय सासु प्रति बेष बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ।।
लखा न मरमु राम बिनु काहूँ । माया सब सिय माया माहूँ ।।[6]

वन मे निसाचरो का उपद्रव बढते देखकर, राम द्वारा सीता को अग्नि-प्रवेश कराना—'तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा', इसी 'दैवी-तत्त्व' की सपुष्टि का प्रमाण है । रावण-वध के उपरान्त पुन राम द्वारा अग्नि से सीता को निकालना इस मान्यता को पूर्णत सिद्ध कर देता है । कथा के अन्त मे तुलसी ने सीता को पुन शक्ति-रूपा मान कर ही सर्वोच्च गौरव दिया है .

जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ ।
राम पदारबिन्द रति करति सुभावहि खोइ ।।[7]

सीता का यह 'दैवी-रूप' चित्रण भक्त शिरोमणि तुलसी की मौलिक उद्भावना का

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १४८।२–३ ।
[2] वही, १५२।४ ।
[3] वही, २४६।२ ।
[4] वही, ३०६।७–८ ।
[5] अयोध्याकाण्ड, १२६।छन्द ।
[6] वही, २५२।२–३ ।
[7] उत्तरकाण्ड, दोहा २४ ।

ही परिचायक है ।

पार्वती—शंकर-प्रिया पार्वती को भी तुलसी ने अपनी पौराणिक दृष्टि के अनुसार 'जगदंबा' का रूप दिया है और उन्हें दैवी नारी-पात्र के रूप में चित्रित किया है । तुलसी का मत है—'गुर पितु मातु महेस भवानी,' और इसीलिए कवि ने राम-कथा का प्रथम आधिकारिक जिज्ञासु श्रोता पार्वती को कहा है ·

> सभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा ॥[1]

तुलसी ने नारद द्वारा मैना को उपदेश दिलाकर पार्वती को भी 'शिव' की शक्ति के रूप मे प्रतिष्ठित किया है

> मयना सत्य सुनहु मम बानी । जगदबा तव सुता भवानी ॥
> अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि । सदा सभु अरधग निवासिनि ॥
> जग संभव पालन लय कारिनि । निज इच्छा लीला बपु धारिनि ॥[2]

तुलसी द्वारा चित्रित पार्वती का यह 'शक्ति रूप' उनकी पुराण-दृष्टि की ओर ही इगित करता है । यद्यपि 'राम-परीक्षा प्रसग' मे तुलसी ने पार्वती को कुछ हीन व्यक्तित्व दे दिया है, तथापि शक्ति रूप मे पार्वती को चित्रित करके कवि ने अपने उस अभाव की पूर्ति कर ली है । पार्वती तुलसी की अनूठी सर्जना हैं ।

गौण पात्र

दैवी रूप में

सरस्वती—तुलसी ने ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप मे सरस्वती का चित्रण दैवी-शक्ति मानकर किया है । सरस्वती अभिव्यक्ति की पूर्णता तथा पवित्रता की प्रतीक हैं, जो भावना के वशीभूत होकर कवि के हृदय मे निवास करती है

> भगति हेतु बिधि भवन बिहाई । सुमिरत सारद आवति धाई ॥
> राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ । सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ॥[3]

इसी ज्ञान-दात्री-शक्ति के रूप में तुलसी ने शारदा की स्तुति की है—'पुनि बदउँ सारद सुरसरिता । जुगल पुनीत मनोहर चरिता' । तुलसी का मत है कि राम की कृपा से ही शारदा की कृपा भी सभव है

> सारद दारुनारि सम स्वामी । रामु सूत्रधर अन्तरजामी ॥
> जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी । कबि उर अजिर नचावहिं बानी ॥[4]

शारदा ही 'बुद्धि की नियामिका शक्ति' हैं । राम को जब राज्य देने का निश्चय दशरथ ने किया, तो देवतागण मिलकर सरस्वती के चरणो मे वन्दना करने पहुँचे—'बिपति हमारि बिलोकि बडि मातु करिअ सोइ आजु । रामु जाहिं बन राजु तजि

---

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड, ३०।३ ।

[2] वही, ६८।२–४ ।

[3] वही, ११।८–५ ।

[4] वही, १०५।५–६ ।

होइ सकल सुरकाजु ॥' एक बार तो देवताओ के इस घोर स्वार्थ पर शारदा को पश्चाताप हुआ—'सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती', क्योंकि अपयश का कार्य शारदा कैसे करें ? किन्तु देवताओं ने 'पुनि कहहिं निहोरी', तो 'हरषि हृदयँ दसरथ पुर आई' और माँ शारदा अपनी शक्ति के प्रभाव से मंथरा को 'अजस पेटारी' बना गई :

नामु मथरा मंदमति चेरि कैकेइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥[1]

राम बन चले गए, किन्तु भ्रातृ-नेह की डोर से बँधे भरत राम को वापस लेने चित्र-कूट पहुँच गए, तो स्वार्थी देवताओ ने पुन शरणागत होकर शारदा से विनय की

फेरि भरत मति करि निज माया । पालु बिबुध कुल करि छल छाया ॥
बिबुध बिनय सुनि देवि सयानी । बोली सुर स्वारथ जड जानी ॥[2]

शारदा ही वस्तुत. राम-वन-गमन की प्रेरिका शक्ति हैं, यह चित्रित करके तुलसी ने सर्वथा अनूठी काव्य-योजना की है, जिससे मथरा तथा कैकेई दोष-मुक्त हो जाती हैं । अन्यत्र तुलसी ने सरस्वती का वन्दन ज्ञान-देवी के रूप मे ही किया है ।

रमा—भगवान् विष्णु की शक्ति के रूप मे रमा का उल्लेख 'मानस' मे हुआ है

हरि हित सहित रामु जब जोहे । रमा समेत रमापति मोहे ॥[3]

अनाम अप्सरा—राम-रावण युद्ध मे लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान् सजीवनी बूटी लेने चले, तो मार्ग मे रावण का भेजा हुआ निशाचर मुनि का छद्मवेश बनाए बैठा था । उसी समय समुद्र मे एक विशाल 'मकरी' (मादा मगरमच्छ) हनुमान् को खाने दौडी । हनुमान् ने तीर चलाया और तीर लगते ही मकरी 'अप्सरा' बन गई, जो वस्तुतः शापग्रस्ता नारी थी

सर पैठत कपि पद गहा मकरी तब अकुलान ।
मारी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान ॥
कपि तव दरस भइउँ निष्पापा । मिटा तात मुनिबर कर सापा ॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । मानहु सत्य बचन कपि मोरा ॥
अस कहि गई अपछरा जबही । निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं ॥[4]

'नारी-मुक्ति' के तुलसी के अभियान की ओर यह अनाम पात्रा भी सकेत कर रही है ।

•

आसुरी रूप मे

लंकिनी—तुलसी ने रावण की लंका की रक्षार्थ नियुक्त राक्षसी के रूप मे लकिनी का चित्रण किया है । जब हनुमान् 'मसक समान रूप कपि धरी' राम का

[1] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा १२ ।
[2] वही, २९५।२–३ ।
[3] बालकाण्ड, ३१७।३ ।
[4] लंकाकाण्ड, दोहा ५७ तथा ५८।१–३ ।

नाम स्मरण करके लंका में चले, तो लंकिनी ने उन्हें रोका

नाम लंकिनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा । मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥[1]

क्रुद्ध होकर हनुमान् ने 'मुठिका एक महा कपि हनी' और लंकिनी 'रुधिर बमत धरनीं ढनमनी' हो गई । तब उसने हनुमान् को बताया

पुनि सभारि उठि सो लका । जोरि पानि कर बिनय ससका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा । चलत बिरचि कहा मोहि चीन्हा ॥
बिकल होसि तैं कपि के मारे । तब जानेसु निसिचर सघारे ॥[2]

इस प्रकार लंकिनी द्वारा कवि ने राक्षस-वश के नाश की घोषणा करा दी है । तुलसी की काव्य-कुशलता दर्शनीय है ।

सुरसा—यह भी विकट शक्ति वाली राक्षसी है, जिसको हनुमान् की राह अवरुद्ध करने के लिए देवताओ ने नियुक्त किया था, ताकि हनुमान् के पराक्रम की परीक्षा ली जा सके .

सुरसा नाम अहिन्ह कै माता । पठइन्हि आइ कही तेंहि बाता ॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा । सुनत बचन कह पवनकुमारा ॥[3]

उस विकट राक्षसी ने हनुमान् को 'कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना', तो हनुमान् ने कहा 'ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना' । यह सुनकर सुरसा ने अपना शरीर बढ़ाना आरम्भ किया ।

जोजन भरि तेंहि बदनु पसारा । कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥[4]

इस प्रकार हनुमान् के दुगुना शरीर बढाने पर

सोरह जोजन मुख तेंहि ठयऊ । तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥
जस जस सुरसा बदनु बढावा । तासु दून कपि रूप देखावा ॥
सत जोजन तेंहि आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥[5]

अत्यन्त लघु रूप बनाकर हनुमान् 'बदन पइठि पुनि बाहेर आवा' और श्रद्धापूर्वक सुरसा से 'मागा बिदा ताहि सिरु नावा' । इस पर सुरसा ने अपना रहस्य हनुमान् को बताया

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ॥[6]

और हनुमान् को 'आसिष देइ' सुरसा सुर-लोक चली गई । इस पात्र के माध्यम से तुलसी न 'अद्भुत रस' का सचार करने के साथ-साथ देवताओ को सक्रिय तथा हनुमान् को परमवीर भी चित्रित कर दिया है ।

[1] रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, ४।२–३ ।
[2] वही, ४।५–७ ।
[3] वही, २।२–३ ।
[4] वही, २।७ ।
[5] वही, २।८।१० ।
[6] वही, २।१२ ।

अनाम राक्षसी—भयकर राक्षसी के रूप मे यह नारी चित्रित हुई है, जो आकाश मे उड़ते हुए पक्षियो को पकड-पकड़ कर खाती है ।

निसिचरि एक सिधु महुँ रहई । करि माया नभु के खग गहई ॥
जीव जन्तु जे गगन उडाही । जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाही ॥
गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई । एहि बिधि सदा गगनचर खाई ॥[1]

हनुमान् जब समुद्र पार कर रहे थे, तो उन्हे इस राक्षसी की शक्ति का आभास हुआ और इसे मार कर ही हनुमान् समुद्र से पार उतरे ।[2]

निष्कर्ष

स्वयभू तथा तुलसी के काव्यो मे दैवी एव आसुरी नारी-पात्रों मे जो अन्तर उभरता है, वह यह कि 'स्वयभू ने इस दृष्टि से नारी-पात्रो का चित्रण कम ही किया है, किन्तु तुलसी ने इस प्रकार का चित्रण पर्याप्त किया है ।' सीता तथा पार्वती का दैवी-नारी-पात्र के रूप मे चित्रण इस बात की सपुष्टि करता है ।

सामाजिकता इन पात्रो मे ध्वनित हो पाना अनपेक्षित ही है, अत इस दृष्टि का सर्वथा अभाव ही रहा है । हाँ, सास्कृतिक तथा धार्मिक तत्त्व लक्ष्य किया जा सकता है । स्वयभू मे 'मरुदेवी' का चित्रण धार्मिक तत्त्व का दिग्दर्शन कराता है और तुलसी मे 'सरस्वती' का चित्रण सास्कृतिक परम्परा को इगित करता है ।

मनोवैज्ञानिक तत्त्व का आधार-ग्रहण भी इन पात्रो के चित्रण मे प्राय अपेक्षित नहीं रहा है, अत इस दृष्टि का अभाव भी दोनो कवियो मे है । फिर भी तुलसी ने 'ठाढि पछिताती', 'हरषि' आदि शब्दो से सरस्वती के चित्रण मे मनोवैज्ञानिक-पद्धति का पुट देकर अपनी मौलिकता का परिचय अत्यन्त कुशलता से दिया है ।

देश-काल का तत्त्व दोनो मे ही प्राय मुखर नही हुआ है ।

पौराणिक-दृष्टि तुलसी मे इन्ही नारी-पात्रो के माध्यम से सर्वाधिक प्रकाशित हो सकी है । वे 'अवतारवाद' की पौराणिक धारणा 'सीता' एव 'पार्वती' के चरित्रो से पुष्ट कराने मे अत्यन्त सफल रहे हैं । स्वयभू मे इस दृष्टि का सर्वथा अभाव है, किन्तु जैन-धर्म का प्रभाव 'मरुदेवी' के माध्यम से तथा इन्द्र द्वारा 'ऋषभ जिन के अभिषेक' की कथा से स्पष्ट हो जाता है ।

कवि-दृष्टिकोण का अन्तर सहज ही दोनो कवियों मे स्पष्ट लक्षित हो जाता है । तुलसी मे 'सीता,' 'पार्वती,' 'सरस्वती' आदि के प्रति पूज्य-बुद्धि है, जो हिन्दू-धर्मानुगामी होने के कारण सर्वथा स्वाभाविक है, किन्तु स्वयभू मे इस भावना का सर्वथा अभाव ही है । तुलसी 'असद्' की परिणति भी 'सद्' मे कराते हैं, जो उनके आदर्शवादी दृष्टिकोण का परिणाम है, किन्तु स्वयभू इस ओर पूर्णत उदासीन दृष्टि रख कर चले हैं ।

---

[1] रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, ३।१–३ ।

[2] वही, ३।४–५ ।

उपसंहार

स्वयभू एव तुलसी के महाकाव्यो 'पउमचरिउ' तथा 'रामचरितमानस' मे चित्रित नारी-पात्रो का पृथक्-पृथक् अनुशीलन करके दोनो के नारी-पात्रो की तुलना हमने नारी के विभिन्न रूपो को आधार मान कर की है। कन्या, प्रेयसी, पत्नी, माता, बहन, भाभी, सास, सखी, दासी, दैवी एव आसुरी-नारी आदि रूपो मे, यथासंभव द्वितीय अध्याय मे निर्धारित 'सप्तक तत्त्वो' के आधार पर, नारी-चित्रण के अनुशीलन का प्रयास प्रस्तुत अध्ययन मे है।

नारी-चित्रण पर समग्रत दृष्टिपात करने से यह निश्चित प्रतीत होता है कि स्वयभू ने प्रत्येक पात्र—प्रधान तथा गौण को जैन-दृष्टि से चित्रित करने का प्रयास किया है, जो सीता, कैकेई, कौशल्या, सुमित्रा तथा मन्दोदरी आदि पात्रो के जैन-धर्म मे दीक्षित होने से सुपुष्ट हो जाता है। 'दुर्नयस्वामिनी' स्वयभू की जैन-दृष्टि को व्यजित कराने वाली विशिष्ट नारी-पात्र है,[1] जिसके द्वारा कवि स्वयभू ने जैन-धर्म को बौद्ध-धर्म से श्रेष्ठतर सिद्ध किया है और जैन मुनियो की आचार-निष्ठा का प्रबलतम समर्थन किया है।।[2] 'मरुदेवी' का चरित्र रामकथा से सर्वथा असम्बद्ध है, तथापि जैन-धर्म के प्राण, ज्ञान-रूप ऋषभ जिन की जननी के रूप मे स्वयभू ने उनका श्रद्धायुत चित्रण करके धर्म के प्रति अपनी दृढ निष्ठा ही व्यक्त की है। इसमे विमत नही हो सकता कि स्वयभू के सभी पात्र अधिकाशत जैन-दृष्टि से चित्रित हैं।

तुलसी मे प्राय सभी नारी-पात्र, चाहे सद्-वृत्ति वाले हो या असद्वृत्ति वाले, 'रामभक्त' चित्रित हुए हैं। उनके सभी पात्रो मे 'सिया राम मय सब जग जानी' की भावना काम कर रही है।[3]

रावण के पक्ष वाले नारी-पात्रो—मदोदरी, त्रिजटा आदि को भी तुलसी ने राम-भक्त दिखाया है। यह उनकी राम-भक्ति का ही प्रभाव है, जिससे अहल्या, शबरी, तारा जैसी पतिता एव शापग्रस्ता नारियाँ भी परम पद की अधिकारिणी बनी

---

[1] पउमचरिउ, ३५वी सधि।

[2] मुणि-चोरन्ति मन्ति मं पत्तिय। —पउमचरिउ ३५।८।९

[3] डॉ० भाग्यवती सिंह तुलसी की काव्य-कला, पृ० २७५।

हैं। यद्यपि तुलसी के नारी-चित्रण का यह रूप साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता, तथापि इससे कतिपय नारी-पात्रों के परम्परागत तथा स्वाभाविक चित्रण मे पर्याप्त असंगतियाँ आ गई हैं। 'पार्वती' का पौराणिक स्वरूप तुलसी निभा नही सके और राम को 'ब्रह्म' बनाने के प्रबल आग्रह के कारण मानवी रूप मे पार्वती के चरित्र का अपकर्ष अनजाने ही उनसे हो गया है। सीता के चरित्र में भी अलौकिकता तथा लौकिकता का द्वन्द्व बना रहा, जिससे अनेक बार सीता के चरित्र-चित्रण मे अस्वाभाविकता आ गई है। 'मन्थरा' पता नहीं क्यों, अपवाद रूप मे 'राम-भक्त' नही बन पाई ? यही ऐसी नारी-पात्र है 'मानस' में, जो तुलसी के आदर्शवाद की ज्वाला में पककर कुन्दन नहीं बन सकी। आदर्श तथा मर्यादा का ध्यान तुलसी कही भी छोड़ नही सके और यही उनके नारी-चित्रण का प्राण-तत्त्व बना है।

स्वयंभू तथा तुलसी दोनो ही नारी-चित्रण मे सामाजिक तथा सास्कृतिक प्रभाव को चित्रित करते हैं। समाज मे नारी की स्थिति का चित्रण यथास्थिति दोनो ने ही कुशलता से किया है, किन्तु तुलसी इस दृष्टि से श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं। नारी के कन्या, प्रेयसी, पत्नी, माता, सास, बहन तथा अन्य रूपो मे सामाजिक दायित्वो का बोध तुलसी को निरन्तर बना रहा है। सीता का चित्रण कन्या, प्रेयसी, पत्नी—सभी रूपों मे इस कथन को पुष्ट करता है।

स्वयभू सामाजिक दायित्वो के प्रति रूढ प्रतीत नही होते। उपरभा, अजना, बनमाला तथा सीता के चरित्रो से यह भली प्रकार पुष्ट हो जाता है। सीता का अपराजिता से कोई विशेष लगाव नही है। दशरथ की पत्नियाँ परिवार मे कैसे रहती हैं, स्वयभू इस ओर कोई संकेत नही करते। इससे यह पुष्ट हो जाता है कि स्वयभू पारिवारिक-मर्यादा तथा दायित्वो के प्रति प्राय उदासीन ही हैं। नारी के इन रूपो का चित्रण करते समय सास्कृतिक तत्त्व भी स्वयभू प्राय कम ही समाविष्ट कर सके हैं। उनके लिए 'पतिव्रत धर्म' का कोई सास्कृतिक महत्त्व रहा होगा, ऐसा कहीं प्रतीत नही होता, यद्यपि 'पतिव्रत धर्म' का पालन उनके नारी-पात्र करते हैं।

तुलसी ने नारी के शाश्वत पतिव्रता रूप को भारतीय-सस्कृति का स्वर्णिम दैवी घटक माना है और इसी पतिव्रत-धर्म की व्यजना कराने के लिए 'अनुसूया' की सृष्टि की गई है। सुमित्रा मे मातृत्व एव त्याग की गरिमा भी इसी तत्त्व की उपस्थिति को पुष्ट करती है। नारी के चरित्र-चित्रण मे तुलसी ने लोकनायक की सी दृष्टि रक्खी है।[1] इस दृष्टि के परिणामस्वरूप उनके महाकाव्य मे चित्रित नारियो का व्यक्तित्व लोक-सापेक्ष हो गया है।

नारी-चित्रण मे मनोविज्ञान का आधार दोनो ही कवियो ने ग्रहण किया है। स्वयभू नारी मे वासना, त्याग, ईर्ष्या, घुटन, हर्ष, सन्तुष्टि आदि मनोभावो तथा प्रवृत्तियो को स्पष्ट करने मे सफल रहे हैं। केवल एक विशिष्टता है उनके नारी-

---

[1] डॉ० भाग्यवती सिंह तुलसी की काव्य-कला, पृ० २७५।

चित्रण मे, जो तुलसी से उन्हें पृथक् कर देती है। स्वयंभू के सभी पात्र अधिकांशतः 'इद' से सर्वाधिक शासित हुए हैं, 'अहम्' तथा 'पराहम्' से क्रमशः सर्वाधिक कम। इसका परिणाम हुआ है, स्वयभू के नारी-पात्रो मे 'जैवी-व्यक्तित्व'[1] की प्रधानता तथा उदात्त-तत्त्व की कमी। सीता, अपराजिता, सुमित्रा, मदोदरी आदि के चरित्र-चित्रण मे यह तथ्य देखा जा सकता है। सीता कहीं-कहीं उदात्त रूप मे आई भी है, तो अपने परम्परित रूप के कारण ही आई प्रतीत होती है। 'उपरभा' जैसी पर-पुरुष-अनुरक्ता तथा चन्द्रनखा जैसी अतिशय कामुक नारियो का चित्रण स्वयभू के पात्र-चित्रण मे 'इद' के शासन को भली-भाँति सपुष्ट कर देता है।

तुलसी नारी-मनोविज्ञान के निश्चित रूप से कुशल पारखी हैं। उनका प्रत्येक पात्र मनोविज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है। नारी के हृदयस्थ उत्कण्ठा, हर्ष, आकुलता, लज्जा, ईर्ष्या, डाह तथा स्नेह जैसे भावो की अत्यन्त मर्मस्पर्शी व्यजना तुलसी के नारी-पात्रो मे हुई है। सीता, कौशल्या, कैकेई, सुमित्रा, मन्थरा, मन्दोदरी, शबरी, पार्वती, मैना, सुनयना तथा त्रिजटा आदि सभी नारियो का चरित्र-चित्रण हमारे इस कथन का पोषक है। तुलसी के नारी-पात्र 'पराहम्' से सर्वाधिक शासित हैं तथा 'अहम्' और 'इद' से क्रमश कम। इसी भावना के कारण उनका प्रत्येक नारी-पात्र नैतिक मूल्यो, आदर्शों तथा मर्यादाओ का पालन करता है और उदात्त की ओर उन्मुख होता है।

पार्वती तथा कैकेई ऐसे नारी-चरित्र है, जिनमे 'इद' तथा 'पराहम्' का सघर्ष स्वार्थ तथा परमार्थ के द्वन्द्व के रूप मे दिखाया गया है और विजय 'पराहम्' की ही हुई है, जिससे आदर्श की स्थापना का तुलसी का लक्ष्य पूर्ण हो गया है। मनोविश्लेषण मे तुलसी के सिद्धहस्त होने का प्रमाण कैकेई, मन्थरा, सीता एव पार्वती के चरित्र हमे पूर्णत दे देते है। इस दृष्टि से दोनो ही कवि कुशल सिद्ध होते हैं, तथापि समग्र दृष्टि से पलडा तुलसी का ही कुछ भारी प्रतीत होता है।

विभिन्न रूपो मे दोनो के नारी-चित्रण का अनुशीलन करते समय स्पष्ट हो गया है कि पौराणिक तत्त्व तुलसी मे मुखर है, स्वयभू मे स्वभावत ही यह रूप कम मुखर हो पाया है। सीता तथा पार्वती के चित्रण मे तो पौराणिकता अनेक बार सहज चित्रण मे बाधक भी बन गई है। तुलसी पार्वती-शकर के दाम्पत्य-जीवन का चित्रण इसी कारण नही करते कि 'जगत मातु पितु सभु भवानी। तेहिं सिगारु न कहउँ बखानी'। सीता भी 'जगदबा' हैं, यह तुलसी भूल ही नही पाते। यह एक तथ्य है कि तुलसी 'पुराण-तत्त्व' का समावेश अपने नारी-चित्रण मे प्रयत्न-पूर्वक करते हैं। पतिव्रत-धर्म का स्वरूप तुलसी पुराणो से ही ग्रहण करते हैं।[2] नारी के कामुक

---

[1] बायोलॉजिकल सेल्फ ही 'इद' होता है। —डॉ० राधाकमल मुखर्जी, पृ० १५

[2] न व्रतैनोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति केवल पति पूजनात्॥

—पराशर-सहिता

रूप की निन्दा जहाँ तुलसी करते हैं, वहाँ भी वे पुराण का समर्थन अपने साथ सदैव रखते हैं .

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥

को तुलसी ने 'हितोपदेश' से ग्रहण किया है

सुवेष पुरुष दृष्ट्वा भ्रातर यदि वा सुतम्।
योनि क्लिद्यति नारीणा सत्य-सत्य हि नारद ॥

वस्तुत तुलसी 'पौराणिक प्रभाव' ग्रहण करने के कारण ही यत्र-तत्र नारी के अतिशय वासनात्मक, अविद्या-माया वाले रूप की निन्दा करते हैं, जिसे नारी-निन्दा माना जाना समीचीन प्रतीत नही होता।

प० रामनरेश त्रिपाठी का कथन है—मेरा ख्याल है, अन्य भारतीय भाषाओ मे भी सन्तो के स्त्री-विरोधी पद मिलते हैं। सन्तो के वचन तो प्राय: उसी भाषा मे है, जो तुलसीदास की है, पर तुलसीदास का विरोध मुख्यत इस कारण से किया जा रहा है कि उनका प्रचार अधिक है और प्रभाव भी।[1]

स्वयभू पर जैन-आगमो का प्रभाव देखा जा सकता है, यद्यपि वे इसे कम ही ग्रहण करते हैं। इस दृष्टि से दोनो मे नारी-चित्रण की प्रवृत्ति ही बदल गई है। स्वयभू ने सीता को सामान्य नारी बना दिया, तो तुलसी ने उनमे दैवी-तत्त्व का समावेश करके अलौकिक रूप दे दिया है। यही स्थिति पार्वती की है, जो मैना-पुत्री होकर भी 'जगदबा भवानी' बनी रही हैं।

कवि-दृष्टिकोण ने स्वयभू तथा तुलसी को सर्वथा पृथक् कर दिया है। जैन होने के कारण स्वयभू का प्रयास जैन-धर्म का प्रकाशन रहा है, तो हिन्दू-सगुण-भक्त होने के कारण राम के 'ब्रह्मत्व' तथा अलौकिकता का चित्रण तुलसी का प्रयास रहा है। स्वयभू नारी-चित्रण मे सौन्दर्य को यथार्थ के आधार पर देखने के कारण स्थूल तथा मासल चित्रण करने मे सफल हुए हैं, किन्तु आदर्श तथा मर्यादा के आधार पर देखने के कारण तुलसी के सौन्दर्य-चित्रण मे सूक्ष्मता एव अतीन्द्रियता का भाव मुखर हो गया है, जिससे तुलसी का सौन्दर्य-चित्रण उदात्त से मण्डित होकर जन-मन का प्रेय बन गया है।

स्वयभू ने रामकथा की परम्परा जैन-मुनि विमलसूरि से ग्रहण की थी, जिससे उनमे दृष्टिकोण का अन्तर स्वाभाविक रूप से आ गया है।

हमारे समग्र अध्ययन का निष्कर्ष यह निकलता है कि परम्परा से प्राप्त रामकथा के पल्लवन मे स्वयभू तथा तुलसी ने देश-काल तथा दृष्टिकोण के अनुरूप अपनी-अपनी मौलिक उद्भावनाओ के द्वारा नारी-चित्रण में सफलता एव सिद्धि प्राप्त की है और प्रतिभा-सम्पन्न कवि होने का प्रमाण दिया है।

---

[1] तुलसी और उनका काव्य, पृ० २६६।

सहायक ग्रन्थ-सूची

संस्कृत

कालिदास, *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*

भवभूति, *उत्तररामचरितम्*

रविषेणाचार्य, *पद्मचरितम्*

वाल्मीकि, *रामायण*

प्राकृत

प्रवरसेन, *रावणवहो (सेतुबंध)*

राजशेखर, *कर्पूरमजरी*

विमलसूरि, *पउमचरिय*

अपभ्रंश

स्वयभूदेव, *पउमचरिउ*

स्वयभूदेव, *रिट्ठणेमिचरिउ*

स्वयभूदेव, *स्वयभूछन्द*

हिन्दी काव्य तथा नाटक

केशवदास, *रामचन्द्रिका*

जयशकर प्रसाद, *कामायनी*

जयशकर प्रसाद, *लहर*

जयशकर प्रसाद, *ध्रुवस्वामिनी*

तुलसीदास, *रामचरितमानस*

तुलसीदास, *विनयपत्रिका*

तुलसीदास, *कवितावली*

जगन्नाथदास रत्नाकर (स०), *बिहारी-रत्नाकर*

आलोचना

अग्रवाल, रामप्रकाश, *वाल्मीकि और तुलसी*

अग्रवाल, सरयूप्रसाद, *अकबरी दरबार के कवि*

उपाध्याय, रामजी, *प्राचीन भारत की सामाजिक सस्कृति*

उपाध्याय, सकटाप्रसाद, *कवि स्वयभू*

ओम्प्रकाश, *प्राचीन भारत का इतिहास*

कालेलकर, काकासाहेब, *युगानुकूल हिन्दू जीवन-दृष्टि*

गुप्त, माताप्रसाद, *तुलसीदास*

गैरोला, वाचस्पति, *कामसूत्र-परिशीलन*

चतुर्वेदी, परशुराम, *हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भाग ४)*
चतुर्वेदी, सीताराम, *गोस्वामी तुलसीदास*
जैन, कोमलचन्द्र, *बौद्ध और जैन आगमों मे नारी-जीवन*
जैन, जगदीशचन्द्र, *जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज*
जैन, जगदीशचन्द्र, *प्राकृत साहित्य का इतिहास*
जैन, विमलकुमार, *तुलसीदास और उनका साहित्य*
जैन, हीरालाल, *भारतीय सस्कृति मे जैन धर्म का योग*
त्रिपाठी, चन्द्रबली, *भारतीय समाज मे नारी आदर्शों का विकास*
त्रिपाठी, रामनरेश, *तुलसी और उनका काव्य*
तोमर, रामसिंह, *प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उसकी हिन्दी साहित्य पर प्रभाव*
द्विवेदी, हजारीप्रसाद, *हिन्दी साहित्य की भूमिका*
दीक्षित, राजपति, *तुलसीदास और उनका युग*
दुआ, सरला, *आधुनिक हिन्दी साहित्य मे नारी*
देव, रामचन्द्र, *तुलसी और तुचन*
देवराज, *भारतीय सस्कृति*
नगेन्द्र, *रीति काव्य की भूमिका*
नाहर, रतिभानुसिंह, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एव सांस्कृतिक इतिहास*
प्रेमी, नाथूराम, *जैन साहित्य और इतिहास*
पाण्डेय, उषा, *मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे नारी-भावना*
पाण्डेय, चन्द्रबली, *तुलसीदास*
पाण्डेय, राजबली, *हिन्दू-सस्कार*
पाण्डेय, राजबली, *प्राचीन भारत*
पाण्डेय, राजबली, *हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्रथम भाग)*
पाण्डेय, विमलचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सास्कृतिक इतिहास*
पाण्डेय, सुधाकर, *मानस-अनुशीलन*
बुल्के, कामिल, *रामकथा (उत्पत्ति और विकास)*
भाटिया, हसराज, *समाज मनोविज्ञान*
भारद्वाज, रामदत्त, *गोस्वामी तुलसीदास . व्यक्तित्व, दर्शन तथा साहित्य*
मिश्र, बलदेवप्रसाद, *तुलसी-दर्शन*
मिश्र, भगीरथ, *तुलसी रसायन*
मिश्र, विश्वनाथप्रसाद, *गोसाईं तुलसीदास*
मेघ, रमेशकुन्तल, *तुलसी आधुनिक वातायन से*
रस्तोगी, राजाराम, *तुलसीदास . जीवनी और विचारधारा*
रसाल, रमाशंकर शुक्ल, *भाषा शब्दकोश*
लूनिया, बी० एन्०, *भारतीय सभ्यता और सस्कृति का विकास*

वर्मा, धीरेन्द्र, *हिन्दी साहित्य (भाग १ तथा २)*
विवेकानन्द, *भारतीय नारी*
व्यास, श्यामसुन्दर, *हिन्दी महाकाव्यों में नारी-चित्रण*
वेदालकार, हरिदत्त, *हिन्दू परिवार मीमांसा*
शर्मा, गजानन, *प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी*
शर्मा, रामानन्द, *मानस की महिलाएँ*
शर्मा, रामनाथ, *मनोविज्ञान के मूल-तत्त्व*
शुक्ल, शिवकुमार, *रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन*
शुक्ल, रामचन्द्र, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*
शुक्ल, रामचन्द्र, *जायसी ग्रन्थावली*
शुक्ल, रामचन्द्र, *गोस्वामी तुलसीदास*
शुक्ल, रामबहोरी, *तुलसी*
शुक्ला, सुधारानी, *गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक आदर्श*
श्रीवास्तव, देवकीनन्दन, *तुलसीदास की भाषा*
सिंह, अमरपाल, *तुलसी पूर्व राम-साहित्य*
सिंह, भाग्यवती, *तुलसी की काव्य-कला*
सिंह, त्रिभुवन, *साहित्यिक निबंध*
सिंह, नामवर, *हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योगदान*
सिंह, श्रीधर, *तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा*
साकृत्यायन, राहुल, *हिन्दी काव्यधारा*
हरीश, *आदिकालीन हिन्दी-साहित्य शोध*

पत्र-पत्रिकाएँ

कल्याण (नारी अक तथा हिन्दू-सस्कृति अक)
नर-नारी (यौन-समस्या और समाधान विशेषाक)
नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अंग्रेजी

Altekar, A S., *The Position of Women in Hindu Civilization*
Arnold, Mathew, *Poems of Wordsworth*
Auboyer, Jeannine, *Daily Life in Ancient India*
Benjamin, Walker, *Hindu World*
Havelock, Ellis, *Studies in the Psychology of Sex*
Mukerjee, Radha Kamal, *The Philosophy of Personality*
Standard Illustrated Dictionary

मुद्रण—मित्तल प्रिंटर्स, वैश्यवाड़ा, मेरठ–250002